अज्ञेय का काव्य: विचार एवं दृष्टि

गोवा विश्वविद्यालय, हिंदी विभाग

की पी.एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

(सितंबर, २०१६)

शोधार्थिनी

किरन तिवारी

शोध निर्देशक

डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र

प्रोफेसर, हिंदी विभाग

गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

*****

गोवा विश्वविद्यालय, तालेगांव, गोवा - ४०३२०६

DECLARATION

I the undersigned hereby declare that the thesis entitled "AGYEY KA KAVYA: VICHAAR EVAM DRISHTI" ***"अज्ञेय का काव्य: विचार एवं दृष्टि"*** *has been written exclusively by me and that no part of this thesis has been submitted earlier for the award of this university or any other university.*

Date: 1 September 2016

Place: Taleigao Plateau, Goa

Kiran Tiwari

Research Student

Dept. of Hindi

CERTIFICATE

As per the Goa University ordinance, I certify that this thesis entitled "AGYEY KA KAVYA: VICHAAR EVAM DRISHTI" **"अज्ञेय का काव्य: विचार एवं दृष्टि"** is a record of the research work done by **Kiran Tiwari** (candidate) herself during the period of study under my guidance and that it has not previously formed the basis for the award of any degree or diploma in the Goa University or elsewhere.

Date: 1 September 2016

Place: Taleigao Plateau, Goa

Research Guide

Dr. Ravindra Nath Mishra

Professor, Dept. of Hindi

Goa University

प्राक्कथन

अज्ञेय आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिभावान कवियों में से एक हैं। अपनी विलक्षण बौद्धिक शक्ति से उन्होंने हिंदी कविता को नया मार्ग दिखाया। उनकी पहचान एक युग-निर्माता कवि के रूप में है। उन्होंने न केवल कविता को 'अन्वेषण की राह' दिखाई बल्कि उसे प्रयोग के आधार पर प्रतिष्ठित भी किया। आधुनिक हिंदी साहित्य को वैचारिक दृष्टि से नव्य कलेवर प्रदान करने में भी उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इतना ही नहीं उन्होंने परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य भी किया। तत्कालीन परिवेशगत परिस्थितियों के संदर्भ में अज्ञेय ने एक नई विचारधारा का सूत्रपात किया। कथ्य एवं शिल्प के धरातल पर हिंदी साहित्य को नवीन दृष्टि दी। वे पुराने और मैले पड़ चुके उपमानों के स्थान पर कविता में नए उपमानों के प्रयोग पर बल देते हैं। यह विचार उनकी दृष्टि की विलक्षणता और नूतनता का प्रतीक है। इसलिए वे कहते हैं-

"ये उपमान मैले हो गए हैं

देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।"

अज्ञेय की काव्य यात्रा का प्रारंभ मूलत: छायावादी प्रवृत्तियों के आधार पर हुआ। इसके माध्यम से उन्होंने जीवन और प्रकृति को एक नई दृष्टि से देखा जो कालांतर में प्रयोगवाद के रूप में प्रचलित हुआ। जीवन और प्रकृति को उसके यथावत रूप में देखना अज्ञेय की विशिष्टता थी जो अतीत के कवियों से भिन्न थी। कहने का तात्पर्य है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है और समय की आवश्यकता भी है। इस मान्यता में अज्ञेय का दृढ़ विश्वास है। इसीलिए वे काव्य में विचार और दृष्टि के धरातल पर आधुनिकता की बात करते हैं।

अज्ञेय कविता को आधुनिक भाव-बोधों और संवेदनों का आधार देते हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी जी का मत है कि "समग्रत: रचना के स्तर पर आधुनिक होने का प्रयास अज्ञेय का है। यह ठीक है कि आधुनिक रचना उनकी कृतित्व में पूरी तरह निष्पन्न नहीं हो जाती, पर आधुनिक रचना के सभी प्रमुख क्षेत्रों में पहली बार एक साथ बढ़ने का श्रेय उन्हीं को है।

विशिष्ट अर्थ में आधुनिक रचना के जो तत्व समझे जाते हैं- स्वचेतना, बौद्धिकता, गैर-रोमैंटिक वृत्ति और भाषिक रचनात्मकता पर बल, जिसके फलस्वरूप मितकथन और अमूर्तन का विकास होता है- इनका आरंभिक विकास हमें अधिकतर अज्ञेय के कृतित्व में मिलता है।" आधुनिकता के ये तत्व अज्ञेय की कविताओं में परिलक्षित हैं। उनकी कविता में कुछ नया करने का प्रयत्न दिखाई देता है। वे काव्य-सत्य की प्रतिष्ठा पर बल देते हैं। इसलिए वे अपने आधुनिक कवि होने की उद्घोषणा करते हैं और कहते हैं-

"यों मैं कवि हूं, आधुनिक हूं, नया हूं-

काव्य सत्य की खोज में कहां नहीं गया है।"

अज्ञेय कविता में सत्य की खोज के लिए प्रयासरत दिखाई देते हैं। उनकी यही दृष्टि कविता में नवीनता और ताजगी का अनुभव कराती है। उनका कवि-कर्म उत्कृष्ट कोटि का है। उनका स्वर वैविध्यपूर्ण हैं। एक कवि के रूप में उनकी कविताओं में जीवन की गहरी समझ दिखाई देती है। अज्ञेय की विचार और दृष्टि उनके जीवनानुभवों के विविध आयामों से निर्मित हुई है। एकाकी जीवन ने उन्हें चिंतन की ऐसी दृष्टि दी जो उनके बहुआयामी लेखन में सहायक सिद्ध हुई। इसी आधार पर उन्होंने कविता में पहले से स्थापित काव्य प्रवृत्तियों में नई मान्यताओं को स्थापित किया। उनके क्रांतिकारी विचारों ने कविता में प्रयोग और सृजन के नए प्रतिमानों की स्थापना की। प्रगतिवादियों के समष्टि चिंतन को व्यष्टि चिंतन पर केन्द्रित किया। अज्ञेय ने व्यक्ति की पीड़ा को समझा और उसे अपनी कविता में उकेरा। इस संबंध में नवल किशोर का मत उचित ही है- "अज्ञेय ने निश्चय ही अपने विपुल काव्य में आधुनिक जीवन के यथार्थ की संवेदना को अनेक रूपों और स्तरों पर प्रकट किया है।"

अज्ञेय ने सत्य के अन्वेषण एवं नवीन तथ्यों की प्राप्ति के लिए अपने आपको काव्य-प्रेम की ज्वाला में तपाया है, स्वयं आहुति बन कर काव्य को नयी दिशा प्रदान की है। वे कविता में सत्य की स्थापना के प्रति जागरूक कवि हैं। कविता में उनके मुक्त विचार थे। मौलिक चिंतन उनके काव्य की विशेषता रही है। उनके कवि-कर्म के विषय में

रमेश चंद्र शाह का मत है कि "अज्ञेय मुक्त चेतना के कवि हैं : हृदय और बुद्धि दोनों की मुक्तावस्था के साधक। कवि कर्म उनके लिए इसी साधना का उपकरण है : जिसे वे मुक्त जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना का तेज-दीप्त प्रवाह कहते हैं।" उन्होंने कविता में विचार और दृष्टि की नई व्यंजनाओं को उद्घाटित करते हुए स्वयं को सिद्ध करने का प्रयास किया। इसके लिए उन्हें जहां कहीं से प्रेरणा मिली, उसे स्वीकार करने में संकोच नहीं किया। उनके विचारों के प्रेरणा-स्रोत डी. एच. लारेंस, टी. एस. इलियट, टेनिसन, ब्राउनिंग, एजरा पाउंड जैसे पाश्चात्य कवि और विचारक भी रहे परंतु अज्ञेय ने अपनी भारतीयता को नहीं त्यागा।

अज्ञेय ने तारसप्तक के माध्यम से कवियों को नई राह दिखाई और स्वयं को भी राहों का अन्वेषी माना। उनके विषय में अज्ञेय ने तारसप्तक की भूमिका में कहा कि "संग्रहीत सभी कवि, कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं, जो यह दावा नहीं करते कि उन्होंने काव्य को सत्य पर लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को पाते हैं। वे किसी स्कूल के नहीं है, किसी 'मंजिल' पर पहुंचे नहीं है, अभी राही है, राहों के अन्वेषी हैं।" वे स्वयं को सत्य का साधक मानकर, उसके अन्वेषण की साधना में लगे रहे और यही उनकी विचार-दृष्टि को नव स्फूर्ति की रसधारा प्रवाहित करने में सहायक रहा। दृष्टांत के रूप में उनकी ये पंक्तियां दृष्टव्य है-

"द्वार के आगे
और द्वार यह नहीं कि कुछ अवश्य है
इनके पार-किन्तु हर बार
मिलेगा आलोक झरेगी रस-धार।"

अज्ञेय लोकजीवन के भी चितेरे हैं। उनकी रचना यात्रा में लोकजीवन के विविध रूप कथ्य और भाषा के धरातल पर दिखाई देते हैं। उदाहरण स्वरूप 'सागर मुद्रा-६' कविता की इन पंक्तियों में लंबी यात्रा पर निकले यात्री के गृह-स्मरण और ग्रामीण परिवेश का कितना सचित्र और स्वाभाविक वर्णन मिलता है-

"लंबी यात्रा में

गांव-घर की यादें

सरसों का फूलना,

x x x x

वन तुलसी की तीखी गंध

ताजे लीपें आंगनों में गोयंठों पर

देर तक गरमाए गए, दूध की धुईंली बास,

जेठ की गोधुली की घुटन में कोयल की कूक।”

अज्ञेय की विचार-दृष्टि कालांतर में दर्शन की ओर भी उन्मुख दिखाई देती है। उनकी कविताओं में काल, क्षण, जीवन, मृत्यु आदि दार्शनिक विचार बहुलता से मिलते हैं। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से अज्ञेय दार्शनिक नहीं है परंतु उनके दार्शनिक विचार भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही दर्शनों से प्रभावित हैं।

अज्ञेय के काव्य में उनकी भाषिक सरंचना का नयापन भी आकर्षण का विषय रहा है। कम शब्दों में गहरे अर्थ की अभिव्यक्ति उनकी काव्यगत विशिष्टता रही है। वास्तव में उनके काव्य और कवित्व को हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान देने में शब्दों की मितव्ययिता और उसके सारगर्भित अर्थ की विशेष भूमिका रही। नंदकिशोर आचार्य का कथन है कि “अज्ञेय की कविता पढ़ते समय शब्द हमें इसी तरह तराशते चले जाते हैं- कलाकृति की तरह कुछ निर्मित होता रहता है और फिर खोखल में नहीं, हमारे व्यक्तित्व में समा जाता है।” इस कथन से अज्ञेय के काव्य भाषा पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने अनेक नए शब्दों को भी रचा जैसे ‘मतियाता’, ‘हरियाना’, ‘हुल्सानी’ ‘टिमकना’ आदि। इन नए शब्दों के गठन और मितकथन के रूप में उनके काव्य के भाषिक सौंदर्य को देखा जा सकता है।

अज्ञेय-काव्य की इन्हीं विशेषताओं ने मुझे उनके काव्य-शोध की ओर आकर्षित किया। मेरा विचार है कि उनके काव्य में विचारों की ताज़गी और दृष्टि की नवीनता पाठक के मन को मोहने में सक्षम है। यद्यपि अज्ञेय की कविताओं पर कई शोध कार्य हुए हैं किन्तु वैचारिक दृष्टि को लेकर स्वतंत्र रूप में शोध कार्य दिखाई नहीं देता है। इस दृष्टि से मैंने

अपने शोध-कार्य के लिए **"अज्ञेय का काव्य: विचार एवं दृष्टि"** विषय का चयन किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को मैंने पांच अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय **'अज्ञेय का जीवन-वृत्त एवं रचना संसार'** के अंतर्गत मैंने अज्ञेय के जीवन और उनके परिवेश का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। अध्ययन की सुविधा हेतु अध्याय को तीन उप-शीर्षकों में विभाजित किया गया है- 'पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश', 'अध्ययन एवं कार्य क्षेत्र', 'सर्जन के विविध आयाम'। किसी कवि या लेखक की रचनाधर्मिता और उसके गुण, स्वभाव, धर्म आदि को समझने के लिए जीवन-परिचय आवश्यक है। इस दृष्टि से 'पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश' शीर्षक के अंतर्गत अज्ञेय के जन्म, परिवार और व्यक्तित्व के विषय में विवेचन किया गया है। दूसरे खंड 'अध्ययन एवं कार्य क्षेत्र' में अज्ञेय की शिक्षा-दीक्षा के विभिन्न स्थानों का उल्लेख हुआ है। तीसरे खंड 'सर्जन के विविध आयाम' में अज्ञेय के काव्य-संग्रहों का विवेचन किया गया है। अंतिम में उनके गद्य-संग्रहों का भी संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। इनके माध्यम से अज्ञेय के बहुआयामी व्यक्तित्व, शैक्षिक परिवेश, काव्य-प्रेरणा स्रोतों तथा उनकी रचनाओं का परिचय दिया गया है।

"**अज्ञेय का काव्य: वैचारिक दृष्टि"** द्वितीय अध्याय, के अंतर्गत मैंने विचार और दृष्टि की अवधारणा और स्वरूप की चर्चा करते हुए उनके काव्य में भारतीय, पाश्चात्य एवं वैज्ञानिक विचार-दृष्टि को खोजने का प्रयास किया है। अज्ञेय की कविताएं भारतीय विचारों के साथ-साथ पाश्चात्य विचारों से भी प्रभावित हुईं हैं। उनके यायावरी जीवन ने उन्हें अनेक स्थानों के साथ अनेक विचारकों और चिंतकों से भी से परिचित कराया। इससे उनके काव्य में इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त वे विज्ञान के विद्यार्थी भी रहे जिससे उनकी दृष्टि में वैज्ञानिकता भी परिलक्षित है। उनकी कविता में इसी वैज्ञानिकता के आधार पर विचारों में तर्क दिखाई देता है। अत: द्वितीय अध्याय में अज्ञेय की कविता में भारतीय, पाश्चात्य एवं वैज्ञानिकता के प्रभाव को देखने का प्रयास किया गया है।

"अज्ञेय का काव्य: व्यष्टि एवं समष्टि संबंधी दृष्टि" नामक तृतीय अध्याय में मैंने व्यक्ति और समाज के संबंध में अज्ञेय के विचार-दृष्टि को दर्शाया है। व्यष्टि, एवं समष्टि की दृष्टि का उल्लेख करते हुए दोनों के मध्य अंतर्द्वंद की स्थिति को विवेचित एवं विश्लेषित किया गया है।

प्राय: अज्ञेय पर आरोप लगते रहे हैं कि वे व्यष्टि समर्थक हैं और समष्टि को स्वीकार नहीं करते। वे व्यष्टि को अधिक महत्त्व देते हैं, इसमें संदेह नहीं है परंतु यह भी सत्य है कि उन्होंने समाज की सत्ता को नकारा नहीं हैं। अपनी अनेक कविताओं में अज्ञेय समाज के प्रति कृतज्ञ दिखाई देते हैं। 'नदी के द्वीप', 'यह दीप अकेला' जैसी कविता में इस भाव को देखा जा सकता है। उनकी कविता 'नदी के द्वीप' की इन पंक्तियों में उनके व्यष्टि, समष्टि और दोनों में अंतर्द्वंद संबंधी विचारों की अभिव्यक्ति हुई है-

"हम नदी के द्वीप हैं।

हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतवाहिनि बह जाए।

वह हमें आकार देती है।

x x x x

किन्तु हम बहते नहीं हैं।

क्योंकि बहना रेत होना है।"

कविता की इन पंक्तियों में अज्ञेय के व्यष्टि और समष्टि तथा दोनों के महत्त्व की स्थापना मिलती है। तृतीय अध्याय में अज्ञेय की इन्हीं मान्यताओं को प्रत्यक्ष किया गया है।

चतुर्थ अध्याय "**अज्ञेय का काव्य: सौंदर्यबोधीय दृष्टि"** में मैंने सौंदर्य को परिभाषित और विश्लेषित करते हुए अज्ञेय के काव्य में प्रकृति, नारी, लोकजीवन, दर्शन संबंधी दृष्टि का अवलोकन किया है। प्रकृति, नारी, लोकजीवन, दर्शन की अनेक विशिष्टताएं अज्ञेय के यथार्थ अनुभवों से अनुप्राणित हैं।

अज्ञेय का अपने जीवन में सबसे निकट संबंध यदि किसी से रहा तो वह था- प्रकृति से। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति न होगी कि प्रकृति के सानिध्य में ही उनके व्यक्तित्व का गठन हुआ। प्रकृति की

स्वाभाविकता उनकी कविता में दिखाई देती है। उनके काव्य संग्रह में प्रकृति के बहुरंगी रूप पर विचार हुआ है।

नारी के प्रति उनकी आधुनिक विचार और दृष्टि रही है। वे लोकजीवन के पारखी भी रहे। इसी प्रकार उनका रुझान दर्शन की ओर भी दिखाई देता है जो भारतीय और पाश्चात्य दार्शनिकता से अनुप्राणित है। अत: चतुर्थ अध्याय में प्रकृति, नारी, लोकजीवन, दर्शन संबंधी विचारों के प्रति उनकी नवीन दृष्टि का अवलोकन किया गया है।

पंचम अध्याय में "**अज्ञेय का काव्य: भाषिक दृष्टि"** पर विचार किया गया है। इसमें 'कला एवं शिल्प संबंधी विचार', 'काव्य भाषा, बिंब, प्रतीक एवं मिथक', 'लोकोक्ति एवं मुहावरे' खंड किए गए हैं। इसके अंतर्गत मैंने कला, शिल्प की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए अज्ञेय की काव्य भाषा, बिंब, प्रतीक, मिथक, मुहावरे एवं लोकोक्ति की चर्चा की है। इनके माध्यम से अज्ञेय की कविताओं में नवीन शब्दों, उपमानों, बिंबों, प्रतीकों आदि की विशिष्टता को उभारा गया है। उनके काव्य में भाषिक सरंचना के स्तर पर नूतन प्रयोग दिखाई देते हैं। अद्भुत शब्द-प्रयोग की कला से कविता में विचारों के नएपन का बोध होता रहता है।

अंत में '**उपसंहार**' के अंतर्गत मैंने उपलब्धियों और सीमाओं के साथ अज्ञेय के विचार-दृष्टि का निचोड़ प्रस्तुत किया है। अज्ञेय की रचनाओं और अन्य विचारकों की समीक्षाओं के अध्ययन के पश्चात, प्राप्त निष्कर्ष को उपसंहार में सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोध कार्य गुरुजनों के आशीर्वाद और प्रेरणा से संभव हो सका है। अत: मैं उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूं जिन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रयक्ष रूप से मेरे इस कार्य के लिए मुझे सहयोग दिया।

मेरे इस शोध कार्य में सर्वप्रथम आदरणीय प्रो॰ रवीन्द्रनाथ मिश्र के प्रति मैं कृतज्ञ हूं जिनके निर्देशन में यह दुष्कर कार्य संपन्न हो सका। शोध निर्देशक के रूप में उन्होंने मेरे द्वारा किया गए शोध कार्य का, बड़े धैर्य के साथ संशोधन और परिमार्जन करने में अपना अमूल्य समय दिया। उनके इस सहयोग के लिए मैं सदा आभारी हूं।

आदरणीया प्रो॰ इशरत खान के प्रति मैं विशेष रूप से अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूं। उनकी आत्मीयता के प्रति मैं हृदय से ऋणी हूं। उन्होंने अपने सुझावों द्वारा मेरे शोध कार्य का मार्गदर्शन तो किया ही साथ ही मेरे शोध निर्देशक की अनुपस्थिति में भी उनके स्नेही स्वभाव ने मुझे किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होने दिया। मेरे शोध-प्रबंध के संपन्न होने में उनके उपकार को विस्मृत नहीं किया जा सकता।

भाषा एवं साहित्य संकाय की अधिष्ठाता प्रो॰ किरण बुडकुले, सेवानिवृत प्रो॰ वासुदेव सावंत के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं। समय-समय पर दिए गए इनके सुझावों से मेरे शोध कार्य को निश्चित दिशा मिली। अपने कार्यों में व्यस्तता के बाद भी आपने अपना अमूल्य समय दिया जिसके लिए मैं हृदय से आप दोनों की आभारी हूं। वर्तमान विभागाध्यक्षा डॉ॰ वृषाली मांद्रेकर के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूं। नव नियुक्त असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ॰ बिपिन तिवारी के सहयोग के लिए आभार व्यक्त करती हूं।

अज्ञेय के समकालीन और हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ लेखकों, कवियों, समीक्षकों डॉ॰ रामदेव शुक्ल, अशोक वाजपेयी, डॉ॰ गंगा प्रसाद विमल, डॉ॰ निर्मला जैन के भी प्रति मैं उपकृत हूं। इन्होंने अपने साक्षात्कार और अज्ञेय से संबंधित जानकारी देकर मेरा ज्ञान वर्धन किया। डॉ॰ राम जी तिवारी के प्रति भी मैं ऋणी हूं जिन्होंने अज्ञेय से संबन्धित जानकारी से मुझे अवगत कराया। डॉ॰ गंगा प्रसाद विमल जी के प्रति भी मैं विशेष आभार व्यक्त करती हूं। आपने मुझे अज्ञेय से संबंधित दुर्लभ पुस्तकें उपलब्ध करवाईं।

गोवा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के प्रति भी मैं विशेष आभार प्रकट करती हूं। अज्ञेय से संबन्धित ग्रन्थों को उपलब्ध कराने के लिए मैं गोवा के केन्द्रीय पुस्तकालय का भी धन्यवाद करती हूं।

ग्रन्थों की उपलब्धि में प्रकाशकों के सहयोग के प्रति भी मैं ऋणी हूं-विशेषकर वाणी प्रकाशन और विश्वविद्यालय प्रकाशन ने अविलंब ग्रन्थों की आवश्यकता पूरी की।

गोवा विश्वविद्यालय के हिन्दी कार्यालय के सहयोग के प्रति भी मैं आभारी हूं।

परिवार के स्नेह और उनकी शुभकामनाओं के लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूं। माता-पिता और गुरुजनों के आशीर्वाद से मैं इस कार्य में सफल हो सकी हूं इसलिए मैं उन्हें शत-शत नमन करती हूं।

--***--

<u>अज्ञेय का काव्य: विचार एवं दृष्टि</u>

अनुक्रम

१- अज्ञेय का जीवन-वृत्त एवं रचना संसार १-५२

क- पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश

ख- अध्ययन एवं कार्य क्षेत्र

ग- सर्जन के विविध आयाम

२- अज्ञेय का काव्य : वैचारिक दृष्टि ५३-११५

क- भारतीय विचार दृष्टि

ख- पाश्चात्य विचार दृष्टि

ग- वैज्ञानिक विचार दृष्टि

३- अज्ञेय का काव्य: व्यष्टि एवं समष्टि संबंधी दृष्टि ११६-१५४

क- वैयक्तिक दृष्टिकोण

ख- सामाजिक दृष्टिकोण

ग- वैयक्तिक एवं समष्टि का अंतर्द्वंद

४- अज्ञेय का काव्य: सौंदर्यबोधीय दृष्टि १५५-२१४

क - प्रकृति संबंधी दृष्टि

ख - नारी संबंधी दृष्टि

ग- लोक जीवन संबंधी दृष्टि

घ- दर्शन संबंधी दृष्टि

५- अज्ञेय का काव्य : भाषिक दृष्टि २१५-२६७

क- कला एवं शिल्प संबंधी विचार

ख- काव्य भाषा, बिम्ब, प्रतीक एवं मिथक

ग- लोकोक्ति एवं मुहावरे

- उपसंहार २६८-२७५

- परिशिष्ट

I- आधार ग्रंथ सूची २७६-२७७

II-संदर्भ ग्रंथ सूची, कोश २७८-२८६

III- पत्रिकाएं २८७

IV- रामदेव शुक्ल से एक साक्षात्कार २८८-२९१

V- अशोक वाजपेयी से एक साक्षात्कार २९२-२९८

VI- शोधार्थिनी द्वारा प्रकाशित आलेख २९९

प्रथम अध्याय

अज्ञेय का जीवन वृत्त एवं रचना संसार

अज्ञेय का जीवन और साहित्य वैविध्यपूर्ण एवं विशिष्ट है। आपने हिंदी साहित्य को अपनी प्रतिभा से समृद्ध ही नहीं किया अपितु कथ्य और शिल्प के धरातल पर नवीनता भी प्रदान की। अज्ञेय एक उत्कृष्ट कवि और लेखक ही नहीं हैं अपितु एक महान एवं कुशल चिंतक, समीक्षक, विचारक, यायावर, आलोचक, संपादक, स्वतन्त्रता सेनानी, फोटोग्राफर आदि के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। उनके विचारों, आदर्शों और संवेदनाओं ने हिंदी साहित्य को एक नया कलेवर दिया।

क- पारिवारिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि

किसी भी साहित्यकार का परिचय प्राप्त करने के लिए हमें उसके पारिवारिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि को जान लेना समीचीन होगा। परिवार एवं समाज के पारस्परिक अंतर्संबंधों द्वारा उसकी एक वैचारिक और सामाजिक पृष्ठभूमि तैयार होती है। कहने का आशय यह है कि जब एक शिशु जन्म लेता है तो वह वैचारिक दृष्टि से कोरे कागज़ के समान होता है। धीरे-धीरे वह परिवार में रहकर समाज से अपने संबंध बनाता है। उसका पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश ही उसे अच्छे या बुरे संस्कारों के सांचे में ढालता है और यहीं से उसके वैचारिक व्यक्तित्व के निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। यदि उसका परिवेशगत वातावरण सुसंस्कृत एवं उदात्त विचारों वाला होगा तो उसके मानस पटल पर अवश्य ही उसका प्रभाव पड़ेगा।

यहां यदि हम अज्ञेय के जीवन को देखें तो उनका जन्म कसया या कुशीनगर (उत्तर प्रदेश) के एक शिविर में ७ मार्च सन् १९११ को हुआ। यह स्थान भगवान बुद्ध के निर्वाण-स्थली के रूप में विख्यात है और शायद यह भगवान बुद्ध का ही आशीर्वाद था कि अज्ञेय भी उन्हीं के समान आजीवन सत्य के अन्वेषण में लगे रहे।

अपने जन्म से संबन्धित कुछ तथ्यों का उल्लेख अज्ञेय ने अपने उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी' भाग- १ में किया है। यह उनका आत्मकथात्मक उपन्यास है जिसका कुछ अंश उनके जीवन पर भी प्रकाश डालता है यथा- "जिन खंडहरों के मध्य में उनका जन्म हुआ था, वे एक बौद्ध विहार के खंडहर थे। वहां उसी दिन गौतम बुद्ध की अस्थियों की एक मंजूषा निकली थी, जिसकी उपासना करके वे भिक्षु उसके पिता के पास अतिथि होकर आए थे। वहां आकर जब उन्होंने देखा कि उसी दिन इस शिशु का जन्म हुआ है तब उन्होंने पिता से कहा- यह शिशु बुद्ध का अवतार है।"[१] इन पंक्तियों में जहां एक तरफ इसकी पुष्टि होती है कि इनका जन्म बौद्ध विहार के खंडहर में हुआ था वहीं दूसरी तरफ अज्ञेय अपने जीवन पर भगवान बुद्ध के प्रभाव को स्वीकारते हैं। इनकी कृति- 'अरी ओ करूणा प्रभामय' इसका साक्ष्य हैं कि कहीं न कहीं वे बुद्ध की कृपा से अनुग्रहीत रहे हैं। इस संग्रह की कविता 'हे अमिताभ' की निम्न पंक्तियों के माध्यम से भगवान बुद्धके प्रति उनके समर्पित भाव को देखा जा सकता है-

"हे अमिताभ!

नभ पूरित आलोक,

सुख से सुरूचि से रूप से भरे ओक:

हे अवलोकित

हे हिरण्यनाभ!"[२]

भिक्षु के कथनानुसार अज्ञेय भले ही बुद्ध के अवतारी न हों परंतु बुद्ध के प्रभाव से बचे भी नहीं थे। बहरहाल शेखर एक जीवनी के पात्र शेखर और अज्ञेय को एक ही नहीं कहा जा सकता है तथापि अज्ञेय के अनुसार उपन्यास के मूल चरित्र 'शेखर' का जन्म-स्थल उन्हीं के जीवन से संबन्धित है। इस उपन्यास की भूमिका में उनका कथन है- "शिशु मानस के चित्रण की सच्चाई के लिए मैंने शेखर के आरंभ के घटना स्थल अपने ही जीवन से चुने हैं।"[3] इनके इस कथन के आधार पर शेखर की जन्म-स्थली को अज्ञेय से संबंधित माना जा सकता है।

अज्ञेय ने '**आत्मपरक**' (अज्ञेय: अपनी निगाह में) में अपने संबंध में लिखा है- "अज्ञेय का जन्म खंडहरों में शिविर में हुआ था। उसका बचपन भी वनों और पर्वतों में बिखरे हुए महत्वपूर्ण पुरातत्त्वावशेषों के मध्य में बीता। इन्हीं के बीच उसने प्रारम्भिक शिक्षा पाई। वह भी पहले संस्कृत में, फारसी और फिर अंग्रेजी में। और इस अवधि में वह सर्वदा अपने पुरातत्त्वज्ञ पिता के साथ, और बीच-बीच में बाकी परिवार से- माता और भाइयों से- अलग रहता रहा। खुदाई में लगे हुए पुरातत्त्वान्वेषी पिता के साथ रहने का मतलब था अधिकतर अकेला ही रहना।"[४] प्रस्तुत कथन उनके प्रारंभिक जीवन के सूने, अकेले और सन्नाटेपन को इंगित करता है, जो कि कालांतर में भी बना रहा। 'एक सन्नाटा बुनता हूं' कविता में उन्होंने जीवन के सन्नाटे को काव्य रचना प्रक्रिया से जोड़ा है-

"पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं।

उसी के लिए स्वर-तार चुनता हूं।

ताना : ताना मज़बूत चाहिए : कहां से मिलेगा?

पर कोई है जो उसे बदल देगा,

जो उसे रसों में बोरकर रंजित करेगा, तभी तो वह खिलेगा

मैं एक गाढ़े का तार उठाता हूं:

मैं तो मरण से बंधा हूं; पर किसी के- और इसी तार के सहारे

काल से पार पाता हूं।"[५]

अज्ञेय अपने जीवन के सन्नाटे से ही जीवन के लिए तार बुनते हैं और इसी से जीवन के काल चक्र से पार भी पाते हैं। उनके बचपन का यह सन्नाटा और अकेलापन समय के साथ उनकी स्वभावगत विशेषता बन गई। कालांतर में यही सन्नाटा और मौन उनकी रचनाधर्मिता से जुड़ गया। परंतु यह मौन उनका खुद का रचा नहीं था वरन उस वातावरण से उपजा था जिसमें वे पले-बढ़े। इस संबंध में कृष्णदत्त पालीवाल का मत दृष्टव्य है- "अज्ञेय के रचना कर्म का मौन बुद्ध-ईसा के मौन की याद दिलाता है। यह मौन आरंभ में एकांतवास से पनपा, फिर चिंतन की

दिशा में। जेल में अपने सहकर्मियों के दिन-रात के अनिवार्य साहचर्य से उसने काल कोठरी की मांग की थी और महीनों उसमें रहता रहा। एकांतजीवी होने के कारण देश और काल के आयाम का उसका बोध कुछ अलग ढंग का है।"[६] इस कथन के आधार पर पर कह सकते हैं कि अज्ञेय के एकांत एवं संघर्षमय परिस्तिथियों ने उन्हें चुप्पी और मौन से ही अपने को अभिव्यक्त करना सिखाया जो स्वत: ही उनके काव्य-रचना में प्रविष्ट हो गया-

"कहा सागर ने: चुप रहो

मैं अपनी अबाधता जैसे सहता हूं, अपनी मर्यादा तुम सहो।

मौन भी अभिव्यंजना है: जितना तुम्हारा सच है उतना ही कहो।"[७]

अज्ञेय के प्रारंभिक जीवन की स्थितियां कुछ इस प्रकार की थीं कि उनके जीवन में एकांतपन आजीवन बना रहा। वस्तुत: प्रत्येक मनुष्य अपनी परिस्तिथियों का दास होता है और ये परिस्थितियां व्यक्तित्व निर्माण में कारक का काम करती हैं। इस संदर्भ में रामधारी सिंह दिनकर का मत अवलोकनीय है- "प्रत्येक व्यक्ति के निर्माण में परिस्थितियों का हाथ रहता है।"[८] दिनकर जी की यह उक्ति यद्यपि अपने विषय में है किन्तु यह अज्ञेय के व्यक्तित्व पर भी पूर्णत: चरित्रार्थ होती है।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के पिता 'डॉ. हीरानंद वात्स्यायन' पुरातत्व विभाग में उच्च पदाधिकारी के रूप में कार्यरत थे। वे पुरातत्वों की खोज में प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे जिससे अज्ञेय का अधिकांश समय अकेले में ही बीतता था, परंतु पिता के साथ यायावरी जीवन ने न केवल अज्ञेय की बौद्धिक क्षमता को निखारा बल्कि जीवन के प्रति ऐसी गूढ़ता और गहराई भी दी जिसने उनके व्यक्तित्व को नया आयाम प्रदान किया। माता-पिता के संस्कारिक और चारित्रिक गुणों का प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा। अज्ञेय के व्यक्तित्व में जो गुण विद्यमान थे वे वस्तुत: पिता की ही देन थी क्योंकि वे पिता के पिता के सानिध्य में अधिक रहे।

'हीरानन्द' पुरातत्ववेत्ता होने के साथ-साथ कई भाषाओं के ज्ञाता भी थे। अज्ञेय एवं उनके व्यक्तित्व-व्यास पर पिता के प्रभाव के विषय में विद्यानिवास मिश्र जी का कथन है- "वे (हीरानन्द वात्स्यायन) संस्कृत के पुराने ढंग के पंडित थे पर इस के साथ ही उन में देश, भाषा और वर्ण का स्वाभिमान बहुत ज्वलंत था। कठोर अनुशासन में विश्वास करते हुए भी वे प्रतिभा के स्वतंत्र विस्तार में कभी बाधक नहीं थे। अपने जीवन के दो मंत्र, निर्भयता और किसी से भी दान न लेने का आग्रह, सच्चिदानंद को अपने पिता से मिले हैं उनके मानसिक निर्माण में मातृपक्ष का योगदान बहुत कम है।"[९] पिता के निर्भयता और स्वाभिमान का गुण अज्ञेय के व्यक्तित्व में भी सदा के लिए समा गया। पिता से ग्रहीत इन गुणों ने अज्ञेय को ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रदान किया जो आज भी साहित्य जगत में ध्रुव तारे के समान अपनी ऊर्जा बिखेर रहा है। इस संबंध में डॉ॰ रेनू श्रीवास्तव ने श्री राम कमल राय (अज्ञेय: सृजन और संघर्ष) के कथन का उल्लेख किया है "अपने पुरातत्वज्ञ पिता से जो गांभीर्य एवं शोध की प्रवृत्ति इन्हें विरासत में मिली उसे लेकर सम्पूर्ण विश्व में यायावरी करते हुए अज्ञेय ने निरंतर अपने व्यक्तित्व को समृद्ध किया है।"[१०]

अज्ञेय का व्यक्तित्व आजन्म प्रभुत्वशाली रहा। बचपन से ही उनकी सोच में प्रौढ़ता विद्यमान थी। सच का साथ उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का हिस्सा रहा। बचपन में इन्हें 'सच्चा' के नाम से बुलाया जाता था। यद्यपि यह उनके नाम सच्चिदानंद का ही छोटा रूप है परंतु यह नाम उनके सत्यवान चरित्र का प्रतीक बन गया। विद्यानिवास मिश्र के अनुसार "जब-जब इनकी सच्चाई पर विश्वास नहीं किया गया, इन्होंने मौन विद्रोह किया।"[११] मौन इनका सबसे बड़ा हथियार था। जब भी उन्हें कोई बात पीड़ित करती थी वे चुप रहकर ही उसका विद्रोह करते थे। चुप रहना उनके चरित्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता थी इसलिए इनको 'चुप्पा' भी कहा जाता था। चुप रहने के कारण इनके आलोचक इन्हें अहंकारी स्वभाव का भी मान लेते हैं। अज्ञेय के शब्दों में- "मैं चुप्पा प्रसिद्ध हूं- या धीरे बोलना आभिजात्य के अहंकार का लक्षण बताया जाता है। बातचीत कम करना तो जीवन की परिस्थितियों में स्वाभाविक था- बोलने का अभ्यास इतना कम था कि लगातार थोड़ी देर बोलता रहूं तो मुंह दुखने

लगता है।"[१२] इनके इन तर्कों से पता चलता है कि चुप रहना उनके परिस्थितियों की स्वाभाविक देन है परंतु यही चुप्पी उनके लिए किसी हथियार से कम न थी।

बचपन की ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख अज्ञेय ने स्वयं ही किया है जिसने कहीं ना कहीं उनके व्यक्तित्व को प्रभावित किया है। वे ऐसी ही एक घटना का उल्लेख करते हैं- "मैं कोई छह वर्ष का था जब बड़े भाइयों के लिए गरम सूट बनवाए गए थे। जब कच्ची सिलाई के बाद सूट फ़िटिंग के लिए लाए गए, तब मैं भी खड़ा देख रहा था। सूट में कोट और जोधपुरी ब्रीचेज़ थीं, और भाइयों पर खूब फब रहे थे, मैं मुग्ध सा देख रहा था। माता-पिता ने मेरे मुग्ध भाव को लुब्ध भाव समझ कर पूछा कि क्या मैं भी बनवाना चाहता हूं? और मेरे उत्तर देने से पहले ही माता ने कहा- 'भाइयों को देखकर हिर्स हुई होगी!' और पिता ने उत्तर दिया- 'होती ही है- बच्चा ही तो है, मेरे कुछ कहने से पहले ही न केवल ईर्ष्या का आरोप मुझ पर कर दिया गया है, वरन उसे स्वाभाविक भी मान लिया गया है, इससे मुझे क्लेश हुआ। मैंने गंभीरता से कहा कि 'मुझे नहीं बनवाना है', तो उसे झेंप समझा गया, और इस पर आंखों में आंसू आ गए तो उससे यह प्रमाणित ही मान लिया गया कि ईर्ष्या थी। मेरे इनकार करते रहने पर भी सूट का नाप दे दिया गया और जब भाइयों के कपड़े बनकर आए तब साथ में मेरा भी सूट था। वैसे कपड़े पहन कर मुझे प्रसन्नता न होती यह नहीं कह सकता, पर उन कपड़ों को पहन कर नहीं हुई क्योंकि गलत समझे जाने की कसक अभी थी; उस पर जब कहा गया कि 'गुस्सा अभी बना हुआ है कि मेरे लिए भी पहले ही क्यों नहीं आर्डर दिया गया था', तब अन्याय की भावना बहुत तीखी हो गई। उन सूटों में सब भाइयों ने साथ बैठ फोटो खिंचाया था जो अभी है पर उस अवसर के बाद वह सूट मैंने फिर पहना हो, ऐसा याद नहीं पड़ता।"[१३]

यह घटना सुनने में तो साधारण ही लगती है। बचपन में भाई-बहनों में इस प्रकार की स्पर्धा प्राय: देखी जाती है परंतु अज्ञेय के लिए यह कोई साधारण बात नहीं थी वरन वे अन्याय से आहत थे। अन्याय और क्लेश आदि का एक गहरा प्रभाव बालमन पर इस प्रकार पड़ा कि

आजीवन अन्याय के प्रति प्रतिकार उनके जीवन का हिस्सा बन गया और जब, जहां कहीं भी अन्याय होते देखा वहां विद्रोह करने से नहीं चूके। इस घटना से उनके जीवन में मौन विद्रोह और आत्मपीड़क बोध का एक महत्वपूर्ण पक्ष उजागर होता है। गलत दृष्टि से देखे जाने का कष्ट और उससे उत्पन्न आत्मपीड़ा ने उन्हें ऐसा साहित्यकार बनाया जिसने प्रत्येक पीड़ित व्यक्ति की पीड़ा को अपना समझकर, उसमें अपनी आस्था जगाई और उसे अपने साहित्य का विषय बनाया -

"यह जो मिट्टी गोड़ता है, कोदई खाता है और गेहूं खिलाता है

उसकी मैं साधना हूं।

यह जो मिट्टी फोड़ता है, मड़िया में रहता है और महलों को बनाता है

उसकी मैं आस्था हूं।"[१४]

अज्ञेय विचारों से नहीं बल्कि शारीरिक दृष्टि से भी आकर्षक एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। काया ऐसी सुगठित थी जो एक बार देखता वह उन्हें मंत्र-मुग्ध सा देखता रहता। उनकी छवि के संबंध में मृदुला गर्ग का कथन है कि "यह वह जमाना था जब रवींद्रनाथ ठाकुर के बाद किसी लेखक की सदेह छवि मोहित करती थी तो अज्ञेय की ही। अपनी छवि की तराश में वे भी सजग-सतर्क थे। एक शब्द में कहना हो तो उस छवि को यही नाम दूंगी- तराश। तराशी हुई दाढ़ी, तराश के साथ इस्तरी किया लिबास, तराशा-सधा स्वर, तराशे हुए तेवर, तराशा रचना कर्म और चिंतन। तराशी हुई आत्मकथा, यानि शेखर: एक जीवनी तराशी यायावरी। तराशा प्रेम, कई बार या एक बार भी नहीं? वैसा ही अहं। दूसरे के अहं को तराश कर बौना बनाने का माद्दा। साधारण को तराश कर सानुपातिक कर डालने का भी। उनके व्याख्यानों से बढ़कर मेरे लिए धरोहर उनका वह तेवर है, जिसके चलते वे किसी के आगे झुकते न थे।"[१५] मृदुला जी का यह कथन अज्ञेय के व्यक्तित्व के बाह्य और आंतरिक दोनों की गरिमामयी छवि का परिचय दे देता है। वे आंतरिक और बाह्य दोनों ही रूप से सुगठित काया के मालिक थे। उनके वैयक्तिक आकर्षण से सभी मुग्ध हो जाते थे। विंदा करंदीकर का मत है- "अज्ञेय जी का व्यक्तितत्व ऐसा था कि वे किसी भी कोने अंतरे में बैठे

हों, पर चूंकि वे बैठे हैं, इसलिए वही स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण लगने लगता है। विचित्र प्रभा मण्डल बिखेरते थे वे अपने चारों ओर।"[१६] उनके इस उक्ति से स्पष्ट है कि अज्ञेय के मुख पर एक ऐसी आभा थी जो साधारण व्यक्तियों में कम ही दिखाई देती है। उनके व्यक्तित्व में गंभीरता उन्हें एक अनोखा आकर्षण देती है। वाणी पर भी मां सरस्वती की विशेष अनुकंपा थी। इस संदर्भ में श्रीराम वर्मा का मत उचित प्रतीत होता है- "जब उन्होंने 'प्रेत बोलते हैं' कविता यह कहकर पढ़ी कि इसे आप चाहें तो गद्य भी कह सकते हैं, पढ़ने के ढंग और मुद्राओं से वे सुंदर तांत्रिक की तरह लग रहे थे, सचमुच जिसके जगाने से प्रेत जागते हैं।"[१७] 'तांत्रिक' शब्द से सम्बोधित करने का अर्थ सम्मोहन से है जोकि अज्ञेय के व्यक्तित्व में झलकता है। अज्ञेय का व्यक्तित्व आत्मलीन और आत्मविश्वास से लबरेज व्यक्तित्व था। इन विचारों के माध्यम से हमारे समक्ष अज्ञेय एक ऐसे साहित्यिक युग पुरुष के रूप में प्रस्तुत होते हैं जिनके विषय में, शायद ही ऐसा कोई साहित्य-प्रेमी हो, जो उनके जीवन से परिचित न होना चाहे।

ख- अध्ययन एवं कार्य क्षेत्र

अज्ञेय के अध्ययन और कार्य-क्षेत्र की सीमा बहुत विस्तृत है; कारण था- पिता की नौकरी। उनकी नौकरी में स्थानांतरण के कारण अज्ञेय की शिक्षा-दीक्षा देश के विभिन्न प्रांतों में हुई जिससे उनका शैक्षिक क्षेत्र देशव्यापी बन गया। उनके शैक्षिक परिवेश के विषय में विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है- "बचपन १९११ से '१५ तक लखनऊ में। शिक्षा का प्रारंभ संस्कृत-मौखिक परंपरा से हुआ। १९१५ से '१९ तक श्रीनगर और जम्मू में। यहीं पर संस्कृत पंडित से रघुवंश, रामायण, हितोपदेश, फारसी मौलवी शेखसादी से और अमेरिकी पादरी से अंग्रेजी की शिक्षा घर पर शुरू हुई। शास्त्री जी को स्कूली शिक्षा में विश्वास नहीं था।"[१८] इस कथनानुसार अज्ञेय का प्राथमिक शिक्षालय उनका घर था, जहां उन्होंने विद्जनों के सहयोग से अनेक देशी एवं विदेशी भाषाओं और साहित्यकारों का अध्ययन किया। १९१९ से लेकर १९२५ तक की अवधि में उन्होंने

राखालदास बनर्जी से बंगला तथा उड़पी के मध्वाचार्य से संस्कृत और तमिल भाषाओं की शिक्षा ली। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक उपन्यासों और अनेकानेक पुस्तकों (जैसे- बाल रामायण, बाल भोज) का भी अध्ययन किया जो उनकी बचपन से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति को दर्शाता है। पाश्चात्य विद्वानों में लांगफ़ेलो, टेनिसन, शेक्सपियर, वर्ड्सवर्थ, जार्ज एलियट आदि को पढ़ा जिसका प्रभाव कालांतर में उनकी कविताओं पर भी पड़ा। अज्ञेय की बहुभाषा विज्ञता एवं भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य का गहन अध्ययन उनकी सौंदर्य बोधीय और गहन संवेदना का परिचायक है।

अज्ञेय के बाल्यावस्था की ही तरह उनके शैक्षिक जीवन में भी अनेकों उतार-चढ़ाव आते रहे। बचपन से यौवनावस्था तक पिता के स्थानांतरण का प्रभाव उनके अध्ययन पर भी पड़ा। अत: उनकी शिक्षा देश भर के विभिन्न प्रान्तों में होती रही। १९२५ में पंजाब से मैट्रिक, १९२७ में मद्रास से बारहवीं तथा १९२९ में लाहौर के फारमन कालेज से बी॰एस॰सी॰ की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। १९२९ में अंग्रेजी विषय में एम.ए. की पढ़ाई छोड़कर देश की आजादी के आंदोलन में शामिल हो गए और अनेक यातनाएं झेलीं। आंदोलनों से जुड़ना कोई आश्चर्य जनक नहीं था। भारतीय संस्कारों और उसके प्रति प्रेम के कारण यह तो अवश्यंभावी था।

अज्ञेय १९२९ से १९३६ के दौरान स्वन्त्रता आंदोलन से जुड़े रहे। इस दौरान उन्हें लाहौर, अमृतसर तथा दिल्ली की जेलों में भी रहना पड़ा। कारावास काल मेँ उन्हें अनेकों यातनाओं को सहन करना पड़ा। इन पर कई मुकदमे भी चलाए गए। चौबीस-पच्चीस साल की यह उम्र होती है जब हमारा मन अनेकों विचारों के अंतर्मंथन के द्वारा परिपक्वता की ओर अग्रसर होता है परंतु घोर कष्टों ने अज्ञेय के किशोर मन-मस्तिष्क पर बहुत गहरा प्रभाव डाला। इस संबंध मेँ विद्यानिवास मिश्र जी का मत है कि “१९३१ में नया मुकदमा शुरू किया गया। यह मुकदमा १९३३ तक चलता रहा। दिल्ली जेल में ही काल-कोठरी में बंद रहे और यहीं रहकर छायावाद से मनोविज्ञान, विपथगा की अनेक कहानियां और शेखर लिखा पर यह पूरी अवधि कुल ले देकर घोर आत्ममंथन, शारीरिक यातना और स्वप्न भंग की पीड़ा की अवधि रही।”[१९] १९३३ से ३६ तक

अज्ञेय कारावास और कई अन्य मुकदमों से जूझते रहे और यह समय यातनामय होने के साथ-साथ उनके जीवन के पथ को निर्देशित करने वाला भी रहा। यह वह नियत काल था जिसमें उनकी शिक्षा और दीक्षा दोनों मंझ गईं। यही वह समय था जब सच्चिदानंद 'अज्ञेय' नाम से हमेशा के लिए ज्ञेय हो गए। 'अज्ञेय' नाम जैनेन्द्र का दिया हुआ था। इस संबंध में जैनेन्द्र का कथन है कि "उन्हीं दिनों सच्चिदानंद वात्स्यायन का दिल्ली में केस चल रहा था। वे जेल में थे। जेल से उनकी चिट्ठियां आने लगीं। रचनाएं आने लगीं। भाव कुछ इस तरह का था कि क्या ये रचनाएं छप सकती हैं? मैंने तब प्रेमचंद को उनकी एक कहानी भेज दी। वे साप्ताहिक जागरण निकालते थे। मैंने सोचा वात्स्यायन ने जेल से रचनाएं भेजीं हैं। हो सकता है उनका नाम देना ठीक न हो। इसलिए 'अज्ञेय' लिख दिया। उन्हीं दिनों विशाल भारत का एक कहानी विशेषांक निकलने वाला था। वहां भी मैंने बनारसीदास चतुर्वेदी को वात्स्यायन की एक कहानी भेज दी- अज्ञेय के नाम से।"[२०] इस प्रकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय 'नाम से अभिहित हुए।

अज्ञेय जीवन यापन तथा अपनी साहित्यिक अभिरुचि के लिए जीवन के अलग-अलग कार्य-क्षेत्रों से जुड़े रहे। उन्होंने कभी अपनी जीविका के लिए तो कभी पत्र-पत्रिकाओं के उत्थान के लिए और कभी अपने मन के उद्वेलित भावनाओं की पूर्ति के लिए अनेक कार्य किए। पहले १९३९ में दिल्ली आल इंडिया रेडियो में नौकरी की। १९४३ से १९४६ तक अज्ञेय सैन्य सेवा में लगे रहे। इस दौरान उनकी साहित्यिक गतिविधियां भी सक्रियरहीं। भग्नदूत(१९३३),चिंता(१९४२), इत्यलम(१९४६) कविता संग्रह, विपथगा(१९३७),परंपरा(१९४४) ,काजल की कोठरी(१९४५) कहानी संग्रह और प्रसिद्ध उपन्यास शेखर: एक जीवनी भाग-१ (१९४१), भाग-२(१९४४) आदि का प्रकाशन हो चुका था। कविता को सत्य की कसौटी पर कसने का दुष्कर कार्य करने के लिए उन्होंने १९४३ में 'तारसप्तक' का प्रकाशन किया, जिसके माध्यम से विचारों में भिन्नता रखने वाले कवियों को 'एक राह का अन्वेषी' बना दिया जो अपने आप में एक ऐतिहासिक कार्य था।

पत्रों का सम्पादन एवं लेखन उनके जीवन के प्रमुख कार्यों में से एक था जिसकी नीव बचपन में ही पड़ गई थी और जिसे वे अपना प्रमुख सपना भी मानते हैं। इस संदर्भ में अज्ञेय का कथन है- "एक और भी सपना था- किताब लिखने और छपाने का। छपाई कैसे होती है यह तो नहीं जानता था, हाथ से सुंदर अक्षर लिखा करता था, और तस्वीरें तो पिता जी की किताबों में से काट लिया करता था, या उनसे फोटो मांग लिया करता था उनके पास देश देशांतर के बहुत फोटो रहते थे। और जिल्दें भी किसी किताब से उखाड़कर लगा लिया करता था- पीछे तो सीख लिया कि जिल्दें बनतीं कैसे हैं। एक आध दफ़े तो पिटाई भी हुई किताबें फाड़ने पर; लेकिन मेरी किताबें देखकर खूब हंसते थे और उनका गुस्सा प्राय: उस हंसी में खो जाता था। मुझे इस हंसी का बहुत बुरा लगता था-क्योंकि मैं तो उनकी लिखी हुई किताब देखकर कभी नहीं हंसता था। फिर मैंने हाथ से लिख कर एक पत्र निकाला: उसका नाम था आनंद-बंधु। इसे कोई चार साल तक चलाया।"[२१] इस प्रकरण से ज्ञात होता है कि बचपन से ही अज्ञेय की रुचि न केवल लेखन कार्य में थी वरन किसी कार्य के प्रति सच्ची निष्ठा और लगन सच्चिदानंद की पहचान थी।

'आनंद-बंधु' से संपादन कार्य की शुरुआत करने वाले अज्ञेय ने कालांतर में कई समाचार पत्रों का सम्पादन किया जिनमें सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, नवभारत टाइम्स, प्रतीक एवं दिनमान आदि समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं प्रमुख हैं। विशाल भारत में १९३६ से १९३९ तक बनारसीदास चतुर्वेदी के विनय पर कलकत्ता (कोलकाता) में कार्य किया। इस पत्र के संबंध में अज्ञेय का कथन है- " 'विशाल भारत' में रहते हुए हिंदी साहित्य जगत और पत्रकारिता के बारे में बहुत कुछ जाना और सीखा, उस अवसर के लिए अब भी अपने को ऋणी मानता हूं।"[२२] परंतु उनके द्वारा संपादित पत्र 'प्रतीक' का साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व है जो उन्होंने इलाहाबाद से १९४७ में निकालनी शुरू की।

'प्रतीक' के माध्यम से उन्होंने हिंदी लेखन कार्य को एक नया आयाम दिया। इस पत्र के द्वारा अज्ञेय ने जहां नए कवियों के स्व-लेखन क्षमता को विकसित करने का अवसर दिया वहीं हिंदी साहित्य की विविध-

विधाओं को फलने-फूलने का एक सुंदर मौका मिला। इस संदर्भ में कृष्णदत्त पालीवाल का मत है- "नए लेखकों, कवियों को प्रतीक ने एक नया मंच प्रदान किया और साहित्य पत्रकारिता के एक नए युग का आरंभ।"[२३] पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अज्ञेय अनेक विद्वानों के संपर्क में आए एवं उनके विचारों से प्रभावित हुए। इस संदर्भ में विद्यानिवास मिश्र का मत दृष्टव्य है "सन् १९३६ में वह आगरा से छपने वाले पत्र 'सैनिक' के संपादक मंडल में नियुक्त हुए। इस दौरान उन्होंने मेरठ के किसान आंदोलन में भी काम किया। तभी रामविलास शर्मा, भारत भूषण अग्रवाल नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, चन्द्रगुप्त विद्या अलंकार आदि से उनका परिचय हुआ। राजनीतिक विचारों में भी उथल-पुथल हुई। पहले वह क्रांतिकारी दल की राजनीति से ही प्रभावित थे, लेकिन अब उन्होंने गांधी जी के विचारों का भी सम्मान करना शुरू किया। वैसे वात्स्यायन जी मानवेंद्र नाथ के राजनीतिक दर्शन से अधिक प्रभावित रहे।"[२४] इन विद्वानों और विचारकों की निकटता और सहयोग से अज्ञेय की साहित्यिक एवं संपादकीय दृष्टि को बल मिला जिसका प्रभाव उनकी रचनाओं पर भी पड़ा।

अज्ञेय बहुगुणी थे। वे एक कुशल गृहिणी के समान सिलाई-कढ़ाई, बुनाई कर लेते थे। तरह-तरह के पकवान बना लेते थे, बागवानी कर लेते थे, छोटे-मोटे फर्नीचर बना लेते थे। इसके अतिरिक्त वे चित्रकारी, मूर्तिकारी एवं फोटोग्राफी आदि कलाओं में भी इतने निपुण थे कि वे इनके माध्यम से अपनी आजीविका भी कमाने की क्षमता रखते थे। अपनी इन कलाओं के संबंध में अज्ञेय कहते हैं- "चित्रकला की ओर प्रवृत्ति रही। कुछ समय मूर्तिकला की ओर भी प्रवृत्ति रही, इतनी अधिक रहीं कि मिट्टी की चीजें बनाता था तो प्राय: यह पाता था कि अनजाने में हाथ मिट्टी की गोलियां बनाते रहते और किसी से बात करता था तो उसके चेहरे को देखते-देखते उसी का मिट्टी का प्रतिरूप बनाता हुआ उसमें जगह-जगह मिट्टी चिपकाता रहता था कि यह उसकी आंखों या कि होठों की कोर की विशेषता है या यह ऐसे बनेगी।"[२५] अज्ञेय आत्मनिर्भर थे और अपनी आजीविका प्राप्त करने से लेकर दैनिक कार्यों को करने में भी सक्षम थे।

अज्ञेय के अन्य गुण भी थे जैसे उन्हें फोटो खींचने में बहुत रुचि थी। उन्हें जो भी मनभावन लगता उसे वो फोटो में कैद कर लेते। उनकी फोटोग्राफी के विषय में ओपी शर्मा का कथन हैं- "फोटोग्राफी का उन्हें शुरू से शौक था। मैं उनसे बहुत छोटा था और फोटोग्राफी भी बहुत बाद में शुरू की। तस्वीरें खींचकर वे कई बार दृश्यों पर कविताएं लिखते थे। कई बार उन्होंने कविताएं लिखीं तो उनके लिए तस्वीरें खींची। सुनहले शैवाल में सारी उनकी खुद की खींची तस्वीरें हैं। तस्वीरों के बारे में वे अक्सर बातें करते थे। उन पर काफ़ी-काफ़ी देर तक चर्चा होती थी। फोटोग्राफी की गज़ब की समझ थी उन्हें। उनके उपकरण यानी कैमरा, लेंस वगैरह बहुत पेशेवराना थे।"[२६] परंतु इन सबके बीच उनकी जिसमें सब से अधिक एकाग्रता रही वह था- लेखन क्षेत्र। अपने सम्पूर्ण जीवन में अज्ञेय ने जो कुछ भोगा उसे यथार्थ में पिरोकर प्रस्तुत कर दिया। अनेक कलाओं और विद्याओं के धनी अज्ञेय को यदि सर्वगुणी संपन्न कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। संभवत: इतने गुणों से संपन्न होने के कारण ही उनका साहित्य भी इतना वैविध्यपूर्ण रहा।

अज्ञेय के साहित्यिक जीवन-कार्यों को आधार देने में उनके विदेशी यात्राओं का भी योगदान रहा। अज्ञेय ने पूरे देश के भ्रमण के अतिरिक्त विदेशों में भी अध्ययन-अध्यापन का कार्य करते हुए अपने लेखन के लिए रचना सामग्री का संकलन किया। उन्होंने जापान, यूरोप, कैलिफोर्निया, युगोस्लाविया, ग्रीस आदि अनेक स्थानों के सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश को परखा तथा उनसे दृष्टि लेकर अनेक रचनाओं की रचना भारतीयता में पिरोकर की। इन यात्राओं में जापान की यात्रा का विशेष प्रभाव अज्ञेय पर पड़ा जिसके संदर्भ में उनका मत है- "सन् '५७ की गर्मियों की छुट्टियों में जापान जाने का सुयोग्य हुआ। जापानी साहित्य थोड़ा-बहुत पहले से पढ़ा था और यूरोपीय काव्य और चित्रकला पर जापानी काव्य और चित्रकला के प्रभाव की बात भी मेरी अनजानी नहीं थी। लेकिन तब से लगातार जापानी साहित्य पढ़ता रहा विशेषतया जाड़ों में लगातार कुछ महीनों तक बहुत-सा जापानी साहित्य पढ़ता रहा। विशेषतया जाड़ों में जापान के सुंदर प्राकृतिक स्थलों में अकेले घूमते या रहते हुए जापानी काव्य में गहरे उतरने का पर्याप्त अवसर मिला।"[२७] अज्ञेय का यह कथन दर्शाता है कि

अपनी यात्राओं के अनुभवों को उन्होंने किस प्रकार अपने साहित्य का हिस्सा बनाया। जापान की यात्रा का प्राकृतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक प्रभाव उनकी रचना 'अरी ओ करूणा प्रभामय' की कविताओं पर देखा जा सकता है। उन्होंने वहां की प्रकृति से प्रभावित होकर 'पूनो की सांझ' कविता रची -

"पति-सेवारत सांझ

उचकता देख पराया चांद

लला कर ओट हो गई।"[२८]

(जापान १९५७)

अज्ञेय और उनके साहित्य पर विदेशी यात्राओं, विशेषकर जापान-यात्रा के प्रभाव के विषय में रीतारानी पालीवाल का कथन है- "यायावरी के लिए प्रसिद्ध अज्ञेय ने दुनिया के बहुत से देशों की यात्राएं की थीं, और वहां के अनुभवों ने उनके रचना संसार को बहुत तरीके से प्रभावित भी किया; किन्तु १९५७ में उनकी जापान यात्रा ने उनके कर्म को कई तरह से नई दिशा प्रदान की जिसे संवेदना के विविध स्तरों पर महसूस किया जा सकता है। जापानी समाज कला और साहित्य को निकटता से देखने और समझने के इस अनुभव से अज्ञेय के गद्य और पद्य को विशेष रूप से कविता को नए विषय, नया शिल्प नई भंगिमाएं मिलीं।"[२९] कहना न होगा कि इन यात्राओं ने अज्ञेय के विचारों को निखारा और नई चिंतन दृष्टि भी दी।

अज्ञेय की सृजनशीलता बहुआयामी रही। उन्होंने न केवल कविताओं के क्षेत्र में, वरन उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रा आदि हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं में भी अपने लेखन द्वारा अपनी प्रतिभा को सिद्ध किया। अपनी इस प्रतिभा के लिए वे कई प्रसिद्ध राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मान से सुशोभित हुए जिनमें हिन्दी साहित्य का प्रतिष्ठित सम्मान १९७९ का 'भारतीय ज्ञानपीठ भी सम्मिलित है।

अज्ञेय अपने जीवन के अंतिम क्षण तक हिंदी साहित्य की सेवा में लगे रहे। उन्होंने न केवल हिंदी साहित्य को नई राह दिखाई वरन उसे नई दृष्टि भी दी। यद्यपि ४ अप्रैल १९८७ में उनकी जीवन वीणा सदा के

लिए मौन हो गई तथापि उनकी कृतियों में उनके स्वर की गूंज आज भी विद्‌यमान है। अज्ञेय एक कवि के रूप में सदैव अमर हैं। वे हर-किसी के विनम्र ऋण स्वीकारी थे। संभवत: वे अपने कार्यों और अपने जीवन से पूर्णत: संतुष्ट थे। तभी तो वे कहते हैं-

"नत हूं मैं

सब के समक्ष बार-बार मैं विनीत-स्वर

ऋण-स्वीकारी हूं-

विनत हूं।

'मैं मरूंगा सुखी

मैंने जीवन की धज्जियां उड़ाई हैं।"[३०]

ग- सर्जन के विविध आयाम

अज्ञेय के विराट व्यक्तित्व के साथ ही साथ उनका कृतित्व भी बहुआयामी और गहन चिंतन से परिपूर्ण है। आधुनिक समीक्षा पद्धति में कृतिकार के परिचय की बात उसकी कृतियों के माध्यम से की गई है। कृतियां ही हमें कृतिकार के आंतरिक व्यक्तित्व, उसकी दृष्टि, उसकी सोच और उसके विचारों से परिचित कराती हैं। इस संबंध में राजेन्द्र प्रसाद का मत है कि "किसी कृतिकार के आंतरिक व्यक्तित्व को जानने का यदि कोई विशेष उपयोगी माध्यम है तो वह है कवि का अपना रचना संसार। उनकी कृतियां ही मानो दर्पण हैं जिनमें कवि का अंतस् प्रतिबिम्बित होता है। एक ओर जहां किसी कृति में युग सत्य झांकता है वहां दूसरी ओर कवि का अपना व्यक्ति-सत्य भी उसमें निहित होता है। वास्तव में किसी कृति में जो कुछ भी है, वह कवि के अंतर्जगत से गुजरता हुआ काव्य-रूप में उतरा है इसलिए उसमें उसके निजत्व की छाप अवश्य रहती है।"[३१]

उपरोक्त कथन इस बात की पुष्टि करता है कि एक कवि से परिचित होने के लिए उसकी रचनाओं को जानना अत्यंत आवश्यक है। रचनाओं के माध्यम से ही हम कवि के अंतर्मन को पढ़ और समझ सकते हैं और

तभी सही मायने में उसे जानने का हमारा प्रयास सफल हो पाता है। रचनाएं न केवल हमें व्यक्ति की सत्यता का बोध कराती हैं वरन उस युग की परिवेश-परिस्थितियों की जानकारी भी देती हैं।

अज्ञेय का रचनात्मक व्यक्तित्व उनकी प्रथम कृति 'भग्नदूत' के माध्यम से सबसे पहले हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है परंतु इसका तात्पर्य यह बिलकुल नहीं है कि इस रचना से पूर्व उनके व्यक्तित्व में यह गुण (लेखन कार्य) विद्यमान नहीं था। उनमें काव्यत्व गुण का उन्मेष लगभग चार-पांच साल की उम्र से ही हो गया था जब उनके एक संबंधी द्वारा लाए गए फिरकनी को नाचते देखकर उन्हें यह आभास हुआ कि उन्होंने शब्दों की शक्ति को समझ लिया है। नाचते भूमीरी को देखकर अज्ञेय का कवि हृदय तुक बंदी करता है। इस संबंध में उनका कथन हैं- "मैंने जाना कि जो बात मैं कह रहा हूं, वास्तव में उससे अधिक कुछ कह रहा हूं- नाचत है 'भूमिरी'- मेरी 'भुमीरी' नाचती है सो तो ठीक; लेकिन अरी, भूमि भी तो नाचती है- 'नाचत है 'भूमि, री!' इससे आगे शब्द नहीं मिले, पर उस समय मैंने जाना कि मेरी भंवरी ही नहीं, भूमि भी नाचती है- सारा विश्व ब्रह्मांड नाच रहा है- मैंने एक साधारण वाक्य से एक असाधारण अर्थ निकाल लिया है- मैं अविष्कारक हूं, स्रष्टा हूं मैंने शब्द की शक्ति को पहचान लिया है, पहचान ही नहीं, स्वायत्त कर लिया है- और शब्द शक्ति ही तो आद्या है।"[३२] उक्त कथन से ज्ञात होता है कि उस छोटी सी अवस्था में ही अज्ञेय ने अपनी काव्य क्षमता को पहचान लिया। परंतु विधिवत रूप से उनके काव्यात्मक व्यक्तित्व का बोध 'भग्नदूत' के माध्यम से होता है।

'भग्नदूत'- १९३३ में प्रकाशित होने वाली उनकी प्रथम रचना है जो दिल्ली जेल में रहकर लिखी गई। उनके हृदय पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा जिसके कारण उनके विचारों में बहुत उथल-पुथल दिखाई देता है। 'भग्न' का शब्दकोशगत अर्थ है-१ "टूटा हुआ, खंडित', २-पराजित, ३-हताश"[३३] और 'दूत' का अर्थ है "संदेश पहुंचाने वाला व्यक्ति"[३४] इस दृष्टि से 'भग्नदूत' का संवेदनात्मक अर्थ यह है कि परिस्थितियों से पराजित या हताश हो जाने पर भी जो एक नई चेतना का संदेश देना चाहता हो। भग्नदूत की कविताएं उस समय की हैं जब पूरे देश में स्वतन्त्रता के

लिए आंदोलन चल रहे थे। अज्ञेय भी इससे परे नहीं थे। जेल के एकांतपन और प्रताड़नाओं से उनके हृदय की भावनाएं प्रभावित तो हुईं लेकिन मनोबल कहीं से कम नहीं हुआ। अतः कवि पूरे विश्व का दुख सह कर भी नई चेतना का संचार करना चाहता है। 'अनुरोध' नामक कविता में वे कहते हैं-

"अभी नहीं- क्षण भर रूक जाओ, महफ़िल के सुनने वालों!

मत संचित हो कोसो, हे संगीत सुमन चुनने वालों

नहीं मूक होगी यह वाणी भग्न न होगी तान

टूट गयी यदि वीणा तो भी झनक उठेंगे प्राण।"[३५]

डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद का मत है कि- "भग्नदूत" कवि के किशोर मन पर पड़े गंभीर आघात का द्योतक है। बहुत बड़े उद्देश्य की प्राप्ति को किशोर जितना सरल समझता है वह उतना सरल नहीं होता। संघर्ष के सामने आने पर अपने को भग्नदूत मान लेता है।"[३६] 'भग्नदूत' में कवि का हृदय अति संवेदनशील है। कवि के मन में अनेक आदर्श हैं जिन्हें वह स्थापित करना चाहता है परंतु नहीं कर पाता इसलिए तो वह स्वयं को 'भग्नदूत' समझ लेता है।

'भग्नदूत' की कविताएं उस समय रची गई जब छायावाद का अवसान एवं प्रगतिवाद का उत्थान हो रहा था जिसने अज्ञेय को भी प्रभावित किया। छायावादी प्रवृत्तियों में प्रणय एवं वेदनानुभूति, जड़-चेतन का एकात्म्य भाव, प्रकृति-प्रेम एवं रहस्यवाद प्रमुख रूप से विद्यमान हैं। इन प्रवृत्तियों का प्रभाव 'भग्नदूत' पर भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। अरुण भारद्वाज का मंतव्य है कि "भग्नदूत में 'दृष्टिपथ से तुम जाते हो जब', 'घट', 'रहस्य' जैसी कविताओं में सियाराम शरण गुप्त से ले कर महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे छायावादी संस्कारों के कवियों की प्रतिध्वनियां मिलती हैं।"[३७]

'भग्नदूत' की प्रथम कविता 'दृष्टिपथ से तुम जाते हो जब' में छायावादी-प्रेम की अभिव्यक्ति है-

"दृष्टिपथ से तुम जाते हो जब

तब ललाट की कुंचित अलकों, तेरे ढरकीले आंचल को

तेरे पावन चरण-कमल को

छू कर धन्य भाग अपने को लोग मानते हैं सब के सब

"मैं तो केवल तेरे पथ से

उड़ती रज की ढेरी भर के

चूम-चूम कर संचय कर के

रख भर लेता हूं मरकत मणियों सा अंतर कोषों में तब।"[३८]

इसमें साधक अपने आराध्य की साधना कर रहा है। जिस पथ से असीम शक्ति गुजरती है उसकी धूल भी साधक के लिए मणियों एवं हीरों के समान अमूल्य बन जाती है। 'असीम प्रणय की तृष्णा', रहस्य जैसी कविताओं में ऐसे ही भाव-संवेदनाएं निहित हैं। इन कविताओं में भौतिक और अलौकिक प्रेम जैसी संवेदनाएं एक साथ प्राप्त होती हैं। इस संदर्भ में भोला भाई पटेल का कथन है- "वास्तव में स-सीम असीम के प्रणय संबंधों की ये कविताएं एकाधिक अर्थ से युक्त हैं। वैष्णव कवियों के पदों की तरह या रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि की तरह इन रचनाओं में मानवीय प्रणय का संकेत पढ़ा जा सकता है।"[३९]

इस काव्य संग्रह की कविताओं में जहां भावनाओं की विविधता है वहीं विचारों में परिपक्वता की कमी दिखाई देती है। 'तुम और मैं', 'प्रश्नोत्तर', 'कहो कैसे मन को समझा लूं',', आदि कविताएं मानवीय प्रेम और प्रणय संबंधी भाव-बोध से परिपूर्ण हैं। 'कहो कैसे मन को समझा लूं' कविता में कवि के अपरिपक्व प्रेम की झलक मिलती है-

"कहो कैसे मन को समझा लूं

झंझा के द्रुत आघातों-सा

द्युति के तरलित उत्पातों- सा

था वह प्रणय तुम्हारा, प्रियतम!"[४०]

संग्रह की 'प्रस्थान', 'क्रांति-पथे', 'विकल्प' आदि कविताएं देश-प्रेम से संबंधित हैं। 'शिशिर के प्रति', 'प्रात: कुमुदिनी' शीर्षक की कविताएं प्रकृति से संबंधित हैं। 'पराजय गान', 'अपना गान', अकाल-घन आदि कविताओं में निराशा के भाव दिखाई देते हैं। जैसा कि विद्यानिवास जी के उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि यह समय घोर यातना और पीड़ा का था, यह पीड़ा उनकी कविताओं में भी दिखाई देती है। 'पराजय गान' में वह कहते हैं-

"विजय? विजेता! हा, मैं तो हूं स्वयं पराजित हो आया

जग में आदर पाने के अधिकार सभी मैं खो आया।"[४१]

इस कविता में कवि के मन में कुछ न कर पाने की खीझ और निराशा भी दिखाई देती है। इस प्रकार भग्नदूत की कविताओं में हम पाते है कि कवि की कोई एक प्रवृत्ति नहीं है। विचारों में कोई एकता नहीं है परंतु कवि के मन में एक आस्था अवश्य है जिसका विकास उनकी अग्रिम काव्य संग्रहों में हुआ है। भग्नदूत की कविताओं के विषय में प्रफुल्लचंद ओझा 'मुक्त' का कथन है- "कविताएं तो किसी नौसिखुए की अटपटी बोली- जैसी थी- न छंद शुद्ध थे, न भाषा सुघड़ थी। बेशक, कविताओं की पंक्तियों में एक तड़प जरूर झलक जाती थी।"[४२]

'चिंता'- अज्ञेय का १९४२ में प्रकाशित होने वाला द्वितीय काव्य संग्रह है जो गद्य- पद्य शैली में रचित है। इस संग्रह में स्त्री और पुरुष के रोमांस से लेकर पति-पत्नी के मध्य संबंधों के उतार-चढ़ाव को आख्यानक कविता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस रचना के बारे में अज्ञेय का कथन है- "इस पुस्तक का जो विषय है- मोटे तौर पर जिसे प्रेम कह लें और जिसमें 'ममेतर' के प्रति रोमानी कौतूहल से ले कर दांपत्य तक के सभी प्रकार के ग्रह-विग्रह का अनुभव आ जाता है।"[४३] अज्ञेय स्त्री, पुरुष और उनके मध्य प्रेम को चिरंतन प्रेम की संज्ञा देते हैं जिसका आधार अनिवार्य गतिशीलता है। उन्होंने 'चिंता' की पहले संस्करण की भूमिका में कहा है- "पुरुष और स्त्री का संबंध पति और पत्नी का नहीं चिरंतन पुरुष और चिरंतन स्त्री का संबंध- अनिवार्यत: एक गतिशील (डाइनैमिक) संबंध है। गति उसके किसी एक क्षण में हो

या न हो, गतिशीलता- गति पा सकने का आंतरिक सामर्थ्य- उसके स्वभाव में निहित है।"[४४]

संग्रह की कविताएं दो खंडों 'विश्वप्रिया' एवं 'एकायन' में विभाजित हैं। 'चिंता' के प्रथम खंड '**विश्वप्रिया'** में पुरुष का प्रेमी हृदय दृष्टिगत है। स्त्री, 'प्रिया' के रूप में पुरुष के आकर्षण का प्रतीक है लेकिन वह चिरंतन स्त्री है इसलिए 'विश्वप्रिया' है। नारी के सौंदर्य में पुरुष का वासनायुक्त हृदय बंधा प्रतीत होता है। नारी से आकर्षित अपने प्रेम की अनुभूति को प्रकट करते हुए पुरुष अपना आत्मविश्लेषण करता है। वह कहता है -

"तेरी आंखों में क्या मद है जिसको पीने आता हूं-

जिसको पी कर प्रणय-पाश में तेरे मैं बंध जाता हूं?

तेरे उर में क्या सुवर्ण है जिस को लेने आता हूं-

जिस को लेते हृदय-द्वार की राह भूल मैं जाता हूं?"[४५]

अज्ञेय अपनी इस कविता पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव मानते हैं। उनका कथन है- "मेरा अनुमान है कि इस पर श्री ठाकुर की 'गीतांजलि' का प्रभाव परोक्ष रूप से रहा ही , क्योंकि किन्हीं भी आंखों के मद की महक भी तब तक पहचानी हो ऐसा याद नहीं पड़ता। ये भाव कल्पित ही अधिक थे, अनुभूत कम।"[४६]

'एकायन' खंड में नारी का दीप्त रूप दृष्टिगोचर होता है। इसमें नारी की प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है। वह अपना सर्वस्व निछावर कर अपने प्रियतम की होना चाहती है-

"तुम्हारी होकर मैंने अपने अंतिम दुर्ग का द्वार भी तुम्हारे लिए खोल दिया है- अपना अभिमान तुम्हारे पथ में बिखरा दिया है।"[४७]

अत: चिंता काव्य संग्रह में स्त्री-पुरुष के प्रणय-गाथा की प्रस्तुति अत्यंत मार्मिकता से की गई है। सृष्टि की उत्पति और विकास इस प्रणय संबंध पर ही आधारित है। लेकिन नर-नारी के प्रणय और उनके अंतर्संबंधों का विचार नया नहीं है। अज्ञेय से पूर्व भी प्रणय-कथात्मक

रचनाएं रचीं गईं हैं- उदाहरण के रूप में प्रसाद की 'कामायनी' को लिया जा सकता है। 'कामायनी' भी मानव प्रणय व्यापार की कथा है। इस संबंध में रमेश चंद्र शाह का कथन है- " 'चिंता' का कवि जिस 'प्राचीन अकथ्य कथा' को, आदिम प्रथम पुरुष की प्रणय कथा को सुनाना चाहता है, उसे क्या हम कामायनी में भी नहीं सुन आए हैं?"[४८]

यह सत्य है कि 'चिंता' की कहानी कोई नई बात नहीं कहती परंतु प्रेम के स्वाभाविक प्रकृति के विभिन्न सोपानों की अज्ञेय ने नई दृष्टि से व्याख्या अवश्य की है। इस संदर्भ में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का भी मत है कि "चिंता में कवि अज्ञेय की प्रेम संबंधी चिंतना एक नए दृष्टिकोण से अवश्य समन्वित है परंतु प्रेमतत्व के मानवीय उत्थान, पतन और विकास की भूमिकाएं नई नहीं हैं। इन पर अनेकानेक कवियों ने चिरस्मरणीय कार्य किया है। श्रृंगार रस के शास्त्रीय विवरणों में अनेकानेक प्रेम दशाओं का विशद उल्लेख है जिनमें अज्ञेय की उदभावना समाहित हो जाती है इस प्रकार विचार और रचना दोनों दृष्टि से अज्ञेय की चिंता कोई अतिक्रामक सृष्टि नहीं है। फिर भी नई विचारणा का अभिनव प्रयोग इसमें अवश्य प्राप्त होता है।"[४९]

'इत्यलम'- अज्ञेय का १९४६ में प्रकाशित होने वाला तीसरा काव्य संग्रह है। डॉ राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार "इसमें भग्नदूत की चुनी हुई कविताओं के अतिरिक्त शेष चार भागों में 'बंदी-स्वप्न', 'हिय-हारिल', 'वंचना के दुर्ग' और 'मिट्टी की ईहा' शीर्षक के अंतर्गत समय समय पर विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली कविताएं संगृहीत हैं। इसे अज्ञेय का प्रथम समस्त फुटकर कविताओं का संग्रह मान सकते हैं।"[५०]

'बंदी-स्वप्न' में कवि के बंदी जीवन की विषादयुक्त कविताएं अभिव्यक्त हुईं हैं। अज्ञेय ने देश की स्वतन्त्रता के लिए अनेकों वर्ष जेल में बिताए, अनेक पीड़ाएं सहीं जिसका प्रभाव उनकी कविताओं में दिखता है। 'बद्ध' कविता में कवि की यही पीड़ा अभिव्यक्त है-

"किस ललकार भरे स्वर में कहता है: 'बंदी! बंदी!'

इस घन निर्जन में एकाकी प्राण सुन रहे स्तब्ध

हहर-हहर कर फिर-फिर आता एक प्रकंपित शब्द-

बद्ध!"[५१]

इसके अतिरिक्त इस खंड में 'विशाल जीवन', 'घृणा का गान', 'कीर की पुकार', 'रक्तस्नात वह मेरा साक़ी', 'अकाल घन', 'अखंड ज्योति', 'चलो चलें, 'दूरवासी मीत मेरे', 'मैं वह धनु हूं', आदि कविताएं संकलित हैं जिसमें देश-प्रेम, सामाजिक चिंतन, आक्रोश, व्यंग्य, आदि विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। 'घृणा का गान' कविता मे कवि ने अत्याचारियों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है और उन्हें ललकारते हुए कहता है-

"तुम सत्ताधारी, मानवता के शव पर आसीन,

जीवन के चिर-रिपु विकास के प्रतिद्वंदी प्राचीन

तुम श्मशान के देव! सुनो यह रण-भेरी की तान-

आज तुम्हें ललकार रहा हूं, सुनो घृणा का गान।"[५२]

इस कविता में कवि का प्रगतिवादी स्वर मुखर हुआ है जिसमें कवि ने अपने क्रोध को आक्रामक भाषा में अभिव्यक्त किया है।

'हियहारिल' कविता में प्रेम और प्रणय तथा रहस्यवादी भाव संवेदनात्मक कविताएं हैं। 'अतीत की पुकार', 'प्राण तुम्हारी पदरज फूली', 'मैंने आहुति बनकर देखा है', 'मैं तुम्हारे ध्यान में हूं', 'तंद्रा में अनुभूति' आदि कविता में प्रेमाभिव्यक्ति हुई। 'तंद्रा में अनुभूति' कविता में कवि तंद्रावस्था में अपने प्रिय के मिलन का जाल बुनता है परंतु चेतनावस्था में उसके खो जाने के डर से उसे पीड़ा होती है इसलिए वह कहता है-

"यही रहेगा क्या प्रियतम! अब सदा के लिए अपना प्यार?

तंद्रा में अनुभूति, किन्तु जागृति में केवल पीड़ा-भार?"[५३]

'आज थका हियहारिल मेरा' कविता में हारिल कवि के आत्मा का प्रतीक है जिसके द्वारा अपनी प्रणयानुभूति को प्रकट करता है।

"दृढ़ डैनों के मार थपेड़े अखिल व्योम को वश में करता,

तुझे देखने की आशा से अपने प्राणों में बल भरता,

उषा से ही उड़ता आया, पर न मिल सकी तेरी झांकी

सांझ समय थक चला विकल मेरे प्राणों का हारिल पाखी:"[५४]

इस कविता के संबंध में डॉ कृपाशंकर का मत है- "आत्म प्रतीकों के माध्यम से हारिल पक्षी को अपना प्रतीक मानते हैं और वे यह उद्घोषित करते हैं वे इस जगत में निराश होकर प्रेयसी की स्मृति को हृदय में धारण करते हुए उसकी छाया का आभास मात्र पाने के लिए आकाश में बड़ी ऊंचाई पर उड़ रहे हैं।"[५५] इन कविताओं की विशेषता यह है कि कवि अपने प्रेमाभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को अपना माध्यम बनाया है। 'अंतिम आलोक', 'सूर्यास्त' जैसी प्रकृति से संबन्धित कविताएं भी इसमें मिलती है।

तीसरा खंड 'वंचना के दुर्ग' में व्यंगात्मक कविताएं है। सुश्री सुमन झा का मत है - 'वंचना के दुर्ग खंड में' व्यंग्य का प्राधान्य हो गया है। यह उस भावुकता से बहुत भिन्न है जो पूर्ववर्ती रचनाओं में मिलती हैं। इस खंड की अनेक रचनाएं तारसप्तक में भी प्रकाशित हैं इन्हें ही प्रयोगवादी काव्य की आरंभिक रचनाएं कहा गया था।"[५६] इस कथन और इन कविताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि यहां से अज्ञेय की कविताओं के स्वर नए रूप में दिखने लगते हैं। उदाहरण के रूप में 'आवाहन' कविता की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

"ठहर, ठहर, आततायी! जरा सुन ले!

मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा!

रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय, मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले

क्षण-भर स्थिर खड़ा रह ले- मेरे दृढ़ पौरुष की एक चोट सह ले!

नूतन प्रचंडतर स्वर से आततायी, आज तुझको पुकार रहा मैं"[५७]

अज्ञेय यहां बेलौस और बेबाक भाषा का प्रयोग करते हैं। वे आततायी को जब ललकारते हैं तो शोषितों की पीड़ा से कराहते दिखते हैं जो अज्ञेय

के नवीन दृष्टि का परिचायक है। 'शिशिर की राका-निशा' और 'वर्ग भावना' जैसी कविताओं में भी यही व्यंग्य और विद्रूपता दिखाई देती है।

इस खंड में कवि मुक्त प्रेम और यौन-चेतना के प्रति भी सजग दिखाई देता है। 'रात होते- प्रात होते', 'चार का गजर', 'चरण पर धर चरण', 'सावन मेघ' आदि कविताएं इस भाव संवेदना को प्रकट करती हैं। 'सावन मेघ' कविता की पंक्तियों में प्रकृति के माध्यम से अज्ञेय की यौन-संवेदना का मुक्त रूप दिखाई देता है। अपनी इस प्रकार की रचनाओं के विषय में इस कविता को दृष्टांत के रूप में देते हुए तारसप्तक में अज्ञेय ने कहा है- "आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे कल्पनाएं सब दमित और कुंठित हैं। उसकी सौंदर्य चेतना भी इससे आक्रांत है। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं।"[५८]

'मिट्टी की ईहा' इस संग्रह का अंतिम खंड है। इसमें भी पूर्वखंड की भांति संवेदनाओं वाली कविताएं मिलती हैं। इसकी कविताएं सूक्ति रूप में मिलती हैं। 'मिट्टी की ईहा', शीर्षक कविता में कवि ने मिट्टी और मिट्टी के समान समझे जाने व्यक्तियों के प्रति अपना मत व्यक्त किया है-

"कितना तुच्छ है तुम्हारा अभिमान

जो कि मिट्टी नहीं हो -

जो कि मिट्टी को रौंदते हो -

क्योंकि मिट्टी ही ईहा है।"[५९]

अज्ञेय के दृष्टिकोण में परिवर्तन की दृष्टि से यह काव्य महत्वपूर्ण है, जिसमें वे नव्य संवेदनाओं की भूमि से जुड़े प्रतीत होते हैं। उनकी 'समाधि लेख', और 'जन्म दिवस' दो महत्वपूर्ण कविताएं हैं जोकि उनकी भिन्न संवेदना को व्यक्त करतीं हैं। इस संग्रह में जीवन के प्रति कवि का आदर्शवादी रूप दिखाई देता है जो उनके भिन्न दृष्टिकोण को दर्शाता है। 'पानी बरसा' 'कांगड़े की छोरियां', 'माघ-फागुन-चैत', 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे', आदि प्रेम और प्रकृति संबंधी कविताएं भी इसमें संकलित हैं।

अज्ञेय की आरंभिक इन तीनों रचनाओं को समग्र रूप से देखने पर ज्ञात होता है कि कवि 'भग्नदूत' में छायावाद से विचरण करते हुए 'इत्यलम' में प्रगति के पथ पर अग्रसर होता है। 'भग्नदूत' में जहां कवि काव्य के प्रत्येक स्तर पर छायावाद से प्रभावित है वहीं 'इत्यलम' तक आते आते उसके विचारों में प्रगति की अभिव्यक्ति होने लगती है जिसका विकास उनकी अग्रिम कविता संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' में देखा जा सकता है।

'शरणार्थी' 'हरी घास पर क्षण भर' से पूर्व अज्ञेय के इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् १९४८ में हुआ जिसमें 'मानव की आंख', 'पक गई खेती', 'मिरगी पड़ी', 'रुकेंगे तो मरेंगे', 'हमारा रक्त', 'गाड़ी रुक गई', 'समानांतर सांप' 'श्री मद्धर्मधुरंधर पंडा', 'जीना है बन सीने का सांप' आदि मुख्य कविताएं हैं। इनमें उनकी सामाजिक चेतना का स्वर व्यंग्यात्मक रूप में मुखर हुआ है। 'जीना है बन सीने का सांप' कविता में वे कहते हैं -

"जीना है हमें तो, बन सीने का सांप उस अपने समाज के
जो हमारा एकमात्र अक्षंतव्य शत्रु है
क्यों कि हम आज हो के मोहताज
उस के भिखारी शरणार्थी हैं।"[६०]

'हरी घास पर क्षण भर' काव्य संग्रह का प्रकाशन १९४९ में हुआ। हिंदी-जगत में इस संग्रह से ही अज्ञेय एक नए काव्य प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस संदर्भ में नरेश मेहता का मत दृष्टव्य है- "सन् '४८/४९ में ही तो उनका काव्य-संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' निकला था, जो कलांतर में उनकी काव्य यात्रा का 'क्लासिक-बिगनिंग' सिद्ध हुआ। 'तार-सप्तक', 'प्रतीक' और 'हरी घास पर क्षण भर' के साथ वात्स्यायन ने दूसरी इनिंग शुरू की और जिसमें उन्होंने कई रेकार्ड बनाए, तोड़े और दर्ज करवाए और अंत तक नाट आउट रहे।"[६१] इनके इस कथन से ही अज्ञेय और उनके इस काव्य-संग्रह की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।

'हरी घास पर क्षण भर', 'कलगी बाजरे की', 'नदी के द्वीप', 'सपने मैंने भी देखे हैं' इत्यादि इस संग्रह की कुछ महत्वपूर्ण कविताएं हैं जो उन्हें युग प्रवर्तक कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने में अपना विशेष स्थान रखती हैं। इसकी महत्वपूर्ण कविता 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज के संबंध को आधुनिक अर्थ प्रदान किया है। 'कलगी बाजरे की' कविता में अज्ञेय एक प्रयोगवादी कवि के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं। वे यहां काव्य को नई दृष्टि देकर उसके कलेवर को बदलना चाहते हैं। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक नए-नए प्रयोग कर नया अविष्कार करता है उसी प्रकार अज्ञेय भी कविता को अन्वेषण की कसौटी पर कसना चाहते हैं इसलिए वे अब तक प्रयोग किए जाने वाले उन सभी उपमानों को मैला कह देते हैं जो पुराने पड़ गए हैं। वे कहते हैं -

"ये उपमान मैले हो गए हैं।

देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है"[६२]

'मुझे सब कुछ याद है', 'जब पपीहे ने पुकारा', 'हरी घास पर क्षण भर', 'पहला दौंगरा' आदि कविताओं में प्रेमानुभूति अभिव्यक्त हुई है। 'हरी घास पर क्षण भर' की पंक्तियों में कवि अपने प्रेयसी से रंचमात्र दूरी नहीं चाहता इसलिए वह कहता है-

"आओ, बैठो।

तनिक और सट कर, कि हमारे बीच स्नेह-भर का व्यवधान रहे, बस,

नहीं दरारें सभ्य शिष्ट जीवन की।"[६३]

इसी प्रकार 'कतकी पूनो', 'दूर्वाचल', 'सबेरे-सबेरे', 'बंधु हैं नदियां', 'क्वांर की बयार' आदि कुछ मर्मस्पर्शी प्रकृतिपरक रचनाएं इस सग्रह में संकलित हैं। इसमें विषय की विविधता के साथ-साथ कवि के विचारों में एकाग्रता, पैनापन एवं दूरदर्शिता झलकती है।

कविता को नए संदर्भ से जोड़ने की दृष्टि से इस संग्रह को महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। अज्ञेय के इस संग्रह ने ही कदाचित नई कविता के लिए मार्ग सुनिश्चित किया। इस संबंध में केदारनाथ सिंह का मन्तव्य है- "उनकी काव्यात्मकता का यह पहला दौर 'हरी घास पर क्षण-भर' के प्रकाशन के साथ अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचता है और उसी के साथ समाप्त भी होता है बाद में जिसे नई कविता के नाम से जाना गया, पहली बार उसका प्रत्यक्ष आभास 'हरी घास पर क्षण-भर' से ही मिला था।"[६४]

'बावरा अहेरी'- अज्ञेय की अगली काव्य-रचना है जिसका प्रकाशन १९५४ में हुआ। इसमें अज्ञेय की १९५० से १९५३ तक की कविताएं संकलित हैं। यह अज्ञेय की सुंदर कविताओं की छोटी काव्य-रचना है जिसमें उन्होंने 'बावरा अहेरी' शीर्षक को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इस रचना के संबंध में डॉ कृपाशंकर पांडेय का कथन है- "उमर ख़ैयाम की रूबाइयों के अंग्रेजी अनुवाद के प्रभाव में इस संग्रह की कविताएं अपनी संरचना में प्रतीकार्थ भाव रखती हैं। फिटजेराल्ड ने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद करते समय प्रात: कालीन आलोक को 'हंटर ऑफ दि ईस्ट' कहा है।"[६५] अत: फिटजेराल्ड के इसी 'हंटर ऑफ दि ईस्ट' अर्थात सूर्य को अज्ञेय ने 'अहेरी' कहा है जो अपने किरणों के प्रकाश से जीवन के अंधकार का आखेट कर लेता है। अज्ञेय की यह कविता कदाचित जीवनदाई सूर्य की वंदना प्रतीत होती है जिसमें कवि की उस अहेरी से कामना है कि वह उसके मन की कलुषता को भी हर ले -

"बावरे अहेरी रे

कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट है:

एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी क्लौंस को

दुबकी ही छोड़ कर क्या तू चला जाएगा?

ले, मैं खोल देता हूं कपाट सारे

मेरे इस खंडहर की शिरा-शिरा छेद दे आलोक की अनी से अपनी;"[६६]

इस संग्रह में प्रकृति, प्रेम-प्रणय, समष्टि-बोध संबंधी महत्वपूर्ण कविताएं संगृहीत हैं। इस संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन दृष्टनीय है-" प्रकृति, प्रणय और अतीत के सम्मोहन पर आधारित कुछ अधिक और अच्छी कविताएं 'बावरा अहेरी' (१९५४) में संकलित हैं।"[६७] प्रकृतिपरक कविताओं में 'वसंत की बदली', 'वसंत गीत', 'चांदनी जी लो', ये मेघ साहसिक सैलानी' आदि के नाम लिए जा सकते हैं। 'नख-शिख', 'सबेरे-सबेरे तुम्हारा नाम', देह-वल्ली' की कविताओं में प्रेम संवेदना झलकती है। 'यह दीप अकेला' कविता में कवि का व्यष्टि और समष्टि के समन्वय का आग्रह है। 'शोषक भैया' कविता में व्यंग्य की अभिव्यक्ति है। विभिन्न प्रभावशाली और मार्मिक भाव-बोधों की इस रचना में अज्ञेय मंझे हुए कवि के रूप में दिखाई देते है।

'इंद्रधनु रौंदे हुए ये'- सन् १९५७ में प्रकाशित इस संग्रह में कुल ५८ कविताएं हैं जिसमें कवि का आत्मान्वेषणात्मक रूप दिखाई देता है। इस संग्रह के 'मंगलाचरण' कविता में अज्ञेय करुणामयी विराट से भावों और शब्दों के अपार भंडार देने की प्रार्थना करते हैं क्योंकि वह जानते हैं कि एक कवि के लिए शब्द ही सबसे बड़ा धन है-

"भावों का अनंत क्षीरोदधि शब्द-शेष फैले सहस्त्र-फण,

एक अर्थ से तुम हो अच्युत, मुझ को भी दे दो करूणा-कर!"[६८]

'बावरा अहेरी' की विषय-विविधता 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' संग्रह में भी दिखाई देती है। अज्ञेय की सौंदर्यानुभूति का परिचय उनकी प्रकृति और प्रेमपरक कविताओं में दृष्टव्य है। 'सूर्यास्त', 'बर्फ़ की झील', 'टेसू',' 'सागर तट की सीपियां', आदि रचनाएं प्रकृति से प्रेरित हैं। इस संग्रह की कविताओं में कवि की एक वेदना दिखाई देती है। 'एक दिन कविता' में कवि के इसी संवेदना का वह कहता है-

"एक दिन जब

दे न पाया जो, उसी की नोक बेबस सालती रह जाएगी -

क्यों कि दे पाया अगर कुछ, याद उसको आज

मैं करता नहीं हूं, और जीवन! शक्ति दो

उस दिन न चाहूं याद करना:"[६९]

इस कविता में कवि के हृदय की कसमसाहट है। कवि ने बड़े ही मार्मिक ढंग से कविता में वेदनापूर्ण अभिव्यक्ति की है। इस संबंध में राम कमल राय का मत है- " 'इंद्रधनु रौंदे हुए ये' की अनेक कविताओं में इस मीठी कसक के दर्शन होते हैं। पहली ही कविता 'एक दिन जब' ऐसी ही करूण अनुभूति से सनी है।"[७०] इत्यलम की कविताओं में अज्ञेय की कदाचित एक नव्य संवेदना 'इतिहास की हवा', 'इतिहास का न्याय' कविता में दिखाई देती है। 'सांप', 'रैंक' आदि कविताओं में नगरीय सभ्यता पर कवि की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। 'मुझे तीन शब्द दो', 'सर्जना के क्षण', 'कवि के प्रति कवि' आदि सर्जन-प्रक्रिया संबंधी रचनाएं हैं'।

'अरी ओ करुणा प्रभामय' इस संग्रह में अज्ञेय की जापानी यात्रा का प्रभाव रहा। यह काल अज्ञेय के पूर्वी देशों (जापान, चीन) की यात्राओं का रहा जिसके साहित्य और संस्कृति के प्रभाव ने कवि की संवेदनाओं को नवीनता प्रदान की। संग्रह की भूमिका में कवि ने पूर्वी देशों का प्रभाव स्वीकार करते हुए कहा है कि "प्रस्तुत संग्रह में अनुवादों को छोड़ कर अन्य अनेक कविताओं में भी पूर्व के (और पश्चिम के भी क्यों नहीं?) प्रभाव मिलेंगे; लेखक सभी का स्वीकारी है।"[७१] इस संग्रह पर " 'ज़ेन' बौद्ध संप्रदाय की विचार और साधना पद्धतियों का, और तत्संबंधी साहित्य और वृत्त का भी"[७२] कवि ने ऋण स्वीकार किया है।

अज्ञेय का इस काव्य संग्रह का प्रकाशन १९५९ में हुआ था। इसमें १९५६-५८ तक की कविताओं का संग्रह मिलता है। यह संग्रह चार खंडों 'रोपयित्री', 'रूप केकी', 'एक चीड़ का खाका', और 'द्वार हीन द्वार' में विभाजित हैं। इसमें कुल १११ कविताओं का संकलन है। काव्य के प्रथम खंड 'रोपयित्री' में १८ कविताएं हैं। 'अच्छा खंडित सत्य', 'शब्द और सत्य', 'नया कवि : आत्म-स्वीकार', 'बड़ी लंबी राह', 'इशारे ज़िंदगी के', आदि कविताओं में कवि ने अपने आत्मानुभवों को अभिव्यक्ति दी है। 'नया कवि: आत्मस्वीकार' कविता में अज्ञेय स्वयं को नया और आधुनिक कवि घोषित करते हुए कहते हैं कि नया और आधुनिक कवि

वही है जो कविता में नई संभावनाओं के अन्वेषण में सदा प्रयत्नशील हो-

"यों मैं कवि हूं, आधुनिक हूं, नया हूं:

काव्य-तत्व की खोज में कहां नहीं गया हूं?"[७३]

'लौटे यात्री का वक्तव्य', 'हरा-भरा है देश', 'बांगर और खादर' आदि कविताएं कवि की सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालती हैं। 'औद्योगिक बस्ती', 'बिकाऊ', 'प्याला: सतहें', आदि विभिन्न विषयों से संबंधित कविताएं है। अंतिम कविता 'रोपयित्री' है।

'रूपकेकी' खंड में ३४ कविताएं हैं। अज्ञेय की जापानी हाइकू से प्रभावित तीन पंक्तियों की कई रचनाएं इस संग्रह में दिखाई देती है। उदाहरणार्थ 'चिड़िया की कहानी' कविता जापानी हाइकू से प्रभावित है -

"उड़ गई चिड़िया

कांपी, फिर

थिर

हो गई पत्ती।"[७४]

इस खंड में कुछ कविताओं को छोड़कर (रूपकेकी, ऋतुराज, सम्राज्ञी का नैवेद्य दान) सभी छोटी तथा प्रकृतिपरक हैं जिनमें 'धूप', 'बसंत', 'पूनो की सांझ', 'पहाड़ी यात्रा', सांध्य तारा' आदि मुख्य कविताएं हैं। यहां प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से अज्ञेय अपने भावों और विचारों और जीवन की कुंठाओं को व्यक्त किया है। 'सोन मछली', 'पहेली' 'खिड़की एकाएक खुली' आदि प्रतीकात्मक कविताएं भी इस रचना में मिलती है जिसमें कवि ने अपने भावों को अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से दी है-

"हम निहारते रूप

कांच के पीछे

हांप रही है मछली।

रूप तृषा भी

(और कांच के पीछे)

है जिजीविषा"[७५]

अज्ञेय मानते हैं कि प्रतीकों से सत्य को साधा जा सकता है। उनका मत है कि "वैज्ञानिक सागर की गहराई नापने के लिए रस्सी डालता है, या किरणों की प्रतिध्वनि का समय कूतता है। वह एक प्रकार का ज्ञान है। कवि मछली की दौड़ से सागर की गहराई भांपता है वह दूसरे प्रकार का ज्ञान है वह प्रतीक द्‌वारा सत्य को जानता है।"[७६]

'एक चीड़ का खाका' इस संग्रह का तीसरा खंड हैं। इसकी अधिंकाश कविताएं हाइकू अनुवाद हैं। इस संदर्भ में अज्ञेय का मत है- "क्रम-सूची में संख्या ५३-७९, जो 'एक चीड़ का खाका' नामक खंड के अंतर्गत है, जापानी कविताओं के अनुवाद हैं। मूल कवि के नाम कविता के अंत में दिए गए हैं।"[७७] इन मूल जापानी कवियों में 'बाशो', 'मोरिटाके', 'रांसेत्सु' आदि मुख्य कवि हैं। इसकी रचनाएं प्रकृतिपरक, बिम्बात्मक तथा लघु हैं जिनमें 'सागर चित्र', 'सागर पर भोर', 'सपने का सच', 'हिरोशिमा' आदि प्रमुख कविताएं हैं। अज्ञेय की जापान यात्रा ने उन्हें जापानी हाइकू कविताओं से प्रभावित किया। 'हाइकू' छोटी-छोटी रचनाएं हैं जिनमें गहन जीवनानुभूति होती हैं। 'हाइकू' के संदर्भ में रीतारानी पालीवाल का मत है कि "हाइकू जापानी साहित्य की अनोखी उपलब्धि मानी जाती है। काव्य रूप की दृष्टि से इन्हें लघु मुक्तक कहा जा सकता है। तीन पंक्तियों की इस कविता में ५-७-५ वर्ण होते हैं। इस तरह अपने आकार में यह दुनिया की लघुतम किन्तु किन्तु अपने आप में स्वत:पूर्ण कविता होती है। ख़ास बात यह है कि जापानी संस्कृति और परंपरा में जन्मा और पला हाइकू जापानी जनमानस और सौंदर्य चेतना का प्रतिनिधि काव्य है।"[७८]

अंतिम खंड 'द्‌वारहीन द्‌वार' में ३२ कविताएं हैं। कुछ कविताओं को छोड़कर अधिकतर कविताएं छोटी हैं। इसमें कवि की अपने क्षण-विशेष में किए गए अनुभूति की स्वतंत्र अभिव्यक्ति हुई है। इस संग्रह में कवि की दृष्टि आध्यात्मिक एवं सत्यान्वेषी दिखाई देती है। भोलाभाई पटेल का

कथन है कि "इस संग्रह के साथ हम अज्ञेय की काव्य यात्रा को हम एक नए मोड़ पर पाते हैं।"[७९]

'आंगन के पार द्वार' 'अरी ओ करुणा प्रभामय' के पश्चात १९६१ में प्रकाशित होने वाला काव्य संग्रह है। इस संग्रह के लिए अज्ञेय को १९६४ में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसकी कविताएं आध्यात्मिक हैं जिसका बीजारोपण 'अरी ओ करुणा प्रभामय' में ही हो गया था। यह संग्रह, 'अंत:सलिला', 'चक्रांतशिला', 'असाध्य वीणा' तीन शीर्षक कविताओं में विभाजित है।

'अंत:सलिला' खंड में १८ कविताएं हैं जिसमें 'सरस्वती पुत्र', 'पास और दूर', 'बना दे, चितेरे' इत्यादि प्रमुख कविताएं हैं। 'बना दे, चितेरे' और 'भीतर जागा दाता' आध्यात्मिक कविताएं हैं। 'चक्रांत शिला' खंड के अंतर्गत २७ कविताएं हैं जिनकी भाव-संवेदनाएं लगभग समान हैं। इसमें अज्ञेय के विराटसत्ता से संबंध का उल्लेख मिलता है। गहन आत्मचिंतन के द्वारा कवि संपूर्ण जगत में व्याप्त तत्व का दर्शन करने लगता है। वह कहता है-

"पर सबसे अधिक मैं

वन के सन्नाटे के साथ मौन हूं

क्योंकि वही मुझे बतलाता है कि मैं कौन हूं,

जोड़ता है मुझको विराट से

जो मौन, अपरिवर्त्य है अपौरुषेय है"[८०]

इसमें कवि की दृष्टि जहां रहस्यवादी है वहीं उसकी भाषिक सर्जनात्मक क्षमता भी देखने योग्य है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत है कि -"बाह्य उपकरणों से नितांत मुक्त कविताओं के कुछ श्रेष्ठ उदाहरण 'चक्रांतशिला' में मिलते हैं, जहां भाषा की सर्जनात्मक शक्ति और संघटित विधान का संपृक्त रूप रचना को संभव बनाता है। १३ और १६ संख्या की कविताओं का सम्प्रेषण इस दृष्टि से बेजोड़ है।"[८१]

तीसरे खंड में 'असाध्य वीणा' एक लंबी कविता है जो साहित्यकारों के लिए आकर्षण का विषय रहा है तथा अज्ञेय की श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। इसके संदर्भ में रामदरश मिश्र का कथन है- "असाध्य वीणा' का आधार एक जापानी कथा है। वह कथा अकोकुरा की पुस्तक 'दि बुक ऑफ ट्री' में संगृहीत है। इस कथा का नाम है- Taming Of the Harp।"[८२] अज्ञेय ने इस कथा के आधार पर यह कविता गढ़ी है जिसमें प्रियंवद नामक साधक के किरीट-तरु से बने वीणा के प्रति समर्पण-भाव की अभिव्यक्ति हुई है। साधक बन कर ही सत्य तक पहुंचा जा सकता है; इस तथ्य का प्रतिपादन कवि करना चाहता है। केशकंबली कहता है -

"कलावंत हूं नहीं, शिष्य, साधक हूं-

x x x x

कौन प्रियंवद कि दंभ कर

इस अभिमंत्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे?

कौन बजावे

यह वीणा जो जीवन भर की साधना रही?

भूल गया था केशकंबली राज सभा को:

कंबल पर अभिमंत्रित एक अकेलेपन में डूब गया था।"[८३]

कविता की इन पंक्तियों में अज्ञेय ने यह तथ्य प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है कि गर्व से किसी साध्य की प्राप्ति नहीं होती। इस कविता में अज्ञेय की रहस्यवादी प्रवृत्ति दिखाई देती है। इस संग्रह के संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत है- " 'आंगन के पार द्वार' में रचनाकार का सर्जनात्मक रहस्यवादी रूप अपनी निष्पति तक पहुंचता है।"[८४]

'कितनी नावों में कितनी बार' इसी क्रम में अज्ञेय का अगला काव्य संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् १९६७ में हुआ। इसमें १९६२ से १९६६ तक की कविताएं संगृहीत हैं। इस काव्य संग्रह को सन् १९७८ में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस संग्रह में कुल ४४

कविताएं हैं जो विभिन्न संवेदनाओं से संबंधित हैं जो अज्ञेय की विदेशी यात्राओं के फलस्वरूप दिखाई देती हैं। अज्ञेय की इस रचना के संबंध में मंजु तंवर का मत है- "इस काव्य-संग्रह की अधिकांश कविताएं अज्ञेय ने अपनी विश्व-यात्राओं के दौरान की, जिनका जरूरी उल्लेख कविताओं के अंत में किया गया है। इन यात्राओं के दौरान कवि-मन को उद्वेलित या विचलित करने वाले अनुभव और प्रसंग कविताओं में बेबाकी से उकेरे गए हैं।"[८५]

अज्ञेय के जीवन का एकांत आजीवन उनके साथ बना रहा। इन कविताओं में भी उनका अकेलापन यत्र-तत्र फैला है। वे कहते हैं-

"वही हम हैं:

घुप अंधेरे में

सरसराहटें सुनते हुए

अकेले

और मामूली"[८६]

मनुष्य के प्रति गहरी संवेदना के भाव इस काव्य संग्रह में दिखाई देता है। वह मानवीय प्रेम को ही सर्वोपरि मानता है। 'गति मनुष्य की' कविता में कवि कहता है -

"प्यासी है, प्यासी है गागर यह

मानव के प्यार की

जिसका न पाना पर्याप्त है

न देना यथेष्ट है,

पर जिसकी दर्द की अतर्कित पहचान

पाना है, देना है, सामना है।"[८७]

प्राकृतिक दृश्यों का भी सुंदर चित्रण इस काव्य में हुआ है। 'संध्या-संकलप', 'प्रात:संकल्प', 'निरस्त्र', 'हम नदी के साथ-साथ हैं' आदि प्रकृति

से संबंधित कविताएं हैं। 'युद्ध विराम' एक युद्ध से संबंधित कविता है जो अन्य किसी रचना में नहीं मिलती। 'महानगर: कुहरा', 'पेरियार', 'गृहस्थ', 'ओ नि:संग ममेतर', 'संपराय', इत्यादि अनेक विशिष्ट कविताएं इस संग्रह में संगृहीत हैं।

'क्योंकि मैं उसे जानता हूं'- अज्ञेय के इस काव्य संग्रह का प्रकाशन १९६९ में हुआ जिसमें १९६५ से १९६८ की कविताएं हैं। इस में कुल ५४ कविताएं मिलती हैं। डॉ कृपाशंकर पांडेय के अनुसार "इस संग्रह की कविताओं को दो वर्गों में विभक्त करके- (क) 'गूंज़ेगी आवाज़' (ख) 'प्रार्थना का एक प्रकार', अज्ञेय ने अपनी पूर्ववर्ती सभी काव्य प्रवृत्तियों का नमूना कहा है। ये रचनाएं उनकी सम्पूर्ण काव्य यात्रा का एक सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करती हैं।"[८८]

संग्रह में राजनीतिक, सामाजिक, प्रणयपरक, सत्यबोधक, आत्मपरिचयात्मक, व्यंग्यात्मक आदि विषयों पर आधारित कविताएं मिलती हैं। 'आजादी के बीस बरस', 'अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम', 'जनपथ x राजपथ', 'दास-व्यापारी', क्योंकि मैं', 'देश की कहानी दादी की जबानी', आदि रचनाएं राजनीतिक, सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य करती हैं। 'देश की कहानी दादी की जबानी' कविता में कवि कहता है-

"पहले यह देश बड़ा सुंदर था
हर जगह मनोरम थी।
एक-एक सुंदर स्थल चुन कर
हिंदुओं ने तीर्थ बनाए
जहां घनी बसाई हुई
गली गली नाके-नुक्कड़
गंदगी फैला दी।"[८९]

ये पंक्तियां देश की व्यवस्था के साथ-साथ देश की स्थिति में आए बदलाव पर व्यंग्य करती हैं। इसी प्रकार 'कहां से उठे प्यार की बात', 'चितवन', 'दिति कन्या को', 'प्यार', प्रेम और प्रणयाभूति विषयों पर

आधारित कविताएं हैं। 'एक दिन', 'होते हैं क्षण', 'पत्थर का घोड़ा', 'मोड़ पर का गीत' आदि कविताओं में अज्ञेय की अनुभूतियां सत्य के रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। 'मोड़ पर का गीत' कविता की पंक्तियां उनकी इसी अनुभूति को प्रकट करती हैं -

"जाना और जीना

जीना और जाना

न यह गहरी बात है कि इनमें होड़ है

न यही कि इनमें तोड़ है:

गहरी बात यह है कि दोनों ने बीच

एक क्षण है कहीं एक मोड़ है।"[९०]

इन पंक्तियों में 'क्षण' अज्ञेय का अनुभूत सत्य है जिसमें दार्शनिकता तो है किन्तु उनका साधा हुआ। अत: इस संग्रह की कविताओं में पूर्व-संग्रहों के भावबोधों का मिला जुला रूप दिखाई देता है।

'सागर मुद्रा' सन् १९७० में प्रकाशित काव्य संग्रह है जिसमें १९६७ से १९६९ तक की कविताएं संकलित हैं। इसकी अंतिम १६ कविताएं 'देलोस से एक नाव' शीर्षक खंड में रखी गई हैं जो अज्ञेय के ग्रीस यात्रा का प्रतिफल है। इस संबंध में अज्ञेय ने लिखा है- "अब यही आशा कर सकता हूं कि मेरी त्रुटियों के बावजूद देलोस से एक नाव पाठकों को रुचेगी। उसमें जो कुछ अच्छा है, वह ग्रीस की मेरी पिछली यात्रा की उपलब्धि है; जो अच्छा नहीं है, वह मेरी 'अल्पविषया मति' की सीमा है।"[९१] अज्ञेय ने ग्रीक भाषा की थोड़ी-बहुत जानकारी के आधार पर इसकी रचना की है। इस शीर्षक में 'देलोस से एक नाव', 'जीवन यात्रा', 'कस्तलिया का झरना', 'अल्स्योनी', 'मिरिना की तांतिन' आदि मुख्य कविताएं संकलित हैं जो ग्रीस भाषा से हिंदी में अनुदित हैं। यह अज्ञेय के रचनात्मक व्यक्तित्व के खुलेपन को दर्शाती है जो कहीं से ग्रहण करने में झिझकता नहीं है।

विषय की दृष्टि से संग्रह की कविताएं प्रेम, प्रकृति और कालपरक हैं जिसमें कवि की दृष्टि में परिपक्वता दिखाई देती है। 'कालपरक' कविताओं में 'काल स्थिति:१', 'काल स्थिति:२', 'काल की गदा', 'नदी का बहना', बालू-घड़ी' आदि प्रमुख हैं जिसमें कवि की काल संबंधी चेतना व्यंजित हुई हुई है। 'काल की गदा' कविता में वे कहते हैं-

"काल की गदा

एक दिन

मुझ पर गिरेगी।

गदा मुझे नहीं भाएगी:

पर उसके गिरने की नीरव छोटी सी-ध्वनि

क्या काल को सुहाएगी?"[९२]

उपरोक्त पंक्तियों से अज्ञेय की 'काल' संबंधी चिंतन दृष्टि ज्ञात होती है। काल संबंधी विचारों से उनकी बौद्धिक क्षमता का आकलन किया जा सकता है परंतु इसमें मार्मिकता का अभाव दिखाई देता है। डॉ देवराज भी मानते हैं कि "इस लघु रचना में चिंतन बहुत कुछ विचार के रूप में व्यक्त हुआ है, वह संवेदना के ताप या उष्णता से वंचित सा है।"[९३] 'प्रेमोपनिषद', 'छातियों के बीच', 'मरण के द्वार पर' आदि कविताओं में प्रेम की अभिव्यंजना हुई है। प्रेमपरक कविताओं की संवेदनाएं लगभग अज्ञेय की पूर्ववर्ती रचनाओं के समान हैं। 'प्रेमोपनिषद' कविता में कवि ने औपनिषदिक जीवन-मृत्यु के आधार पर प्रेम की व्याख्या की है। कवि अपने प्रेम को मुक्तिदाता के रूप में प्राप्य मानता है। वह कहता है-

"मैं हूं, जागरूक पहरेदार।

पक्षी और डाल, तरु और फूल,

सभी में देखता हूं

तुम्हारा होकर।

मुक्त करे तुम्हें, मौन

वही तो होगा

मेरा प्यार।"[९४]

इस संग्रह में 'सागर-मुद्रा' नाम से ११ कविताएं हैं जिसमें सागर की विभिन्न मुद्राएं परिलक्षित हैं। सागर को माध्यम बनाकर कवि अपने मन:स्थिति को प्रकट करने में सफल हुआ है। संग्रह की कविताओं में जीवन संबंधी पहलुओं को विस्तार मिलता है। ये कविताएं कहीं न कहीं इलियट की कविताओं से प्रभावित हैं। इस संबंध में अरुण भारद्वाज का मंतव्य है- "सागर मुद्रा के शीर्षक से ही ज्ञात होता है कि कवि सागर के विविधवर्णी विस्तीर्ण नाना रागात्मक सत्यों से भरी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, आस्था-अनास्था, रोमांस-यथार्थ के बिम्बों को समग्र एवं समन्वित कर साग़र एवं जीवन के अनेक रूपों में एकता का आभास देता है। इस संग्रह की अनेक कविताओं में इलियट की विविध कविताओं के अंशों का प्रतिरूप देखा जा सकता है।"[९५]

'**पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं'-** अज्ञेय का अगला काव्य संग्रह है जो १९७३ में प्रकाशित हुआ। इसमें १९७० से १९७३ तक की रचनाएं संकलित हैं। भाव-बोधों के आधार पर संग्रह की कविताओं में नयेपन के साथ गहरी अनुभूतियां दिखाई देती हैं। कवि का अनुभूत सत्य इन कविताओं में झलकता है। दृष्टांत के रूप में 'हम घूम आए शहर'-कविता में कवि ने शहरी जीवन के सत्य को व्यक्त किया है-

"गाड़ी ठहराने के लिए

जगह खोजते-खोजते

हम घूम आए शहर:

बीमे की किश्तें चुकाते

बीत गई ज़िंदगी।"[९६]

उपर्युक्त पंक्तियां नगरीय त्रासदियों का इस प्रकार चित्रण करतीं हैं जो वर्तमान के संदर्भ में भी अति प्रासंगिक है। देश में बढ़ी जनसंख्या और उससे जीवन की बढ़ती कठिनाइयां अज्ञेय की इस कविता में उभर कर

सामने आती हैं; जिसे आज के समय में हम सब अनुभव कर सकते हैं। इसी प्रकार की संवेदनाएं 'खुले में खड़ा पेड़', 'कई नगर थे जो हमें', 'देखिए न मेरी कारगुज़ारी' आदि कविताओं में मिलती हैं। इन कविताओं में कवि की संवेदनात्मक अनुभूतियां विद्‌यमान हैं।

'वन झरने की धार', 'मेज़ के आर-पार', 'शिशिर का भोर', 'समाधि-लेख' आदि कविताओं में कवि का प्रेम संवेदन झलकता है। प्रेम में आकुलता, व्यग्रता, विफलता आदि की संवेदनाएं इसमें सन्निहित हैं। 'समाधि-लेख' कविता में कवि की प्रणय में विफलता की पीड़ा दिखाई देती है-

"एक समुद, एक हवा, एक नाव,
एक आकांक्षा, एक याद:
जो सब थे मुझे प्यारे:
इन्हीं के लाए मैं यहां आया।
यानि तुम्हारे।
पर तुम कहां हो? कौन-से किनारे?"[९७]

इस संग्रह में 'नंदा देवी' शीर्षक की एक प्रसिद्ध कविता है। इसमें कवि ने हिमालय की ऊंची चोटी 'नंदा' के विभिन्न रूपों का चित्रांकन किया है। उन्होंने सामाजिक चेतना के साथ-साथ आधुनिक युग के वैज्ञानिक प्रगति का भी अंकन करते हैं -

"और भी नीचे
कट गिरे वन की चिरी पट्टियों के बीच से
नए खनि-यंत्र की
भट्ठी से उठे धुएं का फंदा।"[९८]

इस रचना में कवि की संवेदनाएं अपने विविध रूपों में अभिव्यक्ति पाती हैं। अज्ञेय ने जीवन के सभी अच्छे-बुरे रंगों का आस्वादन किया

जिससे उनकी कविताएं बहुआयामी दिखाई देती हैं। उनकी कविताओं में जहां दुख, मृत्यु, अवसाद आदि की घोर छाया है वहीं सुख, जीवन और आशा की उज्ज्वल किरणें भी उपस्थित हैं। इस संबंध में रमेश चंद्र शाह का कथन है- " 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं' की कविताएं उस गहरी अंतर्यात्रा की गवाही देती हैं जहां कवि अपने उस विषाद योग से उत्तरोत्तर उबरता हुआ अपनी जोखम से निखरी आस्था को भी झलका सका है।"[९९]

'महावृक्ष के नीचे'- इस संग्रह की कविताएं १९७४-७६ के बीच लिखी गई हैं जो कवि की अंतर्दृष्टि को व्यक्त करती हैं। इस का प्रकाशन सन् १९७७ में हुआ। इसकी कविताएं 'अब भी यही सच है', 'ना जाने केही भेस', 'नाच' आदि कविताओं में कवि का अनुभूत सत्य झलकता है। 'नाच' कविता में कवि जीवन के गहरे बोध को प्रकट करता है। वह कहता है -

"एक तनी हुई रस्सी है जिस पर मैं नाचता हूं।
जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूं
वह दो खंभों के बीच है।
रस्सी पर मैं जो नाचता हूं
वह एक खंभे से दूसरे खंभे तक का नाच है
दो खंभों के बीच जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूं
उस पर तीखी रोशनी पड़ती है
जिसमें लोग मेरा नाच देखते हैं।"[१००]

कविता की ये पंक्तियां जीवन की सत्यता को दर्शाती हैं। इस कविता के संबंध में चंद्रकांत वांदिवडेकर का मत है- "जीवन और मृत्यु के खंभों के बीच जीवन की वास्तविकता का बोध- एक विशिष्ट कोण से। व्यक्ति की असली आंतरिकता जो दौड़ने के उपक्रम में, तनाव ठील देने के असफल प्रयास में प्रतीकित की गई है- दूसरे लोग उसको 'नाच' मान कर रोशनी में देख रहे हैं। जीवन की भयानक दौड़ में हांफने वाली मछली की

जिजीविषा को लोग नहीं देखते, देखते हैं कांच के बाहर से उनकी रूप संपदा!! कलाकार और दर्शक के सरल संबंध से लेकर न जाने कितनी जटिल स्थितियों तक यह बिम्ब अर्थ निष्पत्तियां कराता है।"[१०१]

'साल दर साल', 'शरद तो आया', 'पिछले वसंत के फूल', 'वसंत आया तो है', 'जाड़ों में', 'शरद विलायती' आदि इस संग्रह की प्रकृतिपरक कविताएं हैं। कवि का प्रकृति के प्रति आकर्षण यहां भी विद्‌यमान है। इसके अतिरिक्त 'उत्सव पिंगला', 'सीमांत पर', 'क्लाइस्ट की समाधि पर', 'तीसरा चरण', 'होमो हाइडेलबर्गोसिस' आदि कविताएं विदेशी परिदृश्य उपस्थित करती हैं।

संग्रह में 'विदा का क्षण', 'देहरी', 'धावे', हंसती रहने देना' आदि कविताएं प्रेमपरक हैं। 'तुम्हारे गण', 'वीणा' जैसी कुछ कविताएं रहस्यात्मक हैं। परंतु इस प्रकार की कविताएं संख्या की दृष्टि से कम हैं।

इस संग्रह के संबंध में सिद्धिनाथ कुमार का मंतव्य है - "महावृक्ष के नीचे की कविताएं एक बार फिर सूचित करती हैं अज्ञेय मुख्यत: अंतर्मुखी चेतना के कवि हैं। इनकी कविताओं में भीतर की हल्की धड़कनें भी बहुत साफ़ सुनाई पड़ती हैं, बाहर का कोलाहल कम आ पाता है। ऐसी बात नहीं है की कवि आज के बाहर की दाहक स्थितियों में जीवित नहीं है पर उनका ताप कविताओं में कम मिलता है।"[१०२]

'नदी की बांक पर छाया'- ५८ कविताओं का काव्य संग्रह है जिसका प्रकाशन १९८१ में हुआ। इसमें सन् १९७७ से १९८१ तक की रचनाएं संकलित हैं। इसमें कवि की संवेदनाओं का मिला-जुला स्वर सुनाई देता है। 'परती तोड़ने वालों का गीत', 'परती का गीत' 'मेरे देश की आंखें', 'पंडिज्जी' कविताओं में कवि की सामाजिक भावना नए संदर्भों के साथ व्यक्त हुई है। वह अपनी रचना के द्‌वारा लीक को तोड़ना चाहता है। 'परती का गीत' कविता में कवि कहता है-

"सब खेतों में

लीकें पड़ी हुई हैं

(डाल गए हैं लोग)

जिन्हें गोड़ता है समाज ।

उन लीकों की पूजा होती है।

मैं अनदेखा

सहज

अनपुजी परती तोड़ रहा हूं

ऐसे कामों का अपना ही सुख है:

वह सुख अपनी रचना है

और वही है उसका पुरस्कार।"[१०३]

संग्रह में 'स्वर-शर', 'उसके परों में बिवाइयां', 'उसके चेहरे पर इतिहास', 'सागर के किनारे', 'खुल तो गया द्वार', 'आए नचनिए' आदि विभिन्न भाव-बोधों की रचनाएं हैं। 'बांहों में ले लो', 'प्यार के तरीके', 'रात सावन की', 'धुंधली चांदनी', 'भोर: लाली' आदि कविताओं में कवि की प्रकृति और प्रेम संबंधी संवेदनाएं प्रकट हुईं हैं।

'ऐसा कोई घर आपने देखा है'- अज्ञेय के जीवन काल की अंतिम रचना है जिसका प्रकाशन १९८६ में हुआ। इसमें कवि के जीवन के अंतिम छोर पर खड़े होने का स्वर सुनाई देता है। उसे भान हो जाता है कि उसका समय अब हो चला है। 'देहरी पर दिया', 'चौरा', 'सांझ के सारस' आदि कविताओं में कवि की यही संवेदना मिलती है। 'सांझ के सारस' कविता में कवि कहता है -

" कर नमन बीते दिवस को, धीर!

दे उसी को सौंप

यह अवसाद का लघु पल

निकल चल! सारस अकेले।"[१०४]

'चीनी चाय पीते हुए',' जहां सुख है', 'इस भीड़ में खोजता हूं', 'घर', 'कभी कभी', 'जड़ें' आदि कविताओं में कवि के जीवन की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है। 'घर' कविता में कवि की अंतरंग भावना परिलक्षित हुई है। अज्ञेय के जीवन का एकांत और सन्नाटा उनके अंतिम क्षणों तक उनकी कविताओं में उपस्थित रहा। वह स्वयं को सन्नाटे का छंद कहते हैं जो वन के समान खुला और बंद दोनों है। 'छंद' कविता की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं-

"मैं सभी ओर से खुला हूं
वन सा, वन सा अपने में बंद हूं
शब्द में मेरी समाई नहीं होगी
मैं सन्नाटे का छंद हूं।"[१०५]

अज्ञेय की कविताओं में उनकी संवेदना चिंतन के साथ मिलकर काव्य को नया सौंदर्य देती है। इस संदर्भ में नंदकिशोर आचार्य का मत है- "बौद्धिकता उनकी संवेदना में घुल-मिलकर एक आंतरिक काव्यानुशासन संभव बनती हैं। इसी का प्रतिफलन है-अज्ञेय की अनुचिंतनात्मक शैली की कविताएं, जिनकी संरचना एक अदभुत काव्यात्मक लय पर आधारित है। 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' तक में यह प्रवृत्ति दिखती है।"[१०६]

'मरुथल'- अज्ञेय की मृत्यु के पश्चात १९९५ में प्रकाशित होने वाला अंतिम काव्य संकलन है। इसमें मरुथल की १२ कविताएं हैं और अंत में 'वसीयत' है। इस रचना में वे 'मरूथल' को अपनी कविता का आधार बनाते हैं। 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' काव्य संग्रह में वे अपने अंतिम समय की जो आहट सुनते हैं; 'मरूथल' संग्रह में वही आहट काल के रूप में यहां विद्यमान है। अज्ञेय की इन कविताओं में असीम से एकाकार की संवेदना मिलती है। इस संदर्भ में इला डालमिया कोइराला ने 'निवेदन' शीर्षक में लिखा है- "जिन दिनों अज्ञेय मरुस्थल की कविताओं पर काम कर रहे थे, उन दिनों की बात है -उन्होंने कहा, मेरे सिर में मीरा, सूरदास गूंज रहे हैं। 'ऊंची चढ़ि चढ़ि पंथ निहारूं', इस पंक्ति को

बार-बार उन्होंने दोहराया। इस के पूरे पद को ढूंढ़ा। फिर 'आज सुनी मैं हरि आवन की आवाज' गुनगुनाया। इन कविताओं के रचना काल में यह दो बार हुआ है। 'जीवन की धुनी' कवि ने मरुथल की छवि से निराकार का स्तवन किया है।"[१०७]

अज्ञेय के व्यक्तित्व और काव्य-यात्रा पर दृष्टि डालने के बाद दोनों को ही प्रभावशाली कहना अतिश्योक्ति न होगी। उनका कवि-व्यक्तित्व अत्यंत व्यापक और विस्तृत है जिसकी परिधि में हिन्दी कविता का स्वरूप फल-फूल कर विकसित हुआ। उन्होंने न केवल काव्य में वरन गद्य-साहित्य में भी अपने बौद्धिक क्षमता का अनूठा परिचय दिया है। उपन्यास, कहानी, यात्रा वृतांत, डायरी, निबंध आदि हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में उनकी रचनात्मक क्षमता देखी जा सकती है। मैं उनके गद्य साहित्य का संक्षिप्त का परिचय देना उचित समझती हूं।

उपन्यास साहित्य- 'शेखर: एक जीवनी'-भाग-१, भाग-२, 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' अज्ञेय के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'शेखर: एक जीवनी' का प्रकाशन दो भागों में किया गया है। इनका प्रकाशन क्रमश: सन् १९४१ और १९४४ में हुआ। यह मुख्यत: चरित्र प्रधान काव्य है जिसमें शशि और शेखर की मार्मिक कहानी का चित्रण मिलता है। इन दोनों भागों में अज्ञेय की दृष्टि मनोवैज्ञानिक रही। इस उपन्यास के बारे में बहुधा आलोचकों में एकमत नहीं रहा। किसी ने इसके शीर्षक पर तो किसी ने इसकी चारित्रिक उच्छृंखलता, सेक्सविकृति पर आपत्ति की है परंतु फिर भी इसकी रचना वैशिष्ट में प्रयोग की दृष्टि से आलोचकों ने इसकी सराहना भी की है।

'नदी के द्वीप' अज्ञेय का दूसरा प्रसिद्ध साहित्य है जिसमें गौरा और भुवन मुख्य पात्र हैं। इनके माध्यम से अज्ञेय ने मानवीय सम्बन्धों को दर्शाया है। अज्ञेय ने अपनी प्रायोगिक दृष्टि से प्रेम के विभिन्न रूपों को उकेरा है। इसके शीर्षक 'नदी के द्वीप' नाम से कविता भी अज्ञेय ने रची है।

तीसरा उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' है जिसका प्रकाशन काल १९६१ है। इस पर अस्तित्ववाद का प्रभाव है। कथावस्तु की दृष्टि से इसमें

नवीनता है और भाषा की दृष्टि से भी इसमें नवीन प्रयोग किए गए हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार " 'अपने अपने अजनबी' का वर्ग उन रचनाओं का है जो संवेदना और भाषिक सर्जनात्मकता की गहराई के कारण अनेक छाया स्तरों पर अपना अर्थ विवृत करती रहती है, देश और काल दोनों के विस्तार में। अर्थ के संचरण के लिए उनमें एक आत्म-संभव शक्ति विकसित हो जाती है।"[१०८]

कहानी संग्रह- अज्ञेय की सर्जनात्मक कुशलता कहानी-लेखन में भी देखी जा सकती है। उनकी कहानियों में मनोविश्लेषणवादी प्रभाव दिखाई देता है। 'विपथगा' (१९३७), 'परंपरा'(१९४४), 'कोठरी की बात'(१९४५),'शरणार्थी'(१९४९), 'जयदोल'(१९५१), 'अमर वल्लरी और अन्य कहानियां'(१९५४), 'ये तेरे प्रतिरूप'(१९६१), अज्ञेय के प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। प्रेम, क्रांतिकारी जीवन, रोमांस और सेक्स तथा सामाजिक संदर्भों से संबन्धित मुख्य तत्त्व कहानी में परिलक्षित होते हैं।

यात्रा वृतांत- 'अरे यायावर रहेगा याद' (१९५३) और 'एक बूंद सहसा उछली' (१९६०) अज्ञेय के दो प्रमुख यात्रा वृतांत हैं जिनमें उनकी यात्रा संबंधी विचार हैं। 'अरे यायावर रहेगा याद' में असम, पंजाब, कश्मीर आदि अंतर्देशीय और 'एक बूंद सहसा उछली' में उनके यूरोपीय यात्राओं का वर्णन है। इस यात्रा के दौरान वे अस्तित्ववादी विचारक कार्ल यास्पर्स से भी मिले। अज्ञेय यायावरी प्रवृत्ति के थे। उनकी यात्राओं नें उनके विचारों को मांजा और उनकी दृष्टि को भी विकसित किया। उनकी काव्याभिव्यक्ति में भी इन यात्राओं का प्रभाव परिलक्षित होता है।

निबंध संग्रह- अज्ञेय के अनेक निबंध साहित्य हैं जिनमें उनके विचारों की पुष्टि हुई है। 'त्रिशंकु' का प्रकाशन १९४५ में हुआ जिसमें टी॰ एस॰ एलियट के निबंध 'ट्रेडीसन एंड इंडिविजुअल टैलेंट" का छायानुवाद 'रूढ़ि और मौलिकता' के नाम अज्ञेय ने किया है। उनके कला साहित्य और संस्कृति संबंधी विचार भी इस निबंध संग्रह में संकलित है। 'आत्मनेपद' १९६० में प्रकाशित एक महत्त्वपूर्ण निबंध संकलन है जिसमें अज्ञेय ने अपने साहित्य संबंधी मतों को अभिव्यक्ति दी है। बाद में' आत्मनेपद' को 'आत्मपरक' (१९८३) निबंध संग्रह में ही समाहित कर लिया गया है।

'हिंदी साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य' का प्रकाशन काल १९६७ है जिसमें उनके आलोचनात्मक निबंध संग्रहीत हैं।

'सब रंग और कुछ राग'(१९६९), 'लिखी कागद कोरे'(१९७२), 'जोग लिखी'(१९७७), 'अद्यतन'(१९७७), में प्रकाशित निबंधों में अज्ञेय के विचारों की विविधता है। 'आलवाल' निबंध संग्रह में लेखक ने उन समस्याओं को उकेरा है जो लेखन और लेखक के समक्ष उपस्थित होती हैं। दृष्टांत के रूप में 'लेखक और परिवेश', 'लेखक की स्थिति' आदि निबंध में लेखक को प्रभावित करने वाली कठिनाइयों पर चर्चा की है। अज्ञेय के 'काल चिंतन' संबंधी निबंध उनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह 'संवत्सर' में एकत्रित हैं। काल संबंधी विचारों का प्रभाव उनकी कविताओं में दिखाई देता है।

'केंद्र और परिधि' १९८४ में प्रकाशित निबंध संग्रह में 'स्रोत और सेतु' (१०७८), 'अद्यतन', 'युग संधियों पर'(१९८१), 'धार और किनारे' (१९८२) से लिए गए निबंधों को स्थान दिया गया है। इन निबंधों में अज्ञेय के व्यक्ति और समाज से संबन्धित विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। १९७९ से १९८४ तक अज्ञेय के प्रकाशित निबंधों में 'स्मृति लेखा', 'कहां है द्वारका', 'छाया का जंगल' 'ए सेंस ऑफ टाइम' प्रमुख निबंध संग्रह है जिनमें उनके विचारों की विविधता झलकती है।

अंत: प्रक्रियाएं- 'भवंति', 'अंतरा', 'शाश्वती' अज्ञेय के विचारों का संकलन है। इसमें अज्ञेय की अनुभूतियों के टीप हैं जो उनके विचारों को अभिव्यक्त करती हैं। इस संबंध में चन्द्रकान्त वांदिवाडेकर का कथन है- "कविता और यथार्थ के संबंध का मुद्दा हो या साहित्य और समाज के संबंधों का मुद्दा हो, अज्ञेय अपने वैचारिक कवच की अभेदता का समर्थ एहसास कराते हैं। काव्यगत अनुभूति और वास्तविक जीवन की अनुभूति, साहित्य में काल बोध की प्रतीति, संप्रेषण की समस्या, सहृदय की उपस्थिति, साहित्य की शाश्वतता का या अच्छे और श्रेष्ठ साहित्य का निकष यहां देखा जा सकता है।"[१०९] अज्ञेय की कविताओं में निहित विचारों को समझने के लिए उनकी अंत प्रक्रियाएं बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

अज्ञेय ने 'उत्तर-प्रियदर्शी' नामक एक गीतिनाट्य की भी रचना की जिसका प्रकाशन १९६७ में हुआ। इसमें सम्राट अशोक के हृदय परिवर्तन का मार्मिक चित्रण हुआ है। इस काव्य नाटक के संदर्भ में श्रीमती गिरीश रस्तोगी का मत है- "इस काव्य-नाटक की कथा भूमि 'अशोक के नरक' की कथा है। अज्ञेय ने अशोक के नरक' की कथा के मूल स्रोतों का भी उल्लेख किया है।"[११०] अशोक के द्वारा 'नरक-मुक्ति' का संघर्ष इस काव्य नाटक में दिखाई देता है।

इनके अतिरिक्त अज्ञेय ने अनेक ग्रन्थों का सम्पादन भी किया। 'तारसप्तक'(१९४३), दूसरा सप्तक'(१९५१), तीसरा सप्तक (१९५८), चौथा सप्तक (१९७९), पुष्करणी (कविता-संग्रह-१९५८) नेहरु अभिनंदन ग्रंथ (१९५८), रूपाम्बरा (१९६०) आदि कुछ प्रमुख ग्रंथ हैं। 'सर्जन और संप्रेषण'(१९८४), 'साहित्य और समाज', 'साहित्य का परिवेश', 'समकालीन कविता में छंद', 'भारतीय कला दृष्टि' का भी सम्पादन अज्ञेय ने किया। अज्ञेय के सबसे महत्त्वपूर्ण सम्पादन में 'तारसप्तक' का सम्पादन रहा। इसके माध्यम से अज्ञेय के विचारों की नई दृष्टि के विकास को देखा जा सकता है।

अज्ञेय के समस्त संग्रहों में उनके विचारों की परिपक्वता और प्रौढ़ता दिखाई देती है। हिन्दी साहित्य के हर विधा में उनकी प्रतिभा के दर्शन होते हैं। चाहे गद्य साहित्य हो अथवा काव्य; अज्ञेय की प्रयोगशील दृष्टि ने उसमें नवीनता की स्थापना की। उनकी जीवन यात्रा में उनकी रचनात्मकता मौन और सन्नाटे के बीच अभिव्यक्ति पाती रही। वे जब तक रहे तब तक साहित्य की सेवा में लगे रहे और साहित्य को नए विचारों से सृजित करते रहे।

--****--

संदर्भ सूची

लेखक/संपादक पुस्तक पृष्ठ संख्या

१- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली-४, ५५

२- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, ८०, ८४

३- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली-४, २१

४- अज्ञेय, आत्मपरक, २४३

५- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३०९

६- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय: कवि कर्म, ३०

७- अज्ञेय, सदानीरा-१, ३१०

८- रामधारी सिंह दिनकर, शेष-नि:शेष, ३९५

९- विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय-प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन-परिचय, ५

१०- डॉ॰ रेनू श्रीवास्तव, अज्ञेय: जीवन दर्शन और साहित्य, १४

११- विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय-प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन-परिचय, ८

१२- अज्ञेय, आत्मपरक, १३५

१३- अज्ञेय, आत्मपरक, १३०

१४- अज्ञेय, सदानीरा-१, २८३

१५- ओम थानवी, अपने-अपने अज्ञेय-२, ८६२

१६- डॉ॰ नीलम ऋषिकल्प, अज्ञेय: स्मृतियों के झरोखे से, ४२

१७- ओम थानवी, अपने-अपने अज्ञेय-२, ८५०

१८- विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय-प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन-परिचय, ९

१९- विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय-प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन-परिचय, १०

२०- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २५८

२१- ओम थानवी, अपने-अपने अज्ञेय-२, ७

२२- पूर्वग्रह, अंक १३१-१३२, १८

२३- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, ९
२४- डॉ॰ नीलम ऋषिकल्प, अज्ञेय: स्मृतियों के झरोखे से, २०
२५- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २२१-२२२
२६- ओम थानवी, अपने-अपने अज्ञेय-२, ९९०
२७- अज्ञेय, आत्मनेपद, ३९, ४०
२८- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, ६७
२९- रीतारानी पालीवाल, अज्ञेय के सृजन में जापान, १३
३०- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली भाग -१, २६२
३१- डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद, अज्ञेय: कवि और काव्य, ७
३२- अज्ञेय, आत्मनेपद, १५, १६
३३- डॉ॰ हरदेव बाहरी, हिंदी शब्दकोश, ६११
३४- डॉ॰ हरदेव बाहरी, हिंदी शब्दकोश, ४०२
३५- अज्ञेय, सदानीरा-१, १४१
३६- डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद, अज्ञेय: कवि और काव्य, १९
३७- अरूण भारद्वाज, अज्ञेय और इलियट, ३३
३८- अज्ञेय, सदानीरा-१, ३१३
३९- भोलाभाई पटेल, अज्ञेय: एक अध्ययन, १७
४०- अज्ञेय, सदानीरा-१, १३४
४१- अज्ञेय, सदानीरा-१, १३५
४२- डॉ॰ नीलम ऋषिकल्प, अज्ञेय: स्मृतियों के झरोखे से, २५
४३- अज्ञेय, चिंता, ५
४४- अज्ञेय, चिंता, ७
४५- अज्ञेय, चिंता, २३
४६- अज्ञेय, आत्मनेपद, १९
४७- अज्ञेय, चिंता, १०५

४८- रमेश चंद्र शाह, अज्ञेय: कवि का कर्म, १६

४९- नन्द दुलारे वाजपेयी, नई कविता, २६

५०- डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद, अज्ञेय: कवि और काव्य, २०

५१- अज्ञेय, चिंता, १४६,

५२- अज्ञेय, चिंता, १४९,

५३- अज्ञेय, चिंता, ४९

५४- अज्ञेय, चिंता, १६७

५५- डॉ॰ कृपा शंकर पांडेय, सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय, ७५

५६- सुश्री सुमन झा, अज्ञेय का काव्य, ७२

५७- अज्ञेय, सदानीरा-१, १८२

५८- अज्ञेय, तारसप्तक, २७२

५९- अज्ञेय, सदानीरा -१, १९०

६०- अज्ञेय सदानीरा -१, २३५

६१- नरेश मेहता, शब्द-पुरुष अज्ञेय, २३

६२- अज्ञेय, सदानीरा-१, १५२

६३- अज्ञेय, सदानीरा-१, २४५

६४- डॉ॰ नीलम ऋषिकल्प, अज्ञेय :स्मृतियों के झरोखे से, ७-७८

६५- डॉ॰ कृपा शंकर पांडेय, सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय, ८१

६६- अज्ञेय, बावरा अहेरी, १६,१७

६७- रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, १९

६८- अज्ञेय, सदानीरा-१, २८३

६९- अज्ञेय, सदानीरा-१, ३०७

७०- राम कमल राय, शिखर से सागर तक, १०४

७१- अज्ञेय, अरी ओ करूणा प्रभामय, १०

७२- अज्ञेय, अरी ओ करूणा प्रभामय, १५

७३- अज्ञेय, अरी ओ करूणा प्रभामय, २५

७४- अज्ञेय, अरी ओ करूणा प्रभामय, ७५

७५- अज्ञेय, अरी ओ करूणा प्रभामय, ८२

७६- अज्ञेय, आत्मनेपद, ३५

७७- अज्ञेय, अरी ओ करूणा प्रभामय, ९

७८- पूर्वग्रह (अंक-१३१-१३२), १५४

७९- भोलाभाई पटेल, अज्ञेय: एक अध्ययन, ३४

८०- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ३६

८१- रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, २६,२७

८२- प्रो. वशिष्ठ अनूप, असाध्य वीणा की साधना (मूल्यांकन और पाठ), १५

८३- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार', ७३,७४

८४- रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, २६

८५- पूर्वग्रह (अंक-१३१-१३२, ७५

८६- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी, ५०

८७- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी, ४३

८८- डॉ॰ कृपा शंकर पांडेय, सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय, ९३

८९- अज्ञेय, सदानीरा-२, २३९

९०- अज्ञेय, सदानीरा-२, २०५

९१- अज्ञेय, सागर मुद्रा, ८

९२- अज्ञेय, सागर मुद्रा, १८

९३- डॉ॰ देवराज, आधुनिक हिन्दी काव्य, ५५

९४- अज्ञेय, सागर मुद्रा, ३२

९५- अरुण भारद्वाज, अज्ञेय और इलियट, ४०

९६- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३१८

९७- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३२०

९८- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३२८

९९- रमेश चंद्र शाह, अज्ञेय का कवि कर्म, २५

१००- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३५६

१०१- समीक्षा- (मई-जून-१३-१४), १४

१०२- समीक्षा- (मई-जून-१३-१४), १५

१०३- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३८४

१०४- अज्ञेय, ऐसा कोई घर आपने देखा है, ७२

१०५- अज्ञेय, ऐसा कोई घर आपने देखा है, ७९

१०६- डॉ॰ नीलम ऋषिकल्प, अज्ञेय: स्मृतियों के झरोखे से, ९९

१०७- कृष्ण दत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली -२, ४७१

१०८- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अज्ञेय, १६७

१०९- अशोक वाजपेयी, अज्ञेय का संसार: शब्द और सत्य, २८

११०- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अज्ञेय, २३०

द्वितीय अध्याय

अज्ञेय का काव्य: वैचारिक दृष्टि

किसी रचनाकार की रचना-दृष्टि को हम उसके विचारों के माध्यम से ही समझ सकते हैं। जब किसी कृतिकार की कृति हमारे समक्ष होती है तो वह उसके विचारों को परिलक्षित करती है। यह विचार ही है जो उसकी कृति अथवा रचना को कालजयी बनाती है। इसी गांभीर्यता और संवेदनशीलता के कारण कबीर, तुलसीदास, रामधारी सिंह दिनकर, रामचन्द्र शुक्ल, विवेकानंद, विनोबा भावे, महात्मा गांधी आदि अनेक ऐसे कवि, लेखक, चिंतक और विचारक आज भी अविस्मरणीय है। यह विचारों की ही प्रामाणिकता कही जा सकती है; जिसने रामायण, और गीता जैसी रचनाओं को महानता प्रदान की।

'विचार' शब्द को समझने के लिए सर्वप्रथम उसके व्युत्पतिक अर्थ को देखना समीचीन होगा। "विचार शब्द की व्युत्पति मूल शब्द 'चर' में 'वि' उपसर्ग तथा संस्कृत के 'घञ' प्रत्यय को जोड़ने से हुई है जिसका तात्पर्य है विमर्श, चिंतन, सोच।[१]" इसके अनुसार 'विचार' वह है जिसमें चिंतन, विमर्श तथा सोच जैसे तत्व विद्यमान रहते हैं। इसी प्रक्रिया से विचार और दृष्टि का निर्माण होता है।

सोच और विचार के संबंध को निर्धारित करते हुए निर्मल वर्मा का मत हैं- "मैं सोच के बारे में सोचता हूं, मुझे लगता है, उसकी कोई निश्चित, तर्कसंगत चिंतन-पद्धति नहीं होती। वह विचार नहीं, विचार का स्कैच है। आकार लेता हुआ एक रेखाचित्र है। भीतर की चुप्पी में नहीं, चुप्पी के भीतर रूप लेता हुआ। पर वह बना-बनाया रूप नहीं होता, बनता हुआ रूप होता है। निराकार के भीतर से आकार लेता हुआ।"[२] इससे स्पष्ट है कि विचार की प्रक्रिया में सोच, विचार की सीढ़ी मात्र है। विचार का एक निश्चित आकार होता है। उसकी एक निश्चित चिंतन-पद्धति होती है और इसे भीतर की चुप्पी कह सकते हैं। कदाचित यह

भीतर की चुप्पी ही अंतर्मंथन के द्‍वारा विचार को निश्चित करने का कार्य करती है।

वृहत हिंदी कोश के अनुसार विचार का अर्थ है- "निर्णय, तत्व-निर्णय, तत्व-परीक्षा अथवा किसी विषय पर गंभीरता के साथ सोचना।"[3] यहां विचार में निर्णय लेने का सामर्थ्य भी सम्मिलित है एवं उस तत्व की परीक्षा भी आवश्यक है जिस पर सोचा जा रहा है। कहने का तात्पर्य है कि 'विचार' में अनावश्यक तत्वों की अपेक्षा गांभीर्यता का गुण निहित होना चाहिए।

डॉ॰ हरदेव बाहरी के शब्दों में 'विचार' का तात्पर्य है- "मन ही मन तर्क वितर्क करते हुए सोचना, समझना।"[४] इस अर्थ से विदित होता है विचार की प्रक्रिया साधारण नहीं है वरन उसमें तर्क और वितर्क जैसी शक्तियां अंतर्निहित हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि तर्क और वितर्क के परस्पर टकराहट से विचारों का जन्म होता है।

विचार को अंग्रेजी में 'Thought'[५] कहते हैं। अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार thought का शाब्दिक अर्थ है -१-"an idea or opinion produced by thinking or that occurs suddenly in the mind. २- the action of thinking"[६]. यदि इस अर्थ को विश्लेषित करें तो हम पाएंगे कि विचार वह धारणा है जो सोचने की एक निरंतर प्रक्रिया के माध्यम से उत्पन्न होता है। धारणा से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के सोचने की प्रक्रिया तो साधारण ही होती है परंतु उसके मंथन से उस सोच में संभवत: इतनी परिपक्वता आ जाती है कि वह एक निश्चित विचार में परिवर्तित हो जाती है।

उर्दू में विचार को 'ख़याल' कहते हैं। ख़याल का उर्दू-कोशगत अर्थ है- "विचार, कल्पना या ध्यान।"[७] इस दृष्टि से विचार कल्पना या ध्यान का समानार्थक ही है किंतु विचार कल्पना या ध्यान से कहीं अधिक अर्थ रखता है क्योंकि कल्पना और ध्यान की सीढ़ियां विचार की आधारशिला मात्र हैं।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि जीवन में जो कुछ हम अनुभव करते हैं, वह कल्पना में जाकर सतत मंथन अथवा चिंतन से

प्रेरित होता है। इस क्रिया से जो अवधारणा बनती है, वह ही विचार है। विचार हमारे मन-मस्तिष्क में उत्पन्न और विलुप्त होते रहते है। इनकी प्रकृति विद्युत के समान है जो क्षण में दृश्य और अदृश्य होती रहती है परंतु इनका नाश नहीं होता। विचारों का अस्तित्व हमारी स्मृति में विद्यमान रहता है। अनेकों विचार क्षण-प्रतिक्षण प्रकट होते हैं किन्तु सभी ग्रहणीय हों, यह आवश्यक नहीं है। कुछ विचार स्वीकार करने योग्य होते हैं और कुछ नहीं। इस संदर्भ में अज्ञेय का मत है- "मैं खिड़की के सामने बैठकर सोचता हूं। मेरे मन की खिड़की खुली है, उसके सामने से विचार हवा में तैरते हुए चले जाते हैं -कोई सर्राटे से निकाल जाते हैं, कोई धीरे-धीरे, पंख तौले हुए मानो निरायास बहते हुए, कोई अबाबील की-सी द्रुत-विलंबित गति से, बीच में एकाएक मोड़ लेते हुए। ...... और कोई ऐसे सुलगते हुए मानो रात के अंधेरे में कोई चिंगारी फूटी हो।........मैं मानता हूं विचार, सूझ, आइडिया, कभी नहीं मरता, इसीलिए मैं हर विचार को पकड़ लेने के लिए आतुर नहीं होता। क्योंकि सभी विचार ऐसे नहीं होते कि उन्हें सभ्य या पालतू बनाया जा सके; कुछ ऐसे वन-विहग होते हैं कि उन्हें खुले में ही विचरते रहने देना चाहिए। इसी में उनका स्वास्थ्य है और इसी में उनके संभाव्य अहेरी का भी सुख और सौभाग्य.....मुक्ति में ये आकाशचारी स्वस्थ, स्वच्छ, सुंदर बने रहते हैं; पकड़े जाकर वे रोगी, खाज-भरे, बुच्चे हो जाएंगे।"[८]

इसी प्रकार 'दृष्टि' के अर्थ को समझना भी आवश्यक है। दृष्टि का साधारण अर्थ है- 'देखना'। हम तभी देख सकते हैं जब हमारे पास अपनी दृष्टि अर्थात आंखें होती हैं। दृष्टि की साधारण परिभाषा के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है- "हमारी दृष्टि हमारी इंद्रियों में सबसे अधिक पूर्ण और आनंददायिनी है। चित्त को अधिकांश प्रकार के भावों से यह पूर्ण करती है, दूर से दूर की वस्तुओं की बातचीत करती है और अपने नियत आनंद के अनुभव से बिना थके और संतुष्ट हुए सबसे अधिक काल तक अपनी क्रिया में तत्पर रहती है।[९]" इस कथनानुसार दृष्टि, वस्तुओं से हमारा साक्षात्कार कराती है। साथ ही हमारे हृदय को भाव-पूर्ण कर हमें सुख भी पहुंचाती है। परंतु जिस दृष्टि की मैं चर्चा कर रही हूं वह साधारण चक्षुओं से भिन्न है। साधारण दृष्टि से हम प्रकृत-दृश्यों को ठीक उसी रूप में देख पाते हैं जिस स्थिति में वे

हैं, जबकि जिस 'दृष्टि' की यहां बात की जा रही है, वह प्राकृत-दृश्यों को अपनी विचारों की कल्पना शक्ति के द्वारा भिन्न रूप में देखती है।

मैं यहां कुछ शब्दकोशों के माध्यम से दृष्टि शब्द की अवधारणा पर प्रकाश डालना उचित समझती हूं। दृष्टि शब्द की व्युत्पति, मूल शब्द 'दृश' में संस्कृत के 'क्तिन' प्रत्यय (दृश+क्तिन) जोड़ने से हुई है जिसका अर्थ है- 'देखने की शक्ति।"[१०] इस अर्थ में दृष्टि वह शक्ति है जिससे हम देखने में समर्थ बन पाते हैं।

हिंदी शब्दकोश के अनुसार 'दृष्टि' का अर्थ है- "१- देखने की शक्ति, अवलोकन, निगाह, २-अभिप्राय।"[११] इसके अनुसार 'दृष्टि' देखने की शक्ति तो है ही साथ ही यह अवलोकन की शक्ति भी है। अवलोकन का तात्पर्य है- 'ध्यानपूर्वक देखना।"[१२] इससे स्पष्ट है कि वस्तुओं अथवा स्थितियों का ध्यान से निरीक्षण करना दृष्टि है।

वृहत हिंदी कोश के अनुसार " 'दृष्टि' का तात्पर्य है- 'देखना, 'अवलोकन करना।"[१३] इसके अर्थानुसार कहा जा सकता है कि 'दृष्टि' हमें पदार्थों को समझने में सहायता करती है। बिना दृष्टि के वस्तुओं को समझना कठिन है। साधारण अर्थ में यह वस्तुओं का हमें साक्षात्कार कराती है।

दृष्टि का उर्दू पर्याय है- 'नज़र, गौर, निगाह इत्यादि।"[१४] नज़र, गौर तथा निगाह आदि शब्दों से पता चलता है कि यह वस्तुओं, तथ्यों अथवा स्थितियों की गहराई से जांच परख करता है।

अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश के अनुसार " 'Vision' को 'दृष्टि' कहते हैं,"[१५] जिसका साधारण अर्थ देखने से संबंधित है। अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार Vision' का अर्थ है- 'the ability to think about the future with imagination or wisdom."[१६] इसके अनुसार 'दृष्टि' कल्पना या बुद्धिमत्ता की सहायता से भविष्य के विषय में सोचने की शक्ति है। हम यह भी कह सकते हैं कि इसमें दूरदर्शिता का भाव होता है। वर्तमान में वस्तुओं, पदार्थों अथवा वस्तुस्थितियों का दृष्टि के द्वारा बोध होता है और वह कल्पना और बुद्धि के सहयोग से भविष्य में भी बनी रहती हैं।

विचार एवं दृष्टि के संदर्भ में विश्लेषण से यह दृष्टिगत है कि विचार और दृष्टि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अपने आस-पास उपस्थित किसी भी वस्तु या स्थिति से जब हमारा संपर्क होता है तो सबसे पहले हमारे मन-मस्तिष्क में उससे संबंधित किसी विचार का जन्म होता है। इन्हीं विचारों पर दृढ़ता के साथ निरंतर चिंतन-मनन करते रहने से दृष्टि का निर्माण होता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना विचार और अपनी दृष्टि होती है। उदाहरण के रूप में साधारण मनुष्य की दृष्टि में एक पुष्प, पुष्प के अतिरिक्त कुछ नहीं है। कोई इसे स्वयं की सज्जा का साधन मानता है तो कोई ईश्वर की अर्चना का। एक वैज्ञानिक के लिए तो यह प्रयोग की वस्तु है। परंतु एक कवि की दृष्टि इन सबसे भिन्न होती है। इन्हीं पुष्पों को वह अपनी विशेष दृष्टि से विभिन्न उपमानों के रूप में प्रस्तुत करता है। दृष्टांत-स्वरूप जहां कबीर ने कमलिनी को 'आत्मा' के रूप में प्रस्तुत किया है-

"काहे री नलिनी तू कुम्हलानी। तेरे ही नालि सरोवर पानी॥
जल में उत्पति, जल में बास, जल में नलनि तोर निवास।
न तलि तपति न उपरि आगि, तोर हेतु कासन लागि।
कहे कबीर जो उदिक समान, ते नहीं मुएं हमारी जान॥"[१७]

वहीं सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जी ने गुलाब के फूल को 'पूंजीवादी' के रूप में प्रस्तुत किया है-

"अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है केपिटलिस्ट!"[१८]

अत: कवि अथवा साहित्यकार की दृष्टि विशेष होती है। उनके विचार करने का ढंग निराला होता है।

मेरे विचार से यदि **'दृष्टि'** का वर्गीकरण करें तो इसे '**वैज्ञानिक दृष्टि'** (उदा.- न्यूटन, आइंस्टीन), '**मनोवैज्ञानिक दृष्टि'** (उदा.- फ्रायड, युंग, एडलर), '**आलोचनात्मक दृष्टि'** (उदा.- रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी) '**ऐतिहासिक दृष्टि'** (उदा.- मैक्समूलर, रोमिला थापर) '**दार्शनिक दृष्टि'** (उदा.- प्लेटो, कांट, शंकराचार्य) तथा '**काव्यात्मक दृष्टि'** (उदा.- मैथिलीशरण गुप्त, निराला, अज्ञेय) आदि में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें से प्रत्येक की दृष्टि अपने-अपने ढंग से अलग-अलग विषयों पर विचार करती है। दृष्टि किसी की भी हो, चाहे वह वैज्ञानिक की हो, इतिहासकार की हो अथवा साहित्यकार की; उनका उद्देश्य सत्य को प्रकाशित करना है।

एक साहित्यकार भी सत्य को ही उजागर करना चाहता है किन्तु उसका सत्य सच्चे आनंद और सुख से जुड़ा होता है। इसी से उसका साहित्य श्रेष्ठ बनता है। इस संबंध में मुंशी प्रेमचंद जी का मत दृष्टव्य है "जीवन का उद्देश्य ही आनंद है। मनुष्य जीवन पर्यंत आनंद की खोज में पड़ा रहता है। किसी को वह रत्न-द्रव्य में मिलता है, किसी को भरे-पूरे परिवार में, किसी को लंबे-चौड़े-भवन में, किसी को ऐश्वर्य में। लेकिन साहित्य का आनंद, इस आनंद से ऊंचा है, इससे पवित्र है, उसका आधार सुंदर और सत्य है। वास्तव में सच्चा आनंद सुंदर और सत्य से मिलता है। उसी आनंद को दर्शाना, वही आनंद उत्पन्न करना, साहित्य का उद्देश्य है।"[१९] इस कथन के अनुसार उसी साहित्य को सफल कहना चाहिए जिसके विचार सर्वहितकारिणी और आनंददायी हो।

संसार में अनेक वस्तुओं और पदार्थों से हमारे विचारों को आयाम मिलता है परंतु इन पदार्थों का अध्ययन, विज्ञान का विषय है, साहित्य का नहीं। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का मत उल्लेखनीय है- "साहित्य 'विचार' का बोधक है, न कि 'पदार्थ' का। xxxx पदार्थ साहित्य नहीं, पदार्थों का शब्द-रूपी संकेत भी साहित्य नहीं और केवल शब्द साहित्य नहीं- 'विचार' का नाम साहित्य है।"[२०] एक साहित्यकार के स्व-विचारों की अभिव्यक्ति ही उसका साहित्य है और इन्हीं विचारों में उसकी दृष्टि भी झलकती है। विचारों और दृष्टि की श्रेष्ठता से ही किसी कवि, लेखक या साहित्यकार का साहित्य श्रेष्ठ बनता है। ऐसा इसलिए

कहा जा सकता है कि उसकी भावना के केंद्र में सबका हित निहित होता है। इस संदर्भ में डॉ॰ नन्द कुमार राय का कथन है- "साहित्यकार की दृष्टि उदात्त होती है; क्योंकि उसमें बहुजन हिताय वा कि सर्वजन हिताय का भाव स्थित होता है। 'साहित्यकार की दृष्टि समाहारात्मक दृष्टि होती है, जिसमें मानव मात्र के प्रति समग्रता का भाव-बोध होता है। स्यात, इसी कारण उसका सत्य बहुत ऊंचा, अत: संप्रेष्य भी होता है।"[२१] इस कथन से यह ध्यातव्य है कि रचनाकार मानव के सुख-दुख और उसकी पीड़ा से स्वयं को जोड़कर अपने विचारों को दृष्टि देता है। यह श्रेष्ठ विचार-दृष्टि ही साहित्यकार और उसके साहित्य को महानता प्रदान करती है। अज्ञेय ऐसे ही आधुनिक कवियों की श्रेणी में आते हैं जो जीवन को पीड़ा-मुक्त करना चाहते हैं। वे कहते हैं-

"पर मैं अखिल विश्व की पीड़ा संचित कर रहा हूं-

क्योंकि मैं जीवन का कवि हूं।"[२२]

वस्तुत: किसी लेखक या कवि के विचारों को दृष्टि विभिन्न आयामों से प्राप्त होती है। उसे प्रभावित करने वाले कारकों में जन्म, स्थान, परिवेश, शिक्षा, परिस्थितियां, विचारक, साहित्य इत्यादि होते हैं। एक कवि के रूप में अज्ञेय की विचार-दृष्टि बहुआयामी रही। उनकी इस दृष्टि को समझने के लिए सर्वप्रथम 'भारतीय, पाश्चात्य और वैज्ञानिक विचार-दृष्टि' का स्वरूप समझना आवश्यक है।

क- भारतीय विचार-दृष्टि

भारत सदा से ही महान चिंतकों, विचारकों, मनीषियों, दार्शनिकों, वैयाकरणों, कलाकारों तथा साहित्यकारों का देश रहा है। इनकी वैचारिक दृष्टि के लिए भारत सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है। यह परंपरा वैदिक साहित्य से प्रारम्भ होकर अद्यतन दृष्टव्य है।

भारतीय चिंतन परंपरा के नेपथ्य में झांके तो हमारे विचारों को दृष्टि प्रदान करने वाले वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, भगवद्गीता, कुरान, बाइबिल आदि महान रचनाएं दृष्टिगोचर होती हैं। इनके मूल में मानव मात्र के कल्याण की भावना निहित है। यद्यपि ये सभी धार्मिक

ग्रंथ हैं तथापि ये हमारे सद्-विचार और ज्ञान का अथाह भंडार हैं। आज भी हम इनके प्रभाव से अलग नहीं हो सके हैं। इनसे हमें ज्ञान, कर्म, धर्म, भक्ति, नैतिकता का ही बोध नहीं होता बल्कि श्रेष्ठ विचारों की प्राप्ति भी होती है। इसमें क्षमा, दया, परोपकार, सत, असत, करुणा, प्रेम, अहिंसा, शुभ-अशुभ कर्म, जन्म-मरण, पुनर्जन्म, सृष्टि आदि अनेकानेक विषयों की विस्तार पूर्वक चर्चा है। ये हमें सांसारिक दुखों से मुक्ति का मार्ग भी दिखाते हैं। इनके द्वारा हमारे सन्मुख एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत होता है जो समस्त मानव मूल्यों का मूल आधार और स्रोत है। रामायण में 'भगवान राम', बाइबिल में प्रभु ईसा मसीह और कुरान में पैगंबर मुहम्मद के अदभुत व्यक्तित्व के माध्यम से मनुष्य को श्रेष्ठ मूल्यों को प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है। इन सभी की धार्मिक मान्यताएं अलग भले ही रहीं हों परंतु उद्देश्य एक ही रहा, जो मानव और उसके कल्याण से जुड़ा था। इस संदर्भ में तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' का दृष्टांत लिया जा सकता है।

तुलसीदास युगीन तत्कालीन भारतीय समाज विघटित, पाखंड तथा आडंबर प्रधान, कुंठित, और असंतुलित समाज था, जिसने तुलसीदास को 'रामचरितमानस' की रचना की प्रेरणा दी। इस संबंध में मुकुंदलाल मुंशी का कथन ध्यातव्य है- "परिस्तिथियों ने उनको इतना व्याकुल किया कि समाज को उबारने के लिए संत-हृदय छटपटा उठा। इसी छटपटाहट ने 'रामायण सत कोटि अपारा' होते हुए भी पुराणों, नाटकों और महाकाव्य के तत्वों का समुचित समन्वय करते हुए 'ग्राम गिरा' को माध्यम बनाकर 'रामचरितमानस' के रचना की प्रेरणा दी। उनका हेतु जीवन के विभिन्न उन्नत मूल्यों को सरल, सहज और सशक्त रूप से प्रस्तुत करना तथा आपसी संबंधों के लिए आदर्श मर्यादा खींचना थ।"[२३] अत: उन्होंने न केवल राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में स्थापित किया वरन एक ऐसे आदर्श की स्थापना की जो आज भी भारतीय समाज में स्पंदित हो रहा है। यह रचना समाज कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है। यद्यपि तुलसीदास जी ने इसकी रचना, "स्वांत: सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा"[२४] कहकर की है तथापि इसमें मानव मात्र के क्लेश को दूर करने की अगाध श्रद्धा दिखाई देती है।

इस संदर्भ में 'श्रीमदभगवद्गीता' का उल्लेख करना भी मैं उचित समझती हूं। गीता अनेक सत्यों से हमारा परिचय करवाती है। यह आत्मा, जीव, ईश्वर के विषय में हमारा मार्गदर्शन करती है। यह मनुष्य को कर्मशील बनाने की प्रेरणा देती है। इसमें भगवान श्री कृष्ण और अर्जुन के माध्यम से मनुष्य को अपने कर्तव्यों में प्रवृत्त होने का संदेश प्राप्त होता है-

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते सङ्गोअस्त्वकर्मणि।

अर्थात- तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उनके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म करने में भी आसक्ति न हो।"[२५] गीता का यह संदेश हमें कर्म में प्रवृत्त तो करता ही है साथ ही भाग्यवादी बनने से भी रोकता है। तात्पर्य यह है कि ऐसे अनेक उदाहरण, हमारे वैचारिक पृष्ठभूमि को आधार देते हैं। कहना न होगा कि भारतीय चिंतन दृष्टि के ये अनुपम दृष्टांत है जो विरासत के रूप में भारतीय विचारकों और उनके साहित्य का आधार बनीं।

भारतीय चिंतन साहित्य की इसी धरा से अज्ञेय की वैचारिक-दृष्टि की जड़ें भी अपना पोषण प्राप्त करतीं हैं। यद्यपि अज्ञेय पर पाश्चात्य-प्रभाव से आक्रांत होने के आरोप लगते रहे हैं परंतु फिर भी उनकी कविताओं में भारतीयता का कहीं भी लोप नहीं होता है। वे भारतीयता को मानवीयता का सबसे बड़ा लक्षण मानते हैं। इस संबंध में अज्ञेय का कथन है- "भारत की आत्मा सनातन है, भारतीयता केवल एक भौगोलिक परिवृत्त की छाप नहीं है, एक विशिष्ट आध्यात्मिक गुण है, जो भारतीय को सारे संसार से पृथक करता है। भारतीयता मानवीयता का निचोड़ है, उसकी हृदय मणि है, उसका शिरसावंतस है, उसके नाक का बेसर है....।"[२६] इसमें 'भारतीयता मानवीयता का निचोड़ है' पर ध्यान आकर्षित होता है जिससे अज्ञेय की भारतीय विचार दृष्टि को समझा जा सकता है। मानवीयता अर्थात मनुष्य का मनुष्य के प्रति प्रेम। मानव-मन को पीड़ित देखकर, कवि के हृदय का व्यथित होना उसके इसी भावना को दर्शाता है। कवि न केवल उसकी पीड़ा से दुखी है बल्कि वे उसे पीड़ा-

मुक्त भी करना चाहते हैं। इसीलिए वे उनकी आस्था बनकर उन्हें प्रेरणा देते हैं। कवि की यह आस्था कर्म में विश्वास के कारण है जिस पर उसे संदेह नहीं है-

“मैं आस्था हूं तो मैं निरंतर उठते रहने की शक्ति हूं;

मैं व्यथा हूं तो मैं मुक्ति का श्वास हूं,

मैं गाथा हूं तो मैं मानव का अलिखित विश्वास हूं

मैं साधना हूं तो मैं प्रयत्न में कभी शिथिल न होने का निश्चय हूं,

मैं संघर्ष हूं जिसे विश्राम नहीं,

जो है मैं उसे बदलता हूं, जो मेरा कर्म है, उस में मुझे संशय का नाम नहीं।”[२७]

इन पंक्तियों में कवि भारतीय चिंतन के कर्मवाद से प्रभावित लगता है। भारतीय दर्शन ज्ञान, कर्म और योग को संसार के भवचक्र से मुक्ति का साधन मानता है। गीता में कर्म को भी ज्ञान की भांति मोक्ष प्राप्ति का एक मार्ग बताया गया है। कृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान और कर्म दोनों की महत्ता को समझाते हुए कहा है-

“लोकेऽस्मिन्द्‌विधा निष्ठा पूरा प्रोक्ता मयानघ।

ज्ञानयोगेन संख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

अर्थात- हे निष्पाप! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा मेरे द्‌वारा पहले ही कही गई है। उनमें से सांख्ययोगियों की निष्ठा तो ज्ञान से और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है।”[२८] इस संबंध में डॉ राधाकृष्णन का मत है कि “गीता की दृष्टि में कर्म का मार्ग भी मुक्ति के लिए उतना ही समर्थ साधन है जितना कि ज्ञान का मार्ग; ये दोनों मार्ग दो अलग अलग श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए है। वे एकांतिक नहीं है वरन परस्परपूरक हैं।”[२९] कहने का तात्पर्य है कि हम अपने कर्म से ही जीवन के दुखों से पार पा सकते हैं और अज्ञेय का इस मत में दृढ़ विश्वास है। उन्हें अपने कर्म पर संदेह नहीं है। वे निराश, दुखी तथा पीड़ितों के लिए प्रेरणा बन उनके जीवन में आशा का संचार करना चाहते

हैं। अज्ञेय की यह कर्म में आस्था ही है जो उन्हें 'जीवन की धज्जियां' उड़ाने में भी तनिक सा सकोंच नहीं है।

कर्म में यही आस्था उन्हें काव्य-सृजन के लिए भी प्रेरित करती है। वे हारिल के समान कर्म रूपी तिनके के सहारे अकेले ही जीवन को साधना चाहते हैं और कहते हैं-

"उड़ चल हारिल, लिए हाथ में यही अकेला ओछा तिनका।

उषा जाग उठी प्राची में- कैसी बाट, भरोसा किनका !

शक्ति रहे तेरे हाथों में- छूट न जाए यह चाह सृजन की;

शक्ति रहे तेरे हाथों में- रुक न जाए यह गति जीवन की।

x x x x x x

मिट्टी से जो छीन लिया वह तज देना तेरा धर्म नहीं है;

जीवन-साधन की अवहेला कर्मवीर का कर्म नहीं है!"[३०]

'उड़ चल, हारिल' शीर्षक-कविता की ये पंक्तियां कवि के कर्म में दृढ़ता की पुष्टि करती हैं। कितना भी संकट हो उससे हार मानना कवि को स्वीकार्य नहीं। 'आज थका हिय हारिल मेरा' शीर्षक-कविता में भी वे कहते हैं कि बैठे रहना उनके कुल का धर्म नहीं है-

बैठो, रहो, पुकारो-गाओ, मेरा वैसा धर्म नहीं है;

मैं हारिल हूं बैठे रहना मेरे कुल का कर्म नहीं है।"[३१]

वस्तुत: मनुष्य अपने जन्म से ही अनेक क्रियाओं में लगा रहता है। वह चाहे अथवा न चाहे, उसे कर्म में प्रवृत्त होना पड़ता है। बैठे रहना भी एक क्रिया ही है। अत: व्यक्ति अकर्मण्य होकर नहीं रह सकता। गीता में भी कहा गया है कि -"नि: संदेह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किए नहीं रहता; क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृतिजनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है-

न हि कश्चित्क्षणमपि जतु तिष्ठतकर्मकृत।

कार्यते हयवश: कर्म सर्वे: प्रकृतिजैर्गुणै:।”[३२]

अज्ञेय का भी मत है कि हमारे जीवन में कर्म का बड़ा महत्त्व है। हमारा जीवन बिना कर्म के व्यर्थ है। अकर्मण्यता न शास्त्रों को मान्य है और न ही अज्ञेय को। उनकी कविताओं में अनेक स्थानों में कर्म की चेतना विद्यमान है। 'एक ऑटोग्राफ' शीर्षक कविता में कवि की यही संवेदना व्यक्त हुई है-

“अल्ला रे अल्ला

होता न मनुष्य मैं, होता करमकल्ला।

रूखे कर्म जीवन से उलझा न पल्ला।

चाहता न नाम कुछ, मांगता न दाम कुछ,

करता न काम कुछ, बैठता निठल्ला-

अल्ला रे अल्ला!”[३३]

मनुष्य किसी न किसी कर्म में सदैव संलग्न रहता है। कर्म से हमारे दैनिक क्रिया, आचरण, कर्तव्य इत्यादि का बोध होता है। कर्म के संबंध में स्वामी विवेकानंद का मत है कि- “प्रत्येक मानसिक व शारीरिक प्रहार जो आत्मा से बहिस्फुरण करने के लिए, अपनी उचित शक्ति और ज्ञान को जानने के लिए, उस पर किया जाता है, कर्म है। यह कर्म का विशाल अर्थ है।”[३४] इस दृष्टि से देखें तो एक कवि के लिए कविता ही उसका कर्म है। कविता के द्वारा वह अपने मनोभावों को प्रकट करता है और जीवन की वास्तविकता का बोध कराता है। कविता के माध्यम से वह स्वानुभूत की अभिव्यक्ति करता है। अज्ञेय भी इस सत्य को स्वीकार करते हैं और कहते हैं- “कविता का वास्तविकता से संबंध है, घनिष्ठ संबंध है। कल्पना, प्रतिभा, ज्ञान, पर्यवेक्षण, सभी से कविता वास्तविकता को स्वायत्त, आत्मसात, करती है, संवेद्य और बहुजन-संप्रेष्य बनाती हुई फिर रचती है।”[३५]

अज्ञेय के मतानुसार कल्पना, प्रतिभा, ज्ञान, पर्यवेक्षण आदि से कविता यथार्थ को ग्रहण करती है। जीवन की इस यथार्थता अथवा

वास्तविकता को आत्मसात करके ही कविता उपयोगी बनती है। कविता की उपयोगिता का संबंध कवि की दृष्टि पर निर्भर है। इसके लिए स्वयं का समर्पण आवश्यक है। इस संबंध में अज्ञेय का कथन है- "मैंने कविता का उपयोग करना नहीं चाहा, क्योंकि मैंने नहीं माना कि मेरे उपयोग करना चाहने से वह उपयोगी होती है। मैं मानता हूं, वह तब उपयोगी होती है जब मैं स्वयं उपयोगी हूं; उसमें जीवन की पूर्णता तब है जब मैंने पूर्ण जीवन के प्रति अपने को समर्पित किया है।"[३६] कवि के पूर्ण समर्पण से ही कविता में पूर्ण सत्यता आ सकती है। अज्ञेय कविता की उपयोगिता और संप्रेषणीयता से काव्य-सत्य का अन्वेषण करते हैं। कविता में अन्वेषण के लिए उन्होंने किसी के भी सत्य को संदर्भ देने में संकोच नहीं किया। अज्ञेय की कविता 'नया कवि: आत्म स्वीकार' की पंक्तियां इसी प्रकार की संवेदना प्रकट करती हैं-

"किसी का सत्य था,

मैंने संदर्भ से जोड़ दिया

कोई मधु-कोष काट लाया था

मैंने निचोड़ लिया।"[३७]

अज्ञेय साहित्य को भी विज्ञान की भांति सत्य तक पहुंचने का एक साधन मानते हैं। जिस प्रकार विज्ञान सत्य-प्राप्ति के लिए अनुसंधान करता है उसी प्रकार साहित्य में भी अन्वेषण के द्वारा सत्य-प्राप्ति हो सकती है। इस संदर्भ में अज्ञेय का मत है- "अन्वेषी तो मैं समझता हूं कि साहित्यकार मात्र होता है। मैं तो यह भी मानता हूं कि सत्य को पहचानने के जो कई रास्ते हैं, साहित्य उनमें से एक है। साहित्य सत्य का अन्वेषण-अनुसंधान करता है, उस को पकड़ने का एक नया मार्ग प्रस्तुत करता है। एक रास्ता विज्ञान का है और एक साहित्य का है।"[३८]

सत्य की प्राप्ति और उसका अनुसंधान, भारतीय वैचारिकता का महत्वपूर्ण अंश रहा है। सत्य की जिज्ञासा साधारण मनुष्य से लेकर साधु-संतों, ज्ञानियों, दार्शनिकों आदि सभी को रहती है। हमारे वेद, उपनिषद, पुराण और शास्त्रों में सत्य के स्वरूप की विभिन्न प्रकार से व्याख्या हुई है। इनसे ज्ञात होता है कि ब्रह्मचर्य, तप और सत्य के

साधक को ही परमात्मा का ज्ञान हो सकता है। मुंडकोपनिषद में कहा गया है-

"सत्येन लभ्यस्तपसा हयेष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

अंत: शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यंति यतय: क्षीणदोष:॥"[३९]

(मु॰ उ॰ ३/१/५)

अर्थात "शरीर के भीतर (हृदय गुहा में विद्यमान) ज्योतिर्मय, परम पावन, अक्षर परमात्मा निस्संदेह सत्य, तप (विविध द्वंदों को सहन कर आचरित किया हुआ संयम), और यथार्थ ज्ञान से प्राप्त होने वाला है। उसे सब प्रकार के दोषों से रहित हुए यत्न शील विरक्त साधक ही देख पाते (जान पाते) हैं।"[४०]

वस्तुत: हमारा समस्त चिंतन सत्य तक पहुंचने का प्रयास है। हमारे मन में उठने वाली प्रत्येक जिज्ञासा की शांति सत्य के अनावरण से ही होती है। अनेक प्रश्नों और शंकाओं के समाधान हेतु भले ही ऋषि-मुनियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों ने भिन्न- भिन्न मार्ग अपनाएं हों, परंतु लक्ष्य एक ही रहा- सत्य की प्राप्ति। जहां साधु-संत और ऋषि-मुनि सत्य के लिए अनेक प्रकार से साधना करते हैं वहीं वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रयोग कर सत्य की पुष्टि करता है। कवि भी कविता में अन्वेषण करता है और सत्य की खोज करता है। वे कहते हैं-

"खोज में जब निकल ही आया

सत्य तो बहुत मिले।

x x x x x x

पर तुम -

नभ के तुम कि गुहा-गह्वर के तुम, मोम के तुम, पत्थर के तुम -

तुम किसी देवता से नहीं निकले:

तुम मेरे साथ मेरे ही आंसू में गले, मेरे ही रक्त पर पले

अनुभव के दाह पर क्षण-क्षण उकसती

मेरी अशमित चिता पर तुम मेरे ही साथ जले

तुम-

तुम्हें तो भस्म हो फिर मैंने अपनी भभूत में पाया।

अंग रमाया।

-तभी तो पाया।

खोज में जब निकल ही आया

सत्य तो बहुत मिले- एक ही पाया।"[४१]

अज्ञेय सत्य की खोज में निकल कर पाते हैं कि सत्य एक साधना हैं जिसमें स्वयं को तपाकर ही उसकी प्राप्ति होती है। संभवत: इसीलिए वे कहते हैं कि 'सत्य तो बहुत मिले परंतु पाया एक ही'। काव्य-सत्य और दर्शन सत्य में अंतर होता है। अज्ञेय भी दर्शन के सत्य से काव्य-सत्य को भिन्न मानते हैं। वे दोनों में भेद स्पष्ट करते हुए कहते हैं- "साहित्य-रचना और दर्शन में यही अंतर किया जा सकता है कि दर्शन की खोज उस सत्य की है जो किसी एक चौखटे में नहीं है और साहित्यकार उस सत्य को पकड़ता है और प्रस्तुत करता है जो उस चौखटे में ही सत्य है लेकिन उस चौखटे में वह अद्‌वितीय रूप से और नया सत्य है।"[४२]

भारतीय दृष्टि में सत्य, शिव और सुंदर का भी चिंतन किया गया है। अज्ञेय के काव्य में भी सत्य, शिव और सुंदरता परस्पर जुड़े हैं। सत्य को अज्ञेय जीवन के आधार पर ही परिभाषित करते हैं। हमारे जीवन का सत्य तो मृत्यु से जुड़ा है। अज्ञेय जीवन-मृत्यु के इस सत्य को शिव और सुंदर बनाने का प्रयास करते हैं। वे कहते हैं-

"क्रमश: मृत्यु भी सत्य ही है; उसे हम छोड़ नहीं सकते,

हां, शिवता, सुंदरता हम उसे दे सकते हैं,

अभी किन्तु जीवन है: अंतहीन तपस्या जिस से हम मुंह मोड़ नहीं सकते।

यह संबंध या (विपर्यास?) शाश्वत है क्योंकि इसे

हम चाहे जिस अर्थ में ले सकते हैं।"[४३]

अज्ञेय की दृष्टि में भी जीवन और मृत्यु शाश्वत सत्य के रूप में परिलक्षित हुए हैं। मृत्यु जीवन का परम सत्य है। अज्ञेय भी इसे स्वीकारते हैं और मानते हैं कि वास्तव में मृत्यु जीवन से ही संदर्भ पाता है। इस संबंध में अज्ञेय कहते हैं- "मैं मृत्यु का गीत नहीं गाता। पर मृत्यु है, इसलिए गाता हूं। इसीलिए गीत स्तवन हो जाता है- जीवन का।"[४४] जीवन और मृत्यु का क्रम तो अनवरत रूप से चलता ही रहता है। अज्ञेय की दृष्टि में मृत्यु जीवन का ही गान है इसलिए जीवन के प्रति उनकी दृष्टि आस्थावान बनी रहती है। सब-कुछ समाप्त हो जाने पर भी कवि की अपनी आत्मा में आस्था बनी रहती है। तभी तो वे आत्मा को हार न मानने के लिए कहते हैं-

मैंने कहा :

सखी मेरी, तुम भले मान लो मुझे अकिंचन

पर क्या मेरी आस्था भी नगण्य है?

दे कर - देते-देते चुक जाने पर

वही प्रेरणा देती है- मैं दे सकने को और नया कुछ रचूं! फिर रचूं!

अभी न हारो, अच्छी आत्मा,

मैं हूं, तुम हो,

और अभी मेरी आस्था है!"[४५]

अज्ञेय की कविताओं में यही आस्था व्यक्ति को निराशाओं से बचाती है। आज के तनावपूर्ण वातावरण में व्यक्ति को अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी संघर्ष करना पड़ रहा है। इस संघर्षमयी जीवन में यह आस्था ही व्यक्ति का मार्ग दर्शन करती है। उसमें नवजीवन का संचार करती है। अज्ञेय की कविता भी सत्य और शिव से जुड़कर अपना आयाम पाती है। जीवन की सुंदरता और शिवत्व

के प्रति अज्ञेय की समर्पण भावना और जिज्ञासा बनी रहती है और इसी से वे सत्य को पहचानते हैं। इसलिए वे कहते हैं-

"यह सुंदर है, यह शिव है,

यह मेरा हो, पर बंधा नहीं है मुझसे, निजी धर्म के मर्त्य है।

जीवन नि:संग समर्पण है, जीवन का एक यही तो सत्य है।"[४६]

अज्ञेय की भारतीय-चेतना मानवीय प्रेम पर आधारित है। प्यार और दर्द की इसी सम्पदा से वे अपनी वैयक्तिक-पीड़ा को भुलाकर दूसरों की मंगलमयता की कामना करते हैं। उनमें व्यक्ति के प्रति समर्पण की ऐसी भावना है जिससे उन्हें दुख रूपी विष को भी पचाने मे भी संकोच नहीं होता। उनकी इस दृष्टि में लोक-कल्याण की भावना सफलीभूत होती है। 'बने मंजूष यह अंतस्' कविता की इन पंक्तियों में उनकी यही संवेदना प्रकट हुई है-

"किसी एकांत का लघु द्वीप मेरे प्राण में बच जाए

जिस से लोक-रव भी कर्म के समवेत में रच जाए।

बने मंजूष यह अंतस् समर्पण के हुताशन का -

अकरुणा का हलाहल भी रसायन बन मुझे पच जाए।"[४७]

अज्ञेय की यही पीड़ा-बोध उन्हें उस मार्ग की ओर ले जाती है जिसमें सभी के सुखी होने का भाव (सर्वे भवन्तु सुखिनः) निहित है। व्यक्ति के प्रति दया, प्रेम, करुणा, और सेवा की भावना उनके काव्य में विद्यमान हैं। उन्होंने जीवन के दुखों को निकट से देखा और भोगा। जीवन के इन्हीं यथार्थ सत्यों से उन्हें दृष्टि मिली है। वे नहीं चाहते कि जो दुख और कष्ट उन्होंने भोगे, वह किसी भी अन्य व्यक्ति को भोगना पड़े। कविता की इन पंक्तियों में उनकी यही मंगल-कामना झलकती है-

"जियो उस प्यार में

जो मैंने तुम्हें दिया है,

उस दुख में नहीं जिसे

बेझिझक मैंने पिया है।

उस गान में जियो

जो मैंने तुम्हें सुनाया है,

उस आह में नहीं जिसे

मैंने तुम से छिपाया है।"[४८]

अज्ञेय की व्यक्ति के प्रति ऐसी प्रेम की भावना और आस्था ही उनकी दृष्टि को भारतीयता के रंग में रंगती है। आज के इस समय में जहां व्यक्ति ही व्यक्ति का शत्रु बन बैठा है, वहीं अज्ञेय की कविता "पर हित सरसि धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई"[४९] की अनुगामिनी है। उन्हें अन्याय सहन नहीं है। वे ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि सत्य और निष्ठा के मार्ग से वे कभी विचलित न हो। वे ऐसे जीवन की कामना करते हैं जिसमें उनकी आस्था और विवेक सदा उनके साथ हों-

"किन्तु साथ ही

देना साहस

हो अन्याय किसी के भी प्रति पर मुझे से चुप रहा न जाय,

आस्था जिस के सुख का प्लावन ज्वार व्यथा का बहा न पाय।

आकांक्षा का मधुर कुहासा, संशय का तम, करे न ओझल

वह पैना विवेक जिस को दुश्चिंता कोई करे न बोझल

सच का आग्रह, निष्ठा की हठ,

अग-जग के विरोध का धक्का जिस को ढहा न पाए।

देना, जीवन, देना"[५०]

अज्ञेय की व्यक्ति के प्रति प्रेम की ऐसी दृष्टि उनकी श्रेष्ठ भारतीय वैचारिकता को दर्शाती है। सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए दया, प्रेम, करुणा की यही भावना ही किसी व्यक्ति को देव-तुल्य बनाती है।

सही मायने में मानव प्रेम ही जीवन का सबसे बड़ा धर्म है। वेदों में भी कहा गया है-

"वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च

म एमश्च मऽइत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्- (यजु-३/५०)

अर्थात- मेरी संपत्ति, मेरे निवास, मेरे कर्म सामर्थ्य, मेरी प्रत्येक वस्तु, मेरा सुप्रयत्न, मेरी बुद्धि, मेरी आचार- व्यवहार की रीति तथा मेरी गति (क्रिया-कलाप) सभी सर्वजन हिताय हों।"[५१] कदाचित यही कारण है कि गौतम बुद्ध, विवेकानंद, गांधी आदि ऐसे अनेक विचारक आज भी हमारे लिए अविस्मरणीय हैं क्योंकि उन्होंने पूरे विश्व को मानव-प्रेम का पाठ पढ़ाया। अज्ञेय भी इन विचारों से प्रभावित रहे। उनकी दृष्टि सदा ही व्यक्ति के लिए कल्याणमयी रही। वे कहते हैं-

ऋषियों की अस्थियों से भी

सुर गण केवल अस्त्र बना पाए

क्यों नहीं उनसे खाद बनी

जो अकाल अनावृष्टि में

रसा वसुंधरा को फलवती बनाए -

लोक जन के काम आए"[५२]

अनेक आदर्शवादी विचारकों और उनके विचारों ने भारतीय विचार-दृष्टि को आकार दिया। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अज्ञेय की कविताओं में भारतीय विचारों की एक समन्वित दृष्टि को देखा जा सकता है। उनके विचारों में वैज्ञानिकता है। नयापन है। वे अन्वेषक प्रवृत्ति के हैं अत: किसी विचार को ग्रहण और स्वीकारने से पहले उसे खंगालते हैं। अपनी संस्कृति और परंपरा से प्राप्त विचारों को भी उसी रूप में तब तक नहीं ग्रहण करते जब तक वह उसे परख नहीं लेते। इस विषय में कृष्ण दत्त पालीवाल का कथन है- "कवि अपने विवेक से परंपरा को कूट-पीसकर छानता है और 'सार सार को गहि रहै थोथा देय उड़ाय' की अनुभवसिद्ध थ्योरी से उसके अर्थ को अपनाता है।"[५३]

ख- पाश्चात्य विचार-दृष्टि

अज्ञेय की विचार-दृष्टि न केवल भारतीय वरन पाश्चात्य विचारों से भी पोषित है। पाश्चात्य विचारकों और उनके साहित्य के अध्ययन ने उनके विचारों को प्रभावित तो किया ही, साथ ही उनकी नूतन दृष्टि के मुख्य कारक भी बने। इतना ही नहीं, उन्हें आधुनिक कवि के रूप में प्रतिष्ठित करने में भी सहयोग दिया।

अज्ञेय की रुचि बाल्यावस्था से ही अनेक भारतीय और पाश्चात्य विषयों और विचारकों के अध्ययन में रही। उन्होंने संस्कृत, फारसी के साथ-साथ अंग्रेजी के काव्यों का अध्ययन भी किया। इस संबंध में वे कहते हैं- "मैं वाल्मीकि के बाद कालिदास और राजा भोज की गाथाओं के द्वारा कालिदास के और कुछ अन्य कवियों के नामों से थोड़ा बहुत परिचित होने ही लगा था कि सादी और हाफ़िज़ के नामों से भी परिचित हो गया, और फारसी के शेर तो नहीं पर कहावतें मुझे याद हो गईं। और अंग्रेजी की बारी तो इसके बाद ही आई।"[५४]

भारतीय कवियों में जहां वे वाल्मीकि, कालिदास, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मैथिलीशरण गुप्त, निराला से प्रभावित थे वहीं टेनिसन, ब्राउनिंग, एलियट, लांगफेलो, एजरा पाउंड आदि पाश्चात्य विद्वानों से भी। अज्ञेय स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन पर कुछ पाश्चात्य लेखकों, विचारकों और कवियों का प्रभाव रहा। उन्हीं के शब्दों में- "टेनिसन और ब्राउनिंग बहुत अच्छे लगते थे और समझता हूं कि मैंने उनसे कुछ सीखा भी और विशेष रूप से ब्राउनिंग से। फिर बाद में दूसरे कवि और लेखक अच्छे लगते रहे। विचारों की दृष्टि से टी. एस. एलियट का कुछ प्रभाव रहा। काव्य उनका बहुत अच्छा तो नहीं लगा, बाद की कुछ रचनाएं अच्छी लगी थीं। और इसी तरह एजरा पाउंड की कुछ चीज़े अच्छी लगीं। उपन्यासकारों में तालस्ताय अच्छे लगते रहे, अब भी लगते हैं। और, और नाम भी ले सकता हूं।"[५५]

अज्ञेय के इस कथन से यह स्पष्ट है कि बचपन से ही उन पर भारतीय कवियों के साथ पाश्चात्य कवियों का प्रभाव रहा। प्रारम्भ में अज्ञेय के विचारों पर टेनिसन, डी॰ एच॰ लारेंस, ब्राउनिंग आदि पाश्चात्य

कवियों का गहरा असर पड़ा। डी॰ एच॰ लारेंस, ब्राउनिंग का प्रभाव 'चिंता' काव्य संग्रह की कुछ कविताओं के अनुवाद के रूप में देखा जा सकता है। इसकी 'विज्ञप्ति' में वे स्वीकार करते हैं कि- "संख्या ६८- 'मैं तुम्हारी समाधि पर प्रज्वलित एक मात्र दीप हूं' के भाव डी॰ एच॰ लारेंस की एक कविता से लिए गए हैं। एकायन में सं॰ ३५ के एक पद की दो पंक्तियां-

'ईश्वर बन कर मंत्र शक्ति से छू दे मेरा भाल-

मात्र पुरुष रह बांध भुजों से मर्माहत कर डाल!'

ब्राउनिंग के एक पद का एक रूपांतर है।"[५६] अज्ञेय की इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि वे ब्राउनिंग और डी॰ एच॰ लारेंस से प्रभावित थे। उनकी दृष्टि आधुनिक थी इसलिए उनके कवि मन में कहीं से कुछ नया अथवा कुछ अलग प्राप्त करने की लालसा बनी रहती थी। 'किसी लेखक या कवि की प्रतिभा से प्रभावित हो जाने तथा अपने काव्य में उसके प्रयोग से अज्ञेय को कोई संकोच नहीं था। कदाचित उनकी इसी गुण ने उनके विचार और उनकी दृष्टि को आधुनिकता और नव्यता दी। अज्ञेय को जहां कहीं किसी से विचार और दृष्टि मिली, उन्होंने उसका ऋण स्वीकारा है। चिंता में ब्राउनिंग का प्रभाव स्वीकाराना इस का ही साक्ष्य है। चिंता के एकायन के पद में ब्राउनिंग के जिस कविता का प्रभाव की बात उन्होंने की है, उस संदर्भ में भोलाभाई पटेल का कथन है- "अज्ञेय ने कविता का नाम नहीं बताया, लेकिन ब्राउनिंग के पाठकों को पता चल जाता है कि ये पंक्तियां उनकी 'A women's last word' कविता की है जो निम्न प्रकार है-

"Be a god and hold me

With a charm!

Be a man and fold me

Withe thine arm!"[५७]

अज्ञेय पाश्चात्य विचारकों में विचारों की दृष्टि से टी.एस. एलियट से सबसे अधिक प्रभावित थे। उन्होंने टी.एस. एलियट के प्रसिद्ध निबंध 'ट्रेडीसन एंड इंडिविजुअल टैलेंट' से प्रभावित होकर उसका छायानुवाद

'रूढ़ि और मौलिकता' शीर्षक से किया। यह सही है कि अज्ञेय ने पाश्चात्य विचारों से बहुत कुछ लिया परंतु उसे अपनी मौलिकता भी दी। अज्ञेय एलियट के काव्य से अधिक उनके काव्य चिंतन से प्रभावित थे। अज्ञेय ने एलियट के 'परंपरा' और 'निर्वैयक्तिकता' को अपने साहित्य में स्थान दिया। वे परंपरा के महत्त्व को स्वीकारते हैं और मानते हैं कि परंपरा को भुलाकर हम आगे नहीं बढ़ सकते। अज्ञेय एक साहित्यकार के लिए भी परंपरा को बहुत आवश्यक मानते हैं। अपनी परंपरा का ज्ञान और उसके प्रति जागरूकता से ही साहित्यकार अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ पाता है, जिसे अज्ञेय ऐतिहासिक चेतना से संभव मानते हैं। इस विषय में अज्ञेय का मत दृष्टव्य है- "आधुनिक हिन्दी लेखक में यदि यह ऐतिहासिक चेतना होगी, तो उस रचना में ना केवल अपने युग, अपनी पीढ़ी से उसका संबंध बोल रहा होगा; बल्कि उससे पहले की अनगिनत पीढ़ियों की, और उनके साथ अपनी पीढ़ी की संलग्नता और एकसूत्रता की तीव्र अनुभूति स्पंदित हो रही होगी। जो 'है', उसकी साधना में ऐसा साहित्यकार उसे एक ओर हटाकर नहीं फेंक सकेगा जो 'था'; वह अनुभव करेगा कि अतीत उसी का नाम है जो पहले से वर्तमान है, जबकि 'आज' वह है जो वर्तमान होना आरंभ हुआ है।"[५८] अज्ञेय का यह मत एलियट से प्रभावित है। एलियट मानते हैं कि वर्तमान से जुड़कर ही परंपरा विकास कर पाती है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध निबंध 'ट्रेडीशन एंड इंडिविजुअल टैलेंट' में कहा कि- "the historical sense involves a perception, not only of the pastness of the past, but of its presence…………the past should be altered by the present as much as the present is directed by the past."[५९]

अज्ञेय कविता के लिए परंपरा की आवश्यकता को महसूस करते हैं। उनकी कविता 'नदी के द्वीप' में इसी प्रकार की संवेदना मिलती है। वे मानते हैं कि परंपरा ही हमें आकार देती है। परंपरा को शाप न मानकर उसे अपनी नियति के रूप में मानते हैं। वह हमारे अभिभावक के समान हमें संस्कारित करती है। वे कहते हैं-

"द्वीप हैं हम।

यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।

हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में।

वह बृहद भूखंड से हमको मिलाती है।

और वह भूखंड अपना पितर है।

नदी, तुम बहती चलो"।

भूखंड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,

मांजती, संस्कार देती चलो:"[६०]

परंपरा के रूप में समाज से जो कुछ प्राप्त होता हैं, उसे स्वीकारने में अज्ञेय तनिक भी संकोच नहीं करते। वे इसे एक कवि की दृष्टि से आवश्यक मानते हैं क्योंकि उसे अपनी कविता की नींव अपनी प्राचीन परंपरा से ही प्राप्त होती है। तभी तो वे कहते हैं-

"यदि ऐसा कभी हो

तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वैराचार से- अति चार से

तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे,

यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर काल-प्रवाहिनी बन जाए

तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत हो कर

फिर छनेंगे हम। जमेंगे। कहीं फिर पैर टेंकेंगे।

कहीं फिर खड़ा होगा व्यक्तित्व का आकार।

मात: उसे फिर संस्कार तुम देना।"[६१]

' अज्ञेय कविता की इन पंक्तियों में यह लक्षित करते प्रतीत होते हैं कि सब कुछ विनष्ट हो जाने पर भी हम अपनी इसी परंपरा से पुन: आकार प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि वर्तमान का अस्तित्व उसके अतीत से जुड़ा होता है। इसलिए वे कहते हैं कि परंपरा की यह स्रोतस्विनी कितनी भी घोर काल-प्रवाहिनी क्यों ना बन जाए, हम फिर से रेत क्यों न बन जाएं, उसी से नए व्यक्तित्व को आकार मिलेगा। इतना ही नहीं, अज्ञेय उसी स्रोतस्विनी से पुन; संस्कारित करने की विनती भी करते हैं।

ऐसा इसलिए है कि क्योंकि अज्ञेय परंपरा के दाय को बड़ी विनम्रता से ग्रहण कर लेते हैं। उनका मत है कि वर्तमान का अतीत से घनिष्ठ संबंध है परंतु यह स्वीकारने का तात्पर्य यह नहीं है कि वर्तमान, अतीत पर ही आश्रित है और उसमें कोई नव्यता नहीं है। जो लोग परंपरा को तुच्छ मानसिकता के रूप में अपनाते हैं, वे परंपरा को अपने जीवन का अवरोध मानते हैं। वे उसे अपनी प्रगति में रुकावट भी मानते हैं। उन्हें परंपरा की रूढ़िगत अवधारणा से बाहर आना चाहिए। परंपरा से प्राप्त ज्ञान और अनुभव हमारे जीवन को न केवल गति देता है बल्कि जीवन के मार्ग को निर्देशित भी करता है। उसी से अर्जित और प्राप्त अनुभवों के द्‌वारा हम जीवन को नई दिशा देने में समर्थ बनते हैं। अज्ञेय मानते हैं कि अतीत और वर्तमान में एक पारस्परिकता का संबंध है जो अलग नहीं किया जा सकता है। दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। वे मानते हैं कि एक साहित्यकार और साहित्य के विषय में भी यह सत्य है। इस संबंध में अज्ञेय कहते हैं- "आधुनिक साहित्यकार को मानना पड़ता है कि, वह चाहे या न चाहे, उसे अतीत द्‌वारा, रूढ़ि द्‌वारा उतना ही नियमित होना पड़ता है जितना वह स्वयं उसे परिवर्तित और परिवर्धित करता है।"[६२]

एलियट का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है- 'निर्वैयक्तिकता' की। इसका प्रभाव अज्ञेय के काव्य में भी दृष्टिगत है। उनके काव्य में भी निर्वैयक्तिकता और तटस्थता की अभिव्यक्ति अपने अनेक रूपों में अभिव्यक्ति पाती है। एलियट के अनुसार कविता माध्यम पाकर स्वयं उत्पन्न होती है। कवि का व्यक्तितत्व कविता से परे होता है। व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण उसकी धारणा और अनुभूति का कविता में कोई स्थान नहीं होता। उन्होंने कहा है- "the poet, has, not a "personality" to express, but a particular medium, which is only medium not personality, in which impressions and experiences combine in peculiar and unexpected ways. Impressions and experiences which are important for the man may take no place in the poetry, and those which become important in the poetry may play quite a negligible part in the man, the personality"[६३]

एलियट की इस मान्यता में अज्ञेय की भी सहमति हैं - "वास्तव में काव्य में कवि का व्यक्तितत्व नहीं, वह माध्यम प्रकाशित होता है जिस में विभिन्न अनुभूतियां और भावनाएं चमत्कारिक योग में युक्त होती हैं।

काव्य एक व्यक्तित्व की नहीं एक माध्यम की अभिव्यक्ति है।"[६४] अनुभूतियों और भावनाओं को हमारा मस्तिष्क तभी तक संग्रहीत रखता है जब तक वह किसी रूप, आकार या कविता में अभिव्यक्त न हो जाए। कहने का तात्पर्य यह है कि कविता तभी उत्पन्न होती है जब कवि के सभी भावों का विलयन हो जाता है। वे मानते हैं कि समर्पण के बिना कविता संभव नहीं है। रचना प्रक्रिया में कवि के लिए ये तटस्थता आवश्यक है। चिंता की भूमिका में वे कहते हैं- "काव्य रचना मूलत: अपने को अपनी अनुभूति से पृथक करने का प्रयत्न है- अपने भावों के निर्वैयक्तिकरण की चेष्टा। बिना इसके काव्य निरा आत्म-निवेदन है और सच हो कर भी इतना व्यक्तिगत है कि काव्य की अभिधा के योग्य नहीं।"[६५] वस्तुत: एक कलाकार की काव्यगत-कुशलता और गुणों से उसकी स्वानुभूति का विलय ही निर्वैयक्तिकरण है। एक उत्कृष्ट काव्य की भी यही विशेषता है। इस संदर्भ में अज्ञेय की लंबी कविता 'असाध्य वीणा' का दृष्टांत लिया जा सकता है। 'असाध्य वीणा' कविता में प्रियंवद किरीटी-तरु से निर्मित वीणा को साधने में स्वयं के अन्वेषण में लगा हुआ है-

"मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा -
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था
सघन निविड में वह अपने को
सौंप रहा था उस किरीटी-तरु को
कौन प्रियंवद है कि दंभ भरकर
इस अभिमंत्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन भर की साधना रही?
भूल गया था केशकंबली राज सभा को :
कंबल पर अभिमंत्रित एक अकेलेपन में डूब गया था"[६६]

यहां साधक अपना सर्वस्व भूलकर वीणा में ही एकाग्रचित होने का प्रयास करता है। प्रियंवद वीणा से तादात्म्य किए बिना उसे नहीं साध सकता। जब वह सम्पूर्ण राज सभा से विरक्त हो केवल वीणा मे ही ध्यानचित्त हो जाता है तो वह उसे साधने में समर्थ होता है-

"श्रेय नहीं कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था -
सुना आप ने जो वह मेरा नहीं,
सब कुछ की तथता थी"[६७]

अत: अपना सर्वस्व समर्पित करने के पश्चात ही उसकी साधना सफल होती है। कविता की इन पंक्तियों में निर्वैयक्तिता का गुण विद्‌यमान है। प्रियंवद तभी वीणा को साध सका जब उसका सम्पूर्ण अहं उसमें ही घुल गया। साधक अपनी साधना में इतना लीन हो जाता है कि उसका स्व विसर्जित हो जाता है और वह चरम आनंदानुभूति करने लगता है। यहां उसको स्वं की सुधि नहीं रह जाती। इस संदर्भ में- अज्ञेय का कथन दृष्टव्य है- "कला के भाव व्यक्तित्व से परे होते हैं; निर्वैयक्तिक होते हैं। और कवि इस निर्वैयक्तिक भावों का ग्रहण और अभिव्यंजना तभी कर सकता है जब वह व्यक्तित्व की परिधि से बाहर निकाल कर एक महत्तर अस्तित्व के प्रति अपने को समर्पित कर सके।"[६८] अज्ञेय के इस कथन पर एलियट का प्रभाव स्पष्ट है। एलियट कहते हैं- "Poetry is not a turning loose of emotions but an escape from emotions. It is not the expression of personality, but an escape from personality."[६९] कहने का आशय है कि कविता भावनाओं और व्यक्तित्व को अभिव्यक्त नहीं करती वरन उससे पलायित होती है। रचना प्रक्रिया में कवि या कलाकार अपने भावों और अनुभवों से मुक्त हो जाता है जिसका परिणाम उसकी कला या रचना होती है। वास्तव में एलियट का यह सिद्धान्त भारतीय काव्यशास्त्र के 'साधारणीकरण' के निकट प्रतीत

होता है। 'साधारणीकरण' का प्रश्न नाटक के रसानुभूति के संदर्भ में आया है।

'साधारणीकरण' के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है- " 'साधारणीकरण' का अभिप्राय यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्ति-विशेष या वस्तु-विशेष आती है, वह जैसे काव्य में वर्णित 'आश्रय' के भाव का अवलंबन होती है, वैसे ही सब सहृदय पाठकों या श्रोताओं के भाव का आलंबन हो जाता है।"[७०] कहने का आशय है कि कवि के मन के भाव विशेष न रहकर सामान्य हो जाते हैं। काव्य या नाटक में निहित भाव लोकहृदयी बन जाता है। मेरे और पराए का भेद मिट जाता है। एलियट के निर्वैयक्तिकता सिद्धांत में भी कवि के भाव और अनुभूतियां अपने नहीं रह जाते। परंतु दोनों में पर्याप्त भेद है। साधारणीकरण की एक लंबी चिंतन दृष्टि भारतीय दर्शन में मिलती है। अज्ञेय भी मानते हैं कि "एलियट ने निर्वैयक्तिकता का जो सिद्धांत प्रतिपादित किया था उसने मुझे आकृष्ट किया फिर धीरे-धीरे एलियट से मैं दूर हट गया- लेकिन उस सिद्धान्त से नहीं क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि साधारणीकरण के सिद्धान्त से बहुत अलग बात नहीं है जो एलियट ने कही है।"[७१]

यथार्थतः अज्ञेय ने एलियट के प्रभाव में अपने काव्य संबंधी अनेक विचारों को आत्मसात किया। उनकी आधुनिकता इस बात में है कि वे श्रेष्ठ विचारों को ग्रहण करते हैं और उसका प्रयोग अपने साहित्य में करते हैं। परंपरा, निर्वैयक्तिकता और काव्य संबंधी अनेक समस्याओं को परखने में अज्ञेय ने एलियट के विचारों को आत्मसात किया। अज्ञेय पर एलिएट के प्रभाव के विषय में रामस्वरुप चतुर्वेदी का कथन दृष्टनीय है- "अज्ञेय और एलियट की समानता बार-बार उभर कर सामने आती है। अपने-अपने साहित्यों में दोनों से गैर-रोमैंटिक कविता का आरंभ होता है, दोनों परंपरा से आक्रांत न होकर उसका प्रयोग करना चाहते हैं, और दोनों भोगने वाले प्राणी और रचनेवाली मनीषा के पृथकत्व में विश्वास रखते हैं। व्यापक रूप से साहित्य को आधुनिक बनाने में इन दोनों लेखकों का योग अन्यतम है।"[७२]

काव्य-रचना के शुरुआती काल में अज्ञेय की कविताओं में रूमानी भाव की अभिव्यक्ति अधिकता से हुई है। यह स्वाभाविक ही था क्योंकि एक तो उन्हें पाश्चात्य कवियों की रचनाओं में रुचि थी दूसरे पूर्ववर्ती काव्य धाराओं का कुछ प्रभाव तो पड़ता ही है। उनमें रूमानी भाव की प्रवृत्ति टेनीसन, लारेंस, ब्राउनिंग आदि पाश्चात्य कवियों और छायावादी प्रभाव के अनुरूप कहा जा सकता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने एलिएट और अज्ञेय के विचारों में साम्य दिखाते हुए यह स्वीकारा है कि दोनों के साहित्य से गैर-रोमैंटिक साहित्य की शुरुआत होती है। गैर-रोमैंटिक साहित्य बौद्धिकता पर आधारित साहित्य है, जहां कवि हृदय से नहीं बुद्धि से विचार करने लगता और उसकी दृष्टि बौद्धिकता पर आधारित होती है। कालांतर में अज्ञेय के काव्य में बौद्धिकता झलकने लगती है। इसे एलियट और अन्य विचारकों का प्रभाव माना जा सकता है। जहां एलियट के विचार अज्ञेय के विचारों को प्रौढ़ बनाने में सहायक हुए, वहीं मार्क्सवादियों, मनोविश्लेषणवादी जैसी विचारधाराओं की मान्यताओं से उनके विचारों में गहनता और दृष्टि में नव्यता का सूत्रपात हुआ।

अज्ञेय की कविताओं में मार्क्सवादी विचारों का प्रभाव भी परिलक्षित है। मार्क्सवादी विचारों और सिद्धांतों ने हिन्दी साहित्य को नई दृष्टि दी। कार्लमार्क्स मार्क्सवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। १९वीं शताब्दी के आस-पास कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने भौतिकवादी सिद्धान्त दिया जो सर्वहारा वर्ग के हितों से जुड़ी थी। यह समाज की व्यवस्था को समझने में सहायक पद्धति है। डॉ॰ तारकनाथ बाली ने इसके सिद्धान्त को स्पष्ट किया है -"मार्क्सवाद का एक मौलिक सिद्धान्त यह है कि समाज की व्यवस्था पूर्णत: समाज की तत्कालीन आर्थिक स्थिति द्वारा निर्धारित होती है। समाज की आर्थिक स्थिति का स्थूल रूप में अर्थ है, उत्पादन का साधन तथा वितरण की व्यवस्था। उत्पादन का साधन के अनुरूप तथा वितरण की व्यवस्था के अनुकूल ही सामाजिक संबंधों का निर्माण होता है।"[७३] मार्क्स के इस सिद्धांत के मूल में पूंजी व्यवस्था है जिसके कारण समाज, शोषक और शोषित दो वर्ग में विभक्त हो जाता है। ये दोनों एक दूसरे की विरोधी शक्तियां हैं। शोषित वर्ग, सर्वहारा वर्ग है जिसके प्रति मार्क्सवादी सचेत हैं। अज्ञेय की कविताएं भी इस सर्वहारा

वर्ग की दशा का वर्णन करती हैं। वे शोषित वर्ग की पीड़ा का अनुभव करते हैं क्योंकि इसे वह अपनी पीड़ा समझते हैं-

"क्योंकि जिसने कोड़ा खाया है

वह मेरा भाई है

क्योंकि यों उसकी मार से मैं भी तिलमिला उठा हूं।"[७४]

समाज में व्याप्त असमानता को देखकर अज्ञेय का हृदय तिलमिला जाता है। जो दुखी हैं, कष्ट में है और अन्याय सहने के लिए मजबूर है, अज्ञेय उनके साथ हैं। उन्हें वे अपना भाई-बंधु समझते हैं। इसलिए वे पूँजीपतियों को चेतावनी देते हैं-

"सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूं सुनो घृणा का गान!

तुम जो बड़े-बड़े गद्दों पर ऊंची दुकानों में,

उन्हें कोसते हो जो भूखे मरते हैं खानों में,

तुम जो रक्त चूस ठठरी को देते हो जल दान

सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूं सुनो घृणा का गान!

तुम जो महलों में बैठे दे सकते आदेश,

'मरने दो बच्चे ले आओ, खींच पकड़ कर केश

नहीं देख सकते निर्धन के घर दो मुट्ठी धान-

सुनो, तुम्हें ललकार रहा हूं सुनो घृणा का गान!"[७५]

कवि के स्वर में एक आक्रोश है। उसकी पूरी संवेदना शोषित वर्ग के साथ है। इन पंक्तियों में कवि ने शोषक वर्ग पर व्यंग्य साधा है। समाज में आर्थिक व्यवस्था असमान होने से किसी भी समाज में विद्रोह की भावना पनपती है। अज्ञेय इस वर्ग भेद को अनुचित और अन्यायपूर्ण मानते हैं। वे उस वर्ग को अपने साहित्य में स्थान देते हैं जो प्रताड़ित हैं। उनकी यह भावना मार्क्सवादी विचारों से दृष्टि प्राप्त करती प्रतीत होती है। इस संबंध में शिव कुमार मिश्र द्वारा मार्क्स के विचारों का

उल्लेख दृष्टव्य है-"मार्क्स का कथन है कि वर्ग बद्ध समाज व्यवस्था में जैसे-जैसे वर्ग संघर्ष तीव्र होता जाता है, पीड़ित मेहनतकश वर्ग की लड़ाई मुद्राएं भी प्रखर हो जाती हैं और बहुत से लोग अपनी वर्ग-भूमिका को छोड़कर सर्वहारा वर्ग के साथ हो जाते हैं। उन्हें अपना भविष्य सर्वहारा वर्ग के साथ जुड़ा दिखाई देने लगता है। मार्क्सवादी साहित्य-चिंतकों ने इस तथ्य की व्याख्या करते हुए प्रदर्शित किया है कि पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में अनेक रचनाकर तथा कलाकार सर्वहारा-वर्ग से जुड़कर उसके हितों के प्रवक्ता के रूप में सामने आते हैं। ये वे ईमानदार तथा मानवतावादी रचनाकार है जो सर्वहारा संघर्ष के साथ ही अपनी नियति जोड़ देते हैं।"[७६] अज्ञेय भी सदा उनके साथ हैं जो कष्ट में है, दुखी हैं। वे ना केवल उन्हें भाई-बंधु समझते हैं वरन वे स्वयं उनकी कथा बन जाते हैं-

"यह जो दूसरों का उतारन फींचती है,
यह जो रद्दी बटोरता है,
यह जो पापड़ बेलता है, बीड़ी लपेटता है, वर्क कूटता है,
धौंकनी फूंकता है, कलई गलाता है, रेढ़ी ठेलता है,
चौक लीपता है, बासन मंजता है, ईंटें उछालता है,
रुई धुनता है, गारा सानता है, खटिया बुनता है
मशक से सड़क खींचता है,
रिक्शा में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है।
जो भी जहां भी पिसता है पर हारता नहीं, न मारता है
पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी स्रष्टा-
उसकी मैं कथा हूं"[७७]

अज्ञेय की यह कविता तारसप्तक में प्रकाशित हुई थी। उनकी इस कविता में मार्क्सवादी प्रभाव दृष्टिगत है। तारसप्तक के अधिकांश कवि और उनकी कविताएं मार्क्सवादी विचारों को अभिव्यक्त करतीं हैं। मार्क्सवादी कवियों का विचार है कि यह समाज के लिए उपयोगी दृष्टि है। भारतभूषण अग्रवाल का यह कथन इसी ओर संकेत करता है- "मार्क्सवाद को आज के समाज के लिए रामबाण मानता हूं।"[७८] वास्तव में मार्क्सवादी विचारों का महत्त्व समाज में समता बनाए रखने में है। समाज में सभी को उनका समान अधिकार मिले और किसी भी तरह की असमानता न हो। उनके विचारों के मूल में यही भाव निहित है। मार्क्सवादी एक ऐसे समाज की स्थापना चाहते हैं जिसमें व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता का बोध हो और जो शोषण मुक्त हो। इस संदर्भ में शिवकुमार मिश्र का मंतव्य है- "मार्क्सवाद मानव की मुक्ति का दर्शन है। वह मूलत: समाज तथा संसार को समझने और उन्हें बदलने का पथ-निर्देश करने वाली क्रांतिकारी विचारधारा है, जिसका प्रधान लक्ष्य मानवीय शोषण पर आधारित अन्याय और अनाचारमूलक पूंजीवादी समाज-व्यवस्था तथा अन्यान्य अमानवीय स्थितियों का अंत कर एक समाज-व्यवस्था की स्थापना है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित न होकर, इस तमाम शोषण से उसकी मुक्ति सच्ची मानव स्वतन्त्रता, बंधुत्व एवं सहयोग पर आधारित हो, वर्ग, वर्ण, जाति, धर्म आदि-आदि मानव को बांटने वाली शक्तियों का नाश कर एक मानवता और एक विश्व व्यवस्था का शंखनाद करने वाली हो।"[७९] इस कथन से स्पष्ट है कि मार्क्सवाद की दृष्टि लोककल्याण की दृष्टि है। अज्ञेय भी सामाजिक विषमता, शोषण और अन्याय के पक्षधर नहीं है। पीड़ितों की पीड़ा से स्वयं पीड़ित होना और उसके कष्टों को अपने काव्य में उजागर करना भी एक प्रकार से लोक कल्याण ही है।

अज्ञेय को मार्क्सवादी विचारों से जहां समाज और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों को आधुनिक संदर्भ में समझने की दृष्टि मिली, वहीं मनोविश्लेषणात्मक विचारों से मानव-मन के विश्लेषण की नई समझ का सूत्रपात हुआ। मनोविश्लेषणात्मक विज्ञान व्यक्ति-मानस का विवेचन और विश्लेषण करने वाले मनोविज्ञान की एक पद्धति है। इसके प्रमुख प्रवर्तक फ्रायड माने जाते हैं। फ्रायड के साथ कार्ल गुस्ताव युंग

और अल्फ्रेड एडलर जैसे मनोविश्लेषणवादी पाश्चात्य विचारकों के सिद्धांतों का प्रयोग हिन्दी साहित्यकारों ने किया। इन सभी मनोविश्लेषणवादी विचारकों का हिन्दी साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।

फ्रायड ने मन के तीन स्तरों को उल्लेख किया है - चेतन, अर्द्धचेतन और अचेतन। चेतन और अचेतन के मध्य अर्द्धचेतन मन होता है। चेतन मन से व्यक्ति सब देखता और अनुभूति करता है। अचेतन मन में उसकी वे इच्छाएं संचित होती हैं जो वह सामाजिक और नैतिक अवरोध के कारण पूरा नहीं कर पाता। चेतन और अचेतन मन में नैतिकता के स्तर पर विरोध है। फ्रायड की मान्यताओं का उल्लेख डॉ॰ भागीरथ मिश्र ने किया है- “फ्रायड का मत है कि चेतन-अचेतन में द्वंद चलता रहता है क्योंकि चेतन मन, व्यक्ति, परिवार और समाज की नैतिकता और मर्यादा के संस्कारों से ओत-प्रोत होता है; अत: जब अचेतन की इच्छाएं और वासनाएं चेतन के धरातल पर आने लगती हैं, तब चेतन के संस्कार उसका प्रतिरोध और निषेध करते हैं, वे असामाजिक और अनैतिक वासनाओं का दमन करते हैं। इस दमन के कारण मानसिक वर्जनाएं और ग्रंथियां निर्मित हो जाती हैं। इन ग्रंथियों के कारण मानसिक विकृतियां उत्पन्न होती हैं। परंतु कभी-कभी अचेतन की इच्छाएं और वासनाएं चेतन मन के द्वारा परिष्कृत और उदात्त रूप में अभिव्यक्त की जाती हैं- यही अभिव्यक्ति कला और साहित्य का रूप धारण करती हैं।”[८०] फ्रायड मानता है कि चेतन और अचेतन मन के व्यापारों द्वारा व्यक्ति के क्रियाकलापों का निर्धारण होता है। चेतन और अचेतन मन के विषय में पर्याप्त विरोध है। दमित इच्छाएं अचेतन मन में पड़ी रहती हैं और माध्यम पाकर बाहर आने के लिए तब तक संघर्ष करती हैं जब तक वे बाहर ना आ जाए या अभिव्यक्त ना हो जाएं। फ्रायड व्यक्ति की मुख्य परिचालिका शक्ति के रूप में ‘लिबिडो’ या काम-वृत्ति को स्वीकारता है। उनके अनुसार वे लिबिडो या काम भावना से व्यक्ति के अधिकांश क्रियाकलापों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

फ्रायड के साथ ही अल्फ्रेड एडलर और कार्ल युंग के नाम भी मनोविश्लेषणवादियों के रूप में प्रसिद्ध है। एडलर ने फ्रायड के लिबिडो के

स्थान पर 'हीनता-भाव' को स्थान दिया है। एडलर के विचारों को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ रामचंद्र तिवारी का मत है- "प्राय: प्रत्येक मनुष्य में किसी प्रकार की आंगिक, क्रियात्मक या मानसिक कमी पाई जाती है। जिसको वह अनुभव करता है और उसमें हीनता-ग्रंथि का निर्माण होता है।"[८१] व्यक्ति समाज में इस हीन-भावना से मुक्त होना चाहता इसलिए वह अपने श्रेष्ठ कार्यों द्वारा अपनी योग्यता सिद्ध करता है। एडलर का यह मत 'क्षतिपूर्ति' का सिद्धान्त कहलाता है। कार्ल गुस्ताव युंग 'वैयक्तिक' और 'सामाजिक अचेतन' को स्वीकार करता है। सामाजिक अचेतन को महत्तव देता है और वैयक्तिक अचेतन उपेक्षित हो जाता है। यही व्यक्ति की पीड़ा और दुख का कारण होता है।

मनोविश्लेषणवादियों के इन मतों और विचारों से व्यक्ति के मन और उसके व्यापारों के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है बल्कि उसके अनेकों रहस्यों का उद्घाटन भी होता है। इसके अतिरिक्त कला और साहित्य के क्षेत्र में नए विचार और दृष्टि का विकास हुआ।

अज्ञेय पर फ्रायड के मनोविश्लेषण का प्रभाव १९४३ में प्रकाशित 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रत्यक्ष हुआ; जिसके वक्तव्य में उन्होंने कहा- "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है। उसके जीवन का एक पक्ष है उसकी सामाजिक रूढ़ि की लंबी परंपरा जो परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ विकसित नहीं हुई; और दूसरा पक्ष है स्थिति-परिवर्तन की असाधारण तीव्र गति जिसके साथ रूढ़ि का विकास असंभव है। इस विपर्यास का परिणाम यह है कि आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे परिकल्पनाएं सब दमित और कुंठित हैं।"[८२] अज्ञेय मानते हैं कि आधुनिक युग में व्यक्ति अपने अतीत और वर्तमान के साथ सामंजस्य नहीं बैठा पा रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि उसकी भावनाएं और संवेदनाएं दमित हुईं हैं। आज के इस वातावरण में व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ है। वह स्वयं को सामान्य जीवन से अलग पाता है। फलस्वरूप उसकी इच्छाएं दमित और कुंठित होकर मनोविकार का रूप ले लेती हैं। अज्ञेय को मनोविकारों का बोध है जो उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि को दर्शाता है-

"यह केवल एक मनोविकार है।

हमारी बुद्धि हमारी विश्लेषण शक्ति, जो हमारी सभ्यता और संस्कृति का फल है,

एक दूसरे की त्रुटियों को जान गई है। मनसा हम विमुख हो गए हैं,
और विश्रांति से भरे एक क्षीण औत्सुक्य से एक दूसरे को देख रहे हैं।"[८३]

तारसप्तक की कई कविताओं जैसे -'सावनमेघ', 'जनाह्वन', 'वर्ग भावना', 'शिशिर की राका निशा' आदि में फ्रायडीय दृष्टिकोण परिलक्षित है। इन कविताओं में काम संवेदनाएं प्रकट हुई हैं। आधुनिक मनोविज्ञान यौन भावनाओं और संवेदनाओं को प्राकृतिक मानता है। यह सहज-प्रवृत्ति है जो मानव यौन जीवन के लिए आवश्यक भी है। सामाजिक रूढ़ियां और मान्यताएं इसका नियमन करती हैं और इस पर अंकुश लगाती हैं। समाज यौन-क्रियाओं की उन्मुक्तता का विरोध करता है। इससे व्यक्ति की प्रणय क्रियाएं बाधित होती हैं और वह उसे स्वतंत्र रूप में व्यक्त नहीं कर पाता। वह इसे अनैतिक समझकर वर्जनाओं से जकड़ जाता है। अज्ञेय के विचार आधुनिक चेतना से दृष्टि ग्रहण करते हैं। उन्होंने इसे मुक्त और स्वतंत्र रूप में अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है। यौन-अभिलाषा और उसकी अभिव्यक्ति की सहजता अज्ञेय के काव्य की विशेषता है। दृष्टांत के रूप में 'सावनमेघ'' की इन पंक्तियों में काम-भावना कितनी बेलागी से प्रकट हुई है-

"घिर गया नभ, उमड़ आए मेघ काले,

भूमि के कंपित उरोजों पर झुका सा

विशद, श्वासाहत, चिरातुर

छा गया इन्द्र का नील वक्ष-

वज्र सा, यदि तड़ित से झुलसा हुआ-सा।

आह मेरा श्वास है उतप्त-

धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार-

प्यार है अभिशप्त-

तुम कहां हो नारि?"[८४]

कवि की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रेम, सेक्स और प्रणय आदि क्रियाएं नैसर्गिक हैं। इन्हें रोका नहीं जाना चाहिए। ऐसा नहीं है कि अज्ञेय से पूर्व हिन्दी साहित्य में काम, प्रणय, प्रेम आदि की अभिव्यक्ति नहीं हुई। इस संदर्भ में भोलाभाई पटेल का मंतव्य है कि- "यह नहीं कि संभोगश्रृंगारवशबलित रचनाओं का हिन्दी कविता में (विशेषकर रीतिकालीन) अभाव है, लेकिन अज्ञेय की इन रचनाओं में जो संभोग चेतना है वह हमारी श्रृंगार परंपरा में न होकर फ्रायड के मनोविज्ञान पर आधारित है।"[८५]

अज्ञेय अपनी रचनाओं में लगातार प्रेम के स्वाभाविक स्वरूप को अभिव्यक्त करते रहे हैं। इनकी अभिव्यक्ति के लिए वे प्रतीकों और आद्य बिंबों का प्रयोग करते हैं जो फ्रायडीय विचार से प्रेरित है। फ्रायड मानता है कि दमित इच्छाएं अपनी अभिव्यक्ति के लिए संघर्ष करती रहती हैं और प्रतीक, साहित्य, स्वप्न, कला आदि के रूप में अपना का मार्ग ढूंढ़ लेती हैं। अज्ञेय के मन में भी एक संघर्ष दिखता है। उसके अवचेतन में कुछ है जो बाहर आना चाहता है-

"कितनी शांति ! कितनी शांति !

समाहित क्यों नहीं होती यहां भी मेरे हृदय की क्रांति?

क्यों नहीं अंतर-गुहा का अश्रृंखल दुर्बाध्य वासी

अथिर यायावर, अचिर में चिर-प्रवासी

नहीं रुकता, चाहकर- स्वीकार कर- विश्रांति?

मान कर भी सभी ईप्सा, सभी कांक्षा, जगत की उपलब्धियां

सब हैं लुभानी भ्रांति!

तुम्हें मैंने आह! संख्यातीत रूपों में किया है याद-

सदा प्राणों में कहीं सुनता रहा हूं तुम्हारा संवाद-

बिना पूछे, सिद्धि कब? इस इष्ट से होगा कहां साक्षात ?

कौन-सी प्रात, जिसमें खिल उठेगी क्लिन्न, सूनी शिशिर- भीगी रात?

चला हूं मैं, मुझे संबल रहा केवल बोध- पग पग आ रहा हूं पास;

रहा आतप सा यही विश्वास"[८६]

इन पंक्तियों में कवि के सर्जक मन की आकुलता स्पष्ट दिखाई दे रही है। अज्ञेय मनोविज्ञान की अवधारणा के धरातल से 'अंतर-गुहा', 'दुर्बाध्य वासी' आदि आद्य बिंबों के साथ अपने मन को टोहते हैं। उनका मन अपने अंतर के रहस्यों का उद्घाटन करने के लिए व्याकुल है। उनके अंतर की चेतना को विश्रांति नहीं मिल पा रही है जबकि वह अपने मन के संवादों को सुनता है। कवि ने यहां मनोवैज्ञानिक शब्दों के प्रयोग से अपने मन के द्वंद को व्यक्त किया है। इस संदर्भ में डॉ॰ ज्वाला प्रसाद खेतान का कथन है- "कितनी शांति, कितनी शांति' कविता में यही 'वह कुछ' है जो अवचेतन में अवस्थित है। ऐसा लगता है, जैसे वह कोई आद्य बिम्ब है, जो रचना की प्रेरणा भी देता है किन्तु चेतन जगत में नहीं आ पाता। कवि उसे बाहर आने देने को चेष्टारत है।"[८७]

अज्ञेय की अंतर-चेतना सर्जक की है। सर्जन के लिए अन्तर्मन में त्रास है जो बंधन से निकलने के लिए आतुर है। परंतु कवि के मन में एक उलझन है जो उसे उदद्वेलित कर रहा है। उसे लगता है कि चेतन स्तर पर उसे जो दिखाई दे रहा है, वह पाना उसका उद्देश्य नहीं है। वह तो अपने अवचेतन में छिपे रहस्य को जानना चाहता है। अवचेतन भी इस छिपे रहस्य की अभिव्यक्ति चाहता है। कवि के मन की यह पीड़ा तब तक दूर नहीं होती जब तक कि वह उस सत्य की प्राप्ति नहीं कर लेता जो उसे पीड़ित कर रही है। अज्ञेय की कविता की इन पंक्तियों में रचना-प्रक्रिया की यह संवेदना प्रकट हुई है-

"मुझे नदी से, पथ से

या कि सेतु से,

अपनी गति से, यति से, या कि स्वयं अपने से,

अपनी छाया,

छाया से अपनी संगति से

कोई नहीं लगाव- दुराव। क्योंकि ये कोई

लक्ष्य नहीं मेरी यात्रा के।

चौंक गया हूं मैं क्षण-भर को

क्योंकि अभी इस क्षण मैंने

कुछ देख लिया है

अभी अभी जो

उजली मछली

भेद गई है

सेतु पर खड़े मेरी छाया-

(चली गई है कहां!)

वही तो -

वही, वही तो

लक्ष्य रही अवचेतन, अनपहचाना

मेरी इस यात्रा का!"[८८]

इस कविता में फ्रायड की यह मान्यता पुष्ट हुई है कि अवचेतन में पड़े भावों की कसमसाहट और संघर्ष से रचना अथवा कला की उत्पत्ति होती है। यहां रचना-प्रक्रिया और रचनाकार की स्थिति पर प्रकाश पड़ता हैं। रचनाकार अज्ञात रूप से रचने के लिए विवश है। अज्ञेय ने इस कविता की रचना तब की जब वे कलकत्ता (कोलकाता) के एक सेमिनार में बैठे हैं (सदानीरा-२ में स्थान वर्णित है)। ध्यान देने की बात यह है कि सेमिनार अर्थात कुछ लोगों के बीच में भी कवि की अवचेतना का द्वंद नहीं रुकता है और वह तभी शांत होता है जब उसकी

अभिव्यक्ति हो जाती है। रचना-शक्ति रचनाकार के अंतर में ही होती है जिसका उसे भान नहीं होता। ज्वाला प्रसाद खेतान का मत है- "रचनात्मकता व्यक्ति-चेतना में निवास करती हुई उसी प्रकार विकसित होती है जैसे कोई वृक्ष धरती से अपना आहार प्राप्त करता हुआ विकसित, पल्लवित, पुष्पित होता है। यह ठीक ही होगा यदि हम रचनात्मकता को उस पौधे की भांति मान लें जो प्रकृति व्यक्ति के अनजाने उसकी चेतना में रोप देती है। जिसके स्वभाव संभावना तथा यात्रा के लक्ष्य का कलाकार को कोई ज्ञान नहीं होता बल्कि अधिक उपयुक्त तो यह कहना होगा कि उसके अस्तित्व का ही व्यक्ति को ज्ञान नहीं होता।"[८९] इस कथन से स्पष्ट है कि रचनात्मकता की शक्ति कवि के मन में निहित होती है। परंतु जैसे एक पेड़ को विकसित, पल्लवित और पुष्पित होने के लिए प्रकाश, मिट्टी, जल खनिज आदि की अवश्यकता होती है, ठीक वैसे ही रचना के लिए विचारों, भावों, अनुभूतियों आदि का होना आवश्यक है। व्यक्ति को ये अनुभूतियां अपने जीवन से प्राप्त होती हैं जिनका उसके अन्तर्मन पर नितांत गहरा प्रभाव होता है। इन्हीं अनुभवों से ही कवि को संवेदनाएं प्राप्त होती हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक कलाकार की ये अनुभूतियां उसकी कला के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं जो सर्जक के व्यक्तित्व को प्रकट कर देतीं हैं। कवि की जीवन परस्थितियों और उससे ग्रहीत अनुभवों का कवि से और उसकी रचना या कला से घनिष्ट संबंध है। हम देखते हैं कि अज्ञेय की कविताओं में जीवन के सन्नाटे और मौन की अभिव्यक्ति विशेष रूप से दिखाई देती है। वे स्वयं को 'सन्नाटे का छंद हूं', मानकर चलते हैं। उनकी यह उक्ति अनायास ही नहीं है। उन्होंने एकांत, सन्नाटे और मौन के साथ ही अपनी लंबी आयु व्यतीत की है, जिसकी सघनतम अनुभूतियां उनकी अवचेतना में कहीं गहरे में उतर गई है। जो उनके काव्य का हिस्सा रही हैं। तभी तो इतनी सहजता से वे इसे स्वीकारते हैं-

"यों मैं

अपने रहस्य के साथ

रह गया

सन्नाटे से घिरा

अकेला

अप्रस्तुत

अपनी ही जिज्ञासा के सम्मुख निरस्त्र,

निष्कवच,

वध्य"[९०]

मनोविज्ञान ने साहित्य को आधुनिक दृष्टि दी है। मनोविज्ञान व्यक्ति चेतना के अध्ययन का विज्ञान है जो साहित्य की रचना और रचना-प्रक्रिया को समझने में उपयोगी है। साहित्य या कला का मानव-मन से प्रगाढ़ संबंध है। आधुनिक कविता को व्यक्ति के मन और उसकी चेतना की इन गहराइयों को समझने में मनोविश्लेषणात्मक पद्धति से एक नई दृष्टि मिली। इस संदर्भ में अज्ञेय का मत हैं- "आधुनिक कविता पर मनोविज्ञान की गहरी छाप है। क्यों? क्योंकि व्यक्ति और उस की परिस्थिति में इतना कम सामंजस्य, इतना तीखा विरोध, कभी नहीं हुआ; और उस विरोध के दबाव की कवि के मन पर गहरी छाप है। इतनी गहरी, कि वह उसे सीधे-सीधे व्यक्त भी नहीं कर पाता है, केवल ध्वनित करता है, केवल एक संकेत देता है जिस से हम आगे बढ़कर उसे देख सके।"[९१]

अज्ञेय के काव्य पर **अतियथार्थवाद** का प्रभाव भी दृष्टिगत है। फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी स्थापनाओं के प्रभाव से, विशेष रूप से उसके स्वप्नविश्लेषण से प्रभावित अतियथार्थवाद आंदोलन ने आधुनिक कविता को प्रभावित किया। का उदभव बीसवीं शताब्दी में फ्रांस में हुआ। आंद्रे बेंतां को इसका जन्मदाता माना जाता है। इनके द्वारा सन् १९२४ में घोषणापत्र के प्रकाशन के साथ ही अतियथार्थवाद को मान्यता मिली। प्रथम विश्व युद्ध की त्रासदी से निराश लोगों ने इसका समर्थन किया। हर्बर्ट रीड इसके प्रमुख विचारक और समर्थक माने जाते हैं। इसकी अवधारणा स्पष्ट करते हुए डॉ॰ भगीरथ मिश्र का मत है- "अतियथार्थवाद

एक प्रकार की ऐसी स्वत:चालित क्रिया का परिचायक है जिस पर सामाजिक, बौद्धिक अथवा नैतिक किसी प्रकार के अंकुश नहीं होते। वास्तव में अतियथार्थवाद की मूल धारणा फ्रायड के अचेतन मन की अवधारणा पर आधारित है। अचेतन मन में हमारी इच्छाएं और वासनाएं अपने मूल रूप में विद्‌यमान रहती हैं। उसकी क्रियाएं भी उन्मुक्त और स्वचालित होती हैं। अतियथार्थवाद साहित्य का मूलाधार, यही अचेतन मन है।"[९२]

अतियथार्थवादिता के समर्थक सामाजिक रूढ़ियों, संस्कृतियों, धार्मिक और नैतिक मूल्यों को नहीं स्वीकारते। ये काव्य को सामाजिकता के बंधन से मुक्त मानते हैं। अतियथार्थवाद काव्य में काम-प्रवृत्ति की नैसर्गिकता और खुलेपन को बेबाकी से प्रस्तुत किया गया है। यह अपने लेखन की सामाग्री अवचेतन और स्वप्न से प्राप्त करता है। असम्बद्ध बिंबों का प्रयोग इसके लेखन प्रक्रिया की विशिष्टता है। अज्ञेय की कविताओं में विशेष बिंब योजना इसका परिचायक है। अज्ञेय की कविता 'चार का गजर' में इसी प्रकार का बिंब विधान दिखाई देता है -

"नीचे कहीं, संकुल के बीच से
आया एक स्वर, तीखा व्यंग्य-युक्त, मुझे ललकारता-
" तेरे पास भी तो प्रतिकृति है
छायारूप तेरे निज मोह की यवनिका!"
मानो मेरा रोम रोम पुलका प्रहर्ष से,
मैंने एकाएक चीन्ह लिया उस फ़लक को बेधती-सी
छायाकृति बीच जड़ी अपलक आंखों को-
तेरी थीं वे आंखें, आर्द्र, दीप्तियुक्त, मानो किसी दूरतम
तारे की चमक हो!
और फिर गूंज गया मेरे प्राण गह्वर के सूने में
वह प्रश्न- तेरे पास भी तो बस चित्र है-

प्रतिकृति, छायामय' "[९३]

कविता की इन पंक्तियों में विशेष प्रकार की बिंब योजना का प्रयोग हुआ है जो अवचेतन मन की गहराइयों में विचरण करती है। इस संदर्भ में भोला भाई पटेल का कथन है- "अज्ञेय की 'चार का गजर' कविता अपनी स्वत: चालित साहचर्यजड़ित बिंबयोजना के कारण अतियथार्थवादी आदर्श के निकट आती है।"[९४]

अतियथार्थवादी पूर्ण स्वच्छंद और मांसल प्रेम का हिमायती है। अज्ञेय की कविताओं में भी यत्र-तत्र मांसल प्रेम की अभिव्यक्ति अतियथार्थवादिता का ही अनुकरण प्रतीत होता है -

"स्नेह से आलिप्त

बीज के भवितव्य से उत्फुल

बद्ध

वासना के पंक-सी फैली हुई थी

धारयित्री सत्य-सी निर्लज्ज, नंगी

औ' समर्पित!"[९५]

वस्तुत: अतियथार्थवादी अचेतन में छिपे रहस्यों के यथार्थ दर्शन में विश्वास करता है। इसकी प्रवृत्ति विद्रोहात्मक रही है। इसने पारम्परिक नैतिक नियमों को तोड़कर कला और साहित्य में मुक्त चेतना और सहजता के नए मार्ग खोले। इसकी राह पर चलकर अज्ञेय ने भी अनेक पारम्परिक नियमों और रूढ़ियों का विरोध किया और कथ्य, विषय-वस्तु और शिल्प के स्तर पर यथार्थ की दृष्टि का निर्माण किया।

अज्ञेय के काव्य में **प्रतीकवाद** से भी प्रभावित है। प्रतीकवाद का प्रारंभ उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में फ्रांस में माना जाता है। बाद्लेयर इस आंदोलन के प्रमुख प्रणेता माने जाते हैं। मेलार्मे, आर्थर रिम्बो, विलियम बटलर, येट्स आदि विचारकों ने इस आंदोलन को गति दी। प्रतीकों के माध्यम से संवेदनाओं को व्यक्त करना इसकी विशेषता है। डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी के अनुसार -" 'प्रतीक' का अर्थ होता है किसी

एक वस्तु के प्रतिनिधि या व्यंजक रूप में दूसरी वस्तु को प्रस्तुत करना। उदाहरण के लिए गणित के क्षेत्र में हम जोड़ के लिए धन (+) और ऋण (-) चिन्हों का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार शांति की भावना को व्यंजित करने के लिए कबूतर उड़ाते हैं। पूर्णता को व्यंजित करने के लिए गोल निशान बना देते हैं। प्रतीक अमूर्त वस्तुओं को मूर्त और मूर्त वस्तुओं को अमूर्त रूप में प्रस्तुत करने के लिए भी प्रयुक्त होते हैं।"[९६]

प्रतीकवादी व्यक्ति के आंतरिक अनुभवों को महत्त्व देते हैं। ये अलौकिक सौंदर्य को कला और कलाकार की चेतना का विषय मानते हैं। प्रतीकवादियों के अनुसार संसार का सौंदर्य अलौकिक सौंदर्य का ही प्रतिरूप है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए लिए प्रतीकों को माध्यम बनाता है। इस संबंध में दुर्गा प्रसाद गुप्त ने राजनारायण विसारिया के मत का उल्लेख किया है -"प्रत्येक कवि को अपने विशिष्ट अनुभवों की अभिव्यंजना के लिए नए मार्गों का अनुसंधान, नई शैली-शिल्प की अवतारणा, नए बिंबों की योजना और नए प्रतीकों का विधान करना पड़ता है। परंतु अनुभूत विषय फिर भी इतने अग्राह्य, अनुपम और अकथनीय होते हैं कि उनका संकेत मात्र किया जा सकता है, स्पष्टतया कथन नहीं किया जा सकता; केवल वे व्यंजित हो सकते हैं अभिव्यक्त नहीं। प्रतीकवादी कवियों ने भाषा की इस असमर्थता को साधन और उसे शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए एक दूसरा मार्ग खोज निकाला। जिस प्रकार लय, गति और ताल की सूक्ष्म लहरों में संगीत तैरता है उसी प्रकार उन्होंने ध्वनि-संकेत, तथा बिंब-संकेत के सहारे अपनी अभिव्यक्ति को अनुभूत संवेदना के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रोमांचों (सेन्सेशन) का वाहक बना दिया।"[९७]

अज्ञेय की कविताओं में विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। वास्तव में अतियथार्थवाद, प्रतीकवाद, बिंबवाद आदि सभी वादों की उपयोगिता आधुनिक कविता के संदर्भ में है। आधुनिक कविता में प्रतीक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। अज्ञेय प्रतीकों का प्रयोग कविता के लिए आवश्यक और उपयोगी मानते हैं। इस संदर्भ में अज्ञेय का कथन है- "कोई भी स्वस्थ काव्य साहित्य प्रतीकों की, नए प्रतीकों की, सृष्टि करता है, और जब ऐसा करना बंद कर देता है तब जड़ हो जाता है- या जब जड़ हो

जाता है तब वैसा करना बंद करके पुराने प्रतीकों पर ही निर्भर करने लगता है।"[९८] ऐसा नहीं है कि अज्ञेय से पूर्व प्रतीकों का प्रयोग नहीं हुआ। अज्ञेय का महत्त्व प्रतीकों के प्रयोग से कविता को नया संदर्भ देने में है। वे सागर, मछली, चिड़िया, फूल, सांप, दीप, हारिल, आकाश, नदी, नाव पेड़, तारा आदि अनेक प्रतीकों के माध्यम से कविता को नया संदर्भ देते हैं। 'उगा तारा' की कविता में 'तारा' अज्ञेय की आस्था का प्रतीक है-

"उगा तारा

मैंने देखा नहीं कि कब

बुझ गया

लाल आलोक सूर्य का। पर जब देखा

देखा यही:

कि पेड़ों-चट्टानों में उलझी

हारी हुई

लालिमा में द्योतित है शुक्र

अकेला तारा।"[९९]

हिन्दी साहित्य प्रतीकवाद के साथ बिंबवादी प्रभावों से भी युक्त रहा है। बिंबवादी आंदोलन इंग्लैंड और अमरीका में बीसवीं शती के शुरुआत में आरंभ हुआ। इसके प्रमुख पुरस्कर्ता टी॰ ई॰ हयूम माने जाते हैं और इसके समर्थकों में एज़रा पाउंड, रिचर्ड एल्डिंगटन, ऐमी लॉवेल आदि कुछ प्रमुख विचारक हैं। बिंब का संबंध हमारी इंद्रियों से है। इंद्रियों के द्वारा जो कुछ अनुभूत होता है, उससे कवि कल्पना के आधार पर बिंब का विधान करता है। बिंब की महत्ता के विषय में ललित शुक्ल ने एज़रा पाउंड के कथन को उद्धृत किया है- "अपने समग्र जीवन में मोटी पोथियां लिखने की अपेक्षा एक इमेज की रचना करना बेहतर है।"[१००]

हिंदी की नई तथा आधुनिक कविता और कवियों पर **बिंबवाद** का विशेष प्रभाव पड़ा। बिंबवाद से प्रेरित होकर अज्ञेय ने अपने काव्य में

नए बिंबों का प्रयोग किया है। बिंब निर्माण की प्रक्रिया में उनके विचार और अनुभूति दोनों का संश्लेषण मिलता है। इसके प्रयोग से उनकी कविता में यथार्थ जीवन के गहरे सत्य का बोध होता है। अज्ञेय अपने अनुभूत सत्यों को उद्घाटित करने के लिए अनेक बिंबों का निर्माण करते हैं। दृष्टांत के रूप में उन्होंने 'आंगन के पार द्वार' में बिंबों के माध्यम से रहस्यात्मक अनुभूति को साकार करने का प्रयास किया है -

"आंगन के पार

द्वार खुले

द्वार के पार आंगन।

भवन के ओर-छोर

सभी मिले-

उन्हीं में कहीं खो गया भवन।"[१०१]

कविता की इन पंक्तियों में कवि द्वार, आंगन, भवन आदि बिंबों से जीवन और जगत के मर्म को पहचानता है। बिंब प्रयोग के ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो अज्ञेय की बिंब निर्माण की कुशलता को दर्शाते हैं। हम यह कह सकते हैं कि बिंबवाद की प्रेरणा से काव्य में उनका विचारपक्ष पुष्ट हुआ और कविता में नई दृष्टि विकसित हुई। इतना अवश्य है कि उनकी दृष्टि बिंबवाद का अनुकरण नहीं है।

बिंबवाद के प्रेरणा स्रोतों में जापानी हाइकू का विशेष स्थान है। जापानी हाइकू बिम्बों के श्रेष्ठ उदारण है। बिंबवादी एज़रा पाउंड ने हाइकू कविताओं की रचना और अनुवाद दोनों किया। इस संदर्भ में डॉ॰ भगवान तिवारी का कथन दृष्टव्य है- "आंग्ल कवियों में सर्वप्रथम बिंबवादी जापानी कवि की ओर उन्मुख हुए और हाइकू के आधार पर उन्होंने काव्य रचना भी की। एज़रा पाउंड की कविता 'एल्बा' कविता शुद्ध जापानी हाइकू आधार पर लिखी गई है।"[१०२] अज्ञेय के काव्य पर जापानी कविता और संस्कृति का प्रभाव भी रहा। जापान की यात्राओं ने उन्हें वहां के साहित्य और जेन साधना पद्धति से परिचित कराया। अज्ञेय भी स्वीकारते हैं कि "जेन के इतिहास और जापानी काव्य पर जेन विचार

पद्धति के प्रभाव का इतिहास कहीं पृष्ठभूमि में ही रहा। मुझे उसका लाभ हुआ तो यही कि काव्य संबंधी बहुत से पूर्वग्रह मुझ से झरते रहे, उनकी धुंध से अवरुद्ध दृष्टि मेरे अनजाने ही स्पष्ट होती रही।"[१०३]

अज्ञेय ने बाशो के हाइकुओं का हिन्दी अनुवाद किया है। बाशो के अनुसार हाइकू की परिभाषा है- "हाइकू दैनिक जीवन में अनुभूत सत्य की अभिव्यक्ति है पर वह सत्य विराट सत्य का अंग होना चाहिए।"[१०४] जीवन के अनुभूत सत्यों को अज्ञेय की दो रचनाओं 'अरी ओ करुणा प्रभामय', और 'आंगन के पार द्वार' में जापानी हाइकू के अनुवाद और छायानुवाद के रूप में देखा जा सकता है। 'पूनो का सांझ', 'सोन मछली', 'मैं देख रहा हूं', 'प्यार', 'धूप', 'जन्मदिवस' आदि अनेक कविताएं हाइकू के अनुवाद में निकट कविताएं हैं। लेकिन उन्होंने अनुवाद में अपनी मौलिकता को नहीं त्यागा। इस संबंध में रीतारानी पालीवाल ने धर्मयुग में प्रकाशित प्रो॰ तोषियो तनाका के लेख, 'हाइकू और अज्ञेय' का उद्धरण दिया है- "अज्ञेय में कवित्व इतना था कि जापानी साहित्य के मानस जगत में प्रवेश होने में समर्थ हुआ..... अज्ञेय ने हाइकू के मानस जगत में अपना हृदय पटल देखा होगा। इसीलिए अज्ञेय को हाइकू के अनुवाद कार्य में जितनी सफलता मिली, उतनी किसी जापानी भाषा विद विदेशी लेखक को नहीं मिली थी, उदाहरणार्थ-

शीरा ऊओ या

सानागारा, ऊगो

मीजू नो तामाशोई -(राइज़ान, 1653-1716)

उजली मछली

मानो पानी का अतरंग ही

कांप गया हो। (-अज्ञेय)

दि व्हाइट बेट

एज़ दो दि स्पिरिट ऑफ दि वाटर

वर मूविंग (-ब्लिथ)

यह वसंत की कविता है। हवा तेज नहीं धूप कड़ी नहीं, वातावरण शांत। शायद गांव का दृश्य होगा। छोटी नदी बहती है। वहां कवि ने क्षणभर देखा है। इसका इसका अनुवाद ब्लिथ ने यथा शब्द किया.....अज्ञेय के अनुवाद को पढ़ने से पता चलता है कि 'उजला कंपना शब्द का प्रयोग अपना है यही अज्ञेय की विशिष्टता है।"[१०५] इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि जापानी प्रभावों से अज्ञेय की काव्य दृष्टि में नई स्फूर्ति और ताजगी आई और उनकी वैचारिक दृष्टि भी पुष्ट हुई।

अज्ञेय पाश्चात्य अस्तित्ववादी अवधारणा से भी प्रभावित हैं। यह पाश्चात्य दर्शन की आधुनिक विचारधारा है जो व्यक्ति के अस्तित्व के चिंतन पर आधारित है। अस्तित्ववाद के समर्थक आस्तिक और नास्तिक दो वर्गों के हैं परंतु दोनों का केंद्रीय विषय व्यक्ति ही है। इसके प्रवर्तक और प्रमुख विचारक के रूप में 'सोरेन कीर्केगार्द' प्रसिद्ध हैं। मार्टिन हेडेगर, कार्ल यास्पर्स, ज्यां पाल सार्त्र, कामू, मार्शल गैब्रियल, नीत्शे आदि कुछ प्रमुख विचारकों ने इस चिंतन को पुष्ट किया।

जीवन के प्रति वैयक्तिक दृष्टि की प्रधानता अस्तित्ववाद की विशेषता है। इस दर्शन में व्यक्ति की इयत्ता ही सबसे महत्वपूर्ण है। अस्तित्ववादी विचारकों का मत है कि अस्तित्व सार-तत्त्व से अधिक प्रधान है। नवीन उत्तरदाई वैयक्तिकता के संबंध में श्याम सुंदर मिश्र ने कीर्केगार्द के विचार प्रकट किए हैं- "नैतिक अथवा तार्किक तथ्यात्मकता ही एकमेव तथ्य है, जो अनुभव किए जाते समय केवल संभावना नहीं है, और जिसे केवल चिंतन अथवा विचार के द्वारा जाना जा सकता है। इस स्तर पर व्यक्ति ही तथ्यात्मकता का स्वामी है। व्यक्ति द्वारा तथ्य का ज्ञान करने के पूर्व तथ्य उसमें अन्तर्भूत रहता है और वह एक संभावना के रूप में है। नीतिशास्त्र व्यक्ति पर ही ज़ोर देता है अत: नैतिक दृष्टि से यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह सम्पूर्ण मानव बनने का यत्न करे। यह एक नैतिक पूर्व मान्यता है कि प्रत्येक मनुष्य में इस तरह की स्थितियां हैं, जिससे वह मानव इकाई बन सके।"[१०६]

अस्तित्ववाद का दृढ़ विश्वास है कि व्यक्ति अपने जीवन के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदाई है। वह अपने स्वरूप, मूल्य, जीवन पद्धति आदि का निर्माता स्वयं है। अपने व्यक्तित्व को विकसित करने और गढ़ने के लिए वह स्वतंत्र है। उसकी यह स्वतन्त्रता सबके प्रति भी उत्तरदाई है। सार्त्र का मत है कि- "मनुष्य स्वयं अपना चुनाव करता है तो हमारा तात्पर्य यह तो है ही कि हममें से प्रत्येक को स्वयं अपने लिए चुनाव करना चाहिए। किन्तु साथ ही साथ इसका तात्पर्य यह भी है कि जो चुनाव हमारे लिए है वह सबके लिए भी है।"[१०७] वस्तुत: व्यक्ति चुनाव और वरण के लिए स्वतन्त्र है। सार्त्र व्यक्ति की स्वतन्त्रता को महत्त्व देता है, परंतु यह स्वतन्त्रता पारंपरिक, सामाजिक आदर्शों के प्रति विद्रोह का कारण भी है। वह यह भी मानता है कि व्यक्ति की यह स्वतन्त्रता उसे अच्छे कार्यों के चुनाव के लिए विवश करती है। इस विवशता से उसमें निराशा उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त अस्तित्ववाद में क्षण के महत्त्व को भी स्वीकारा गया है।

अज्ञेय की कविताओं में भी व्यक्ति-स्वातंत्र्य, जीवन की सार्थकता और क्षण की महत्ता आदि अस्तिववादी विशेषताएं परिलक्षित हैं। व्यक्ति-स्वातंत्र्य के अज्ञेय हिमायती हैं। वे भी अस्तित्ववादियों की मान्यता 'व्यक्ति चयन के लिए स्वतंत्र है' से सहमत हैं। वे कहते हैं- "वह पहला स्वाधीन प्राणी है, वह चुन सकता है कि मैं बनूं या कि कैसे बनूं। मूलत: इसी को स्वाधीनता मानता हूं।"[१०८] उनकी कविता 'यह दीप अकेला', 'नदी के द्वीप' आदि में व्यक्ति की स्वाधीनता के भाव की अभिव्यक्ति हुई है। 'यह दीप अकेला' कविता में कवि ने स्वीकारा है कि व्यक्ति समाज के प्रति उदासीन नहीं है परंतु उसकी अपनी निजी इयत्ता भी महत्वपूर्ण है। इसलिए वह कहता है-

"यह अद्वितीय: यह मेरा: यह मैं स्वयं विसर्जित:

यह दीप अकेला, स्नेह भरा

है गर्व भरा मदमाता पर

इसको भी पंक्ति को दे दो"[१०९]

अस्तित्ववादी दर्शन में घुटन, संत्रास, पीड़ा, संशय आदि की कठिन परिस्थितियां व्यक्त हुईं हैं। आज के आधुनिक वातावरण में व्यक्ति विषम परिस्थितियों में जीने के लिए अभिशप्त है। वे कहते हैं -

"किन्तु यहां आस-पास

घुमड़न है त्रास है

मशीनों की गड़गड़ाहट में

भोली (कितनी भोली) आत्माओं की

अनुरणन की मोहमई प्यास है।"[११०]

अस्तित्ववादी दर्शन में व्यक्ति के अस्तित्व की खोज है। अज्ञेय भी व्यक्तितत्व को तलाशते हैं। इतना ही नहीं सब समाप्त होने पर उसकी सुरक्षा की चिंता भी करते हैं-

"बात है:

चुकती रहेगी

एक दिन चुक जाएगी ही बात।

जब चुक चले तब

उस बिन्दु पर

जो मैं बचूं

(मैं बचूंगा ही!)

उसको मैं कहूं -

इस मोह में मैं और कब तक रहूं"[१११]

अस्तित्ववादी क्षण-बोध भी अज्ञेय की कविता में दिखाई देता है। प्रत्येक क्षण की अपनी स्वतंत्र सत्ता है। अज्ञेय के काव्य में क्षण की महत्ता की स्थापना हुई है। वे कहते हैं -

"ओ प्रिय, रहो साथ

भर-भर कर अंजुरी पी लो

बरसी शरद चांदनी

मेरा अंत: स्पंदन तुम भी क्षण-क्षण जी लो!”[११२]

अस्तित्ववादी प्रत्येक क्षण को निर्भय होकर जीने में विश्वास करता है। व्यक्ति क्षण को उसकी समग्रता में इसी निर्भयता से जी पाता है। मृत्यु बोध के साथ क्षण बोध का प्रभाव अस्तित्ववाद की विशेषता है। क्षण की अपनी स्वतंत्र सत्ता और महत्त्व है। अज्ञेय की कविता में अस्तित्ववादी मृत्यु-बोध के साथ इस क्षण-बोध का प्रभाव दिखाई देता है -

“काल की दुर्वह गदा को एक

कौतुक-भरा बाल क्षण तोलता है।”[११३]

अत: अस्तित्ववादी मान्यताओं का प्रभाव अज्ञेय की कविताओं पर देखा जा सकता है। अज्ञेय क्षण के विषय में चिंतन करते हैं- “क्षण के इस आग्रह का एक पक्ष यूरोप के साहित्यिक अस्तित्ववाद में पाया जाता है। मृत्यु के साथ उस के लगाव के मूल में एक बात यह है कि मृत्यु-साक्षात्कार के क्षण में ही जीवन की चरम अथवा तीव्रतम अनुभूति होती है। जीवन का चरम आग्रह उसी क्षण में प्रकट होता है।”[११४]

अत: उपर्युक्त विवेचना के आधार पर हम कह सकते हैं कि अज्ञेय पर अनेक पाश्चात्य विचारों का प्रभाव रहा। पाश्चात्य विचारों एवं विचारकों ने उनकी कविता को नई संवेदना और ताज़ी अनुभूति से संपन्न बनाया। यह कहना उचित होगा कि पाश्चात्य विचार दृष्टि ने उनके विचारों को न केवल निखारा वरन गहराई से प्रभावित भी किया।

ग- वैज्ञानिक विचार-दृष्टि

अज्ञेय की विचार-दृष्टि वैज्ञानिक है। उनके काव्य में वैज्ञानिकता स्पष्ट दिखाई देती है। वैज्ञानिकता को हम विज्ञान के द्वारा समझ सकते है। विज्ञान ने हमें रुकना नहीं सिखाया बल्कि आगे बढ़कर कुछ नया खोजने के लिए वह हमें प्रेरित करता है। इसने हमारे जीवन को

बहुत प्रभावित किया है। विज्ञान ने हमारी सोच-प्रक्रिया में भारी परिवर्तन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। जवाहर लाल नेहरू का कथन है कि "विज्ञान के द्वारा जीवन में विशाल परिवर्तन हुए हैं, यद्यपि उनमें से सभी मानव जाति के लिए कल्याणकर सिद्ध नहीं हुए हैं। किन्तु उन परिवर्तनों में सबसे मुख्य और आशाप्रद परिवर्तन विज्ञान के प्रभाव से मनुष्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास है। यह सत्य है कि आज भी बहुत से लोग मानसिक दृष्टि से उसी पहले अवैज्ञानिक युग में रहते हैं; और वे लोग भी जो बड़े उत्साह के साथ विज्ञान का पक्ष समर्थन करते हैं, अपने विचारों और कामों में अवैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही परिचय दे डालते हैं। वैज्ञानिक लोग भी यद्यपि वे अपने विषय के विशेषज्ञ होते हैं, कभी-कभी उस विषय से बाहर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रयोग करना भूल जाते हैं। फिर भी केवल इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्य जाति को कुछ आशा हो सकती है और उसके द्वारा ही संसार के क्लेशों का अंत हो सकता है।"[११५] वर्तमान युग में लोगों की दृष्टि में इसी वैज्ञानिता के कारण अनेकों बदलाव आया है। धर्म, पाखंड, अंधविश्वास जैसी अनेक आस्थाओं और मूल्यों में परिवर्तन और तार्किकता का विकास इसी वैज्ञानिकता का परिणाम है।

वैज्ञानिक दृष्टि तर्क बौधिकता पर आधारित ज्ञान है। विज्ञान ने मनुष्य के सोचने के ढंग को परिवर्तित किया है। अज्ञेय भी विज्ञान के विद्यार्थी रहे और मानते हैं कि इससे हमारे विचारों में एक बदलाव अवश्य आता है। इस संबंध में उनका कथन है कि -"विद्यार्थी तो मुख्यतया विज्ञान का रहा। थोड़ा साहित्य का भी रहा। साहित्य पढ़ता रहा शुरू से। विज्ञान की विधिवत शिक्षा ली लेकिन यह जानते हुए कि मेरी प्रवृत्ति साहित्य की ओर है। वैसे मेरी धारणा यह है कि हिन्दी के साहित्यकारों में अगर कुछ इस तरह से विचार करें कि कौन विज्ञान पढ़े हैं, कौन नहीं पढ़े, जो विज्ञान पढ़कर साहित्य में आयें हैं, उनके सोचने का ढंग बिलकुल अलग पहचाना जाता है।"[११६] संभवत: यह वह कारण था जिसने उन्हें प्रयोगवादी दृष्टि दी। विज्ञान प्रयोगों से अपने तथ्यों को सिद्ध करता आया है। वह अन्वेषण के आधार पर नए आविष्कार करता है। अज्ञेय ने भी साहित्य में विभिन्न प्रयोग किए। इन प्रयोगों के द्वारा नए अन्वेषण की ओर उन्मुख भी हुए। इस संबंध में डॉ॰ विजय पाल

सिंह का कथन है- "सामान्यत: प्रयोग शब्द का तात्पर्य है- नई वस्तु के अन्वेषण की प्रक्रिया। विज्ञान में नए-नए प्रयोग होते ही रहते हैं और वैज्ञानिक अपने प्रयोगों द्वारा नए तथ्यों का अन्वेषण और नए पढ़ार्थों का निर्माण करते ही रहते हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी भाषा, शिल्प और वस्तु को लेकर अनेक प्रयोग हुए हैं। किन्तु वाद के रूप में प्रयोग शब्द का प्रचलन सन १८४३ में अज्ञेय द्वारा संपादित तारसप्तक से माना जाता है।"[११७] इसी को प्रयोगवाद की संज्ञा दी गई। अज्ञेय की इस प्रयोगवादी विचार दृष्टि को वैज्ञानिक दृष्टि ही कहा जा सकता है। अपनी इस दृष्टि से उन्होंने कविता को कथ्य और शिल्प के आधार पर नए उपमानों से सजाया और उसे आधुनिक बनाया। वे अभी तक के उपमानों मैला मान लेते हैं और कविता को नव्य रूप देने का प्रयत्न किया। वे कहते हैं कि -

"ये उपमान मैले हो गए हैं।

और देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।"[११८]

तारसप्तक के प्रकाशन से आधुनिक हिन्दी कविता में नया मोड़ आया। इसमें अज्ञेय ने कविता में प्रयोग की स्थापना पर बल दिया। इसके वक्तव्य में अज्ञेय ने कहा कि "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं। यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। किन्तु कवि क्रमश: अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्र में प्रयोग हुए हैं; उन से आगे बढ़ कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया या जिन्हें अभेद्य मान लिया गया है।"[११९] यहां यह दृष्टव्य है कि कवि उन विषयों पर प्रयोग करना चाहता है जिस पर अभी तक कोई कार्य नहीं किया गया है। यह अज्ञेय की विचार-दृष्टि की वैज्ञानिकता को ही दर्शाती है। यदि उनकी दृष्टि वैज्ञानिक न होती तो भला वे कविता में प्रयोग के विषय में क्यों सोचते!

प्रयोग की आवश्यकता पुराने विचारों को बदलने के लिए होती है। समय के साथ-साथ पुराने पड़ते विचारों में संशोधन आवश्यक है। इसलिए अज्ञेय की वैज्ञानिक दृष्टि प्रयोग के उपयोग पर ध्यान केन्द्रित

करती है। साहित्य में प्रयोग की आवश्यकता के विषय में रमेश ऋषिकल्प का मत है कि- "जब-जब कवि की दृष्टि का विकास हुआ है, उसने समाज में नए विस्तार या नई गहराई देखी है। तब-तब उसे कविता करने के उपकरणों से जूझना पड़ा है जो समय के साथ-साथ पुराने पड़ गए होते हैं। जहां कवि अपने जीवन-सत्य को संप्रेषित करने की कठिनाई महसूस करता है वहां वह प्रयोग करने की आवश्यकता महसूस करता है।"[१२०] इस कथनानुसार जीवन-सत्यों के सम्प्रेषण के लिए प्रयोग आवश्यक है। कवि इसी प्रयोग के द्‌वारा कविता को बहुजन सम्प्रेषणीय बनाता है। कवि अपने अनुभूत सत्य को लोगों तक पहुंचाना ही अपना कर्तव्य मानता है और अज्ञेय इसे प्रयोग से संभव मानते हैं। वे कहते हैं- जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि में कैसे उसकी संपूर्णता में कैसे पहुंचाया जाए- यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।"[१२१] वास्तव में वैज्ञानिक सत्य की पुष्टि के लिए प्रयोग करता आया है। व्यक्ति की प्रकृति ही सत्य के खोज की होती। वह तब तक विराम नहीं लेता जब तक कि अपने मन में उठे विचारों के उत्तर नहीं पा जाता। उसकी इसी प्रवृत्ति ने उसे विकास का मार्ग दिखाया है। साहित्यकार भी इसी सत्य की पकड़ में प्रयत्नशील रहता है। अज्ञेय का कथन है कि "साहित्यकार हमेशा यही करता है जो नहीं पकड़ा जा सकता है, जो निरंतर उससे छूटा जा रहा है, भागता जा रहा है, उसको पकड़ने का प्रयत्न करता है। सारा साहित्य एक भागते भूत को पकड़ने का यानि जो छूटा जा रहा है, जो दिख रहा है छूटता हुआ, उसको पकड़ने का प्रयत्न होता है।"[१२२]

अज्ञेय विज्ञान के विद्‌यार्थी रहे जिससे उनके विचारों में वैज्ञानिकता स्वयं प्रवेश कर गई। उनके विचारों में तर्क करने की जो पद्धति है उस पर विज्ञान का प्रभाव स्पष्ट है। उदाहरण के लिए हम प्रकृति में घास, पेड़, पक्षी, समुद्र, झरना इत्यादि को प्राय: देखते ही रहते हैं। लोग इसके सौंदर्य को देखते तो हैं पर समझने का प्रयास नहीं करते हैं। हम ओस को साधारण रूप से ही देखते हैं परंतु अज्ञेय की वैज्ञानिक दृष्टि उसका विश्लेषण करती है। वे कहते हैं- "अब ओस की एक बूंद को ही लीजिए आप उसे देखें और सबेरे की धूप में देखें तो कई चीजें देखने को होती हैं। कैसे उसके भी भार से घास की अनी नीचे को झुक जा सकती है;

कितनी नरम है घास लेकिन कितनी जिजीविषु! धूप में ओस की बूंदें कैसी चमक उठती है और धूप-किरणों को रंगों में विकरित कर देती है। छायावादी मुहावरे में कहा जाता है कि 'मरकत-शिला पर हीरक कण' बिखरे हैं। लेकिन मैं छायावादी नहीं हूं और मुझे दूब की हरियाली पर ओस मरकत-शिला पर हीरक कण की अपेक्षा कहीं अधिक सुंदर और प्राणवान दिखती है।"[१२३] तात्पर्य यह है कि अज्ञेय के विचारों में तार्किकता इसी विज्ञानी दृष्टि से संभव हुई है। अज्ञेय स्वयं इस बात को स्वीकारते हैं कि "विज्ञान पढ़ा हो तो तर्क-संगति पर बल जरूर होता है। उसके तर्कों का जो अनुक्रम है, उसमें एक खास तरह का सौष्ठव होता है।"[१२४] अज्ञेय के इस कथन से ज्ञात होता है कि विज्ञान के प्रभाव से विचारों में एक संयोजन दिखाई देता है और दृष्टि औरों से भिन्न बन पाती है जिसे वैज्ञानिक दृष्टि कहा जा सकता है। विज्ञान का ज्ञान होने कारण ही तो वे कहते हैं कि 'मैं ग्रह-नक्षत्र, सूर्य और चंद्र की स्थितियां आदि को पहचानता हूं'-

"आज मैं पहचानता हूं राशियां, नक्षत्र,

ग्रहों की गति, कुग्रहों के कुछ उपद्रव भी,

मेखला आकाश की;

जानता हूं मापना दिन-मान;

समझता हूं अयन-विषुवत, सूर्य के धब्बे, कलाएं चंद्रमा की

गति अखिल इस सौर्य-मंडल के विवर्तन की।"[१२५]

अज्ञेय की वैज्ञानिकता ने उनके विचारों को विभिन्न रंग दिए हैं जो उनकी कविता में दृष्टिगत हैं। यह वैज्ञानिकता मानव और प्रकृति और उनके संबंधों के भाव प्रकट करने वाली कविता में दिखाई देती है। अज्ञेय न केवल प्रकृति के रूप- रंग को देखते हैं बल्कि उसमें अन्वेषण भी करते हैं। प्रकृति के छिपे रहस्यों के कार्य-कारण संबंधों को भी खोजने का प्रयास करते हैं-

"जिस दिन आया था वसंत, उपवन में जागी हंसी अतर्कित,

हम सोच रहे थे ,

ऋतुओं के अनुक्रम में पहली मधु है, शीत, शरद, या वर्षा?

जिस दिन फूटा तारा नभ की छाती मानो हुई कंटकित -

हमें यही चिंता थी

तारों की किरणें किस कारण से कंपती है?

जिस दिन जागा भाव, उलझते बैठे थे हम

जांच रहे थे भावन, चिंतन कर्म प्रेरणा के संबंध परस्पर"[१२६]

कविता की इन पंक्तियों में अज्ञेय के जो विचार प्रकट हुए हैं उसमें वैज्ञानिकता स्पष्ट दिखाई दे रही है। वे तारों के कंपन के कारणों की चिंता कर रहे हैं। इसमें उनकी वैज्ञानिक तर्क और अन्वेषणात्मक प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। अन्वेषण और तर्क वैज्ञानिकता के दो प्रमुख अंग हैं और इसी से हमारे समक्ष अन्वेषण के लिए कई द्वार खुलते हैं। आजके समय में वैज्ञानिकता ने नई व्यवस्था को जन्म दिया है, नए ज्ञान के भंडार खोजे हैं। नवीन साधनों को विस्तार दिया है। लेकिन इस वैज्ञानिक युग में विनाश ने भी अपनी पैठ जमा ली है। कवि के लिए भी इससे अछूता रहना संभव नहीं रहा। तभी वे कहते हैं-

"मानव का रचा हुआ सूरज

मानव को भाप बनाकर सोख गया।

पत्थर पर लिखी हुई यह

जली हुई छाया

मानव की साखी है।"[१२७]

हिरोशिमा कविता की इन पंक्तियों में कवि की वैज्ञानिक मानसिकता दिखाई देती है। हिरोशिमा में हुए परमाणु विस्फोट के घातक परिणामों को कवि ने अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से देखा है। विज्ञान ने जहां मानव के सुख के साधनों को बनाया वहीं वे विनाशकारी भी सिद्ध हुए हैं। विज्ञान

के दुष्प्रभाव के संबंध में विष्णु प्रभाकर का विचार है- "पश्चिम का अंधानुकरण करने के कारण हम वहां पहुंच गए जहां विज्ञान ने जो नए-नए आविष्कार किए थे उनका दुरुपयोग करके जगत के महानाश के साधन उपलब्ध करा दिए। विज्ञान जो हमारी चेतना को कचोटता है, वह ऐश्वर्य विलास और अंततः हमें शक्ति के मद में अंधा करने वाला बन गया है। जो निर्माण का कारण था वह महानाश का कारण हो गया। हम अपने देश की स्वतन्त्रता की लगभग आधी शताब्दी पार करने के बाद वहीं पहुंच गए, जहां अपसंस्कृति के प्रदूषण ने हमें दिग्भ्रमित कर दिया"। अणु जहां निर्माण का साधन बन सकता था, वहां वह महानाश का साधन बन गया।"[१२८]

वैज्ञानिक दृष्टि हृदय से नहीं बुद्धि से विचार करती और देखती है। अज्ञेय की कविताएं भी इसी बौद्धिकता का निर्वाह करती प्रतीत होती हैं। अज्ञेय की दृष्टि प्रयोग पर आधारित दृष्टि है। इसलिए वे अन्वेषण से जीवन के कौतूहल को शांत करने का आवाहन करते हैं-

लो: मुट्ठी भर रेत उठाओ:

ठीक कह रहा हूं, मैं हंसी नहीं;

उसे उंगलियों में से बह जाने दो: बस।

यों।

इस यों में ही सब जिज्ञासाओं के उत्तर।

फिर भी

जिज्ञासा का उत्तर अंत नहीं है

जीवन का कौतूहल है अदम्य : जीवन की आशा

नहीं छोड़ सकती अन्वेषण ;"[१२९]

वास्तव में अज्ञेय को अन्वेषण में हमेशा से रुचि रही। उनका व्यक्तितत्व ही कुछ ऐसा रहा कि कुछ नया करने की जिज्ञासा सदा उनके मन को प्रेरित करती रही। शायद ही किसी कवि ने काव्य के लिए नए

तत्वों को खोजने की बात की हो। वे स्वयं को आधुनिक इसीलिए वे स्वयं को आधुनिक मानकर नए काव्य तत्वों की खोज करते हैं।

यों मैं कवि हूं , आधुनिक हूं, नया हूं:

काव्य तत्व की खोज में कहां नहीं गया हूं?"[१३०]

उनकी इसी खोजी प्रवृति ने कदाचित उन्हें यह वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की। उनकी पैनी दृष्टि संसार में हो रहे परिवर्तनों को भांप लेती है। आज यांत्रिकता ने मानव को दुखी कर दिया है। उसके स्वयं की इच्छाओं ने उसे कितनी पीड़ा पहुंचाई है, यह अज्ञेय की वैज्ञानिक दृष्टि पहचानती है-

"पहाड़ियों से घिरी हुई इस छोटी-सी घाटी में

ये मुंहझौंसी चिमनियां बराबर

धुआं उगलती जाती हैं।

भीतर जलते लाल धातु के साथ

कमकरों की दु:साध्य विषमताएं भी

तप्त उबलती जातीं हैं।

बंधीं लीक पर रेलें लादे माल

चिहुंकती और रंभाती अफराए डांगर-सी

ठिलती चलती जाती है।

उद्यम की कड़ी-कड़ी में बंधते जाते मुक्तिकाम

मानव की आशाएं ही पल-पल

उसको छलती जाती हैं"।[१३१]

अज्ञेय ने 'औद्योगिक बस्ती' कविता की इन पंक्तियों में 'मुंह झौंसी चिमनियां', 'धुआं उगलना', लाल धातु का जलना, आदि वैज्ञानिक शब्दों के प्रयोग से व्यक्ति के यांत्रिक जीवन को अभिव्यक्त किया है।

अत: अज्ञेय के भारतीय, पाश्चात्य और वैज्ञानिक दृष्टि को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि उनके विचारों में इतनी गूढ़ता, विविधिता, नव्यता, चिंतनशीलता आदि विशेषताओं ने उनके काव्य को नई ऊर्जा दी। उनकी वैचारिक दृष्टि में नई स्फूर्ति का विकास हुआ। उनके काव्य और उसके वैचारिक-वैभव से प्रभावित होकर ही रमेशचंद्र शाह ने अज्ञेय की तुलना एलियट से की है। इस संबंध में उनका मत उल्लेखनीय है- "बड़े कवित्व की कसौटी क्या है इस बारे में सबका सहमत होना आवश्यक नहीं हैं, किन्तु आधुनिक कवि और अज्ञेय के समान धर्मा टी॰ एस॰ एलियट ने टेनीसन के काव्य का मूल्यांकन करते हुए कहीं लिखा है कि बड़ा कवि वह है, जिसमें यह तीन गुण विद्यमान हों: विपुलता, वैविध्य और पक्का-पूरा कर्म कौशल। इलियट की उक्ति का स्मरण अकारण नहीं हुआ। आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में जिस एक कवि का अवदान-सृजन और आलोचनात्मक चिंतन के दुहरे स्तर पर आधुनिक अंग्रेज़ी कविता के इस शीर्षस्थानीय कवि से तुलनीय ठहरता है, वह अज्ञेय ही हैं और देखा जाए तो सचमुच अज्ञेय का कृतित्व इलियट द्वारा प्रस्तुत उक्त कसौटी पर खरा उतरता जान पड़ेगा।"[१३२] रमेश चंद्र शाह की यह उक्ति अज्ञेय के सृजनशील व्यक्तित्व को व्यक्त कर देती है। अज्ञेय की वैचारिक दृष्टि ने हिन्दी साहित्य को एक नया आलोक दिया। यद्यपि अज्ञेय के विचारों को अनेक देशी-विदेशी विचारों ने दृष्टि दी परंतु उन्होंने उसे अपनी मौलिकता देकर आधुनिक हिन्दी साहित्य को एक नया सौष्ठव प्रदान किया।

--****--

संदर्भ सूची

लेखक/संपादक **पुस्तक** **पृष्ठ संख्या**

१- वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिंदी शब्दकोश -२०००, ९२९,

२- निर्मल वर्मा, साहित्य का आत्म-सत्य- , ४३

३-कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुंदीलाल श्रीवास्तव, वृहत हिंदीकोश, १०३९

४- डॉ॰ हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्दकोश- , ७४३

५- आर. एस. मैकग्रेगोर (R.S.McGregor), ऑक्सफोर्ड हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश, ९१९

६- Catherine Soanes, Alan Spoonar, Sara Hawker, Compact Oxford Dictionary, Thesaurus, and Wordpower Guide, 947

७- मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह', उर्दू-हिंदी शब्दकोश, १४७

८- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली- खंड-९,(प्रथम २०१२) ५७

९- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि- (भाग-३) २००४, १५

१०- वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत-हिंदी शब्दकोश, (चतुर्थ २०००), ४७२

११- डॉ॰ हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्दकोश- ४०४,

१२- डॉ॰ हरदेव बाहरी, राजपाल हिंदी शब्दकोश- ६२

१३- कालिका प्रसाद, राज वल्लभ सहाय, मुकुंदी लाल श्रीवास्तव, वृहत हिंदी कोश, ५३५

१४- मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह', उर्दू-हिंदी शब्दकोश, ३३१

१५- डॉ हरदेव बाहरी, राजपाल अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश-, ८६१

१६- Catherine Soanes, Sara Hawker, Julia Elliott, Pocket Oxford English Dictionary, Tenth Edition (2005), 845, 1032

१७- डॉ.जयदेव सिंह, डॉ.वासुदेव सिंह, सबद (कबीर वाङ्मय: खंड -२), १०४

१८- नन्द किशोर नवल, निराला रचनावली-भाग-२, ५०

१९- मुंशी प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, १७

२०- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि भाग-३, ६,७

२१- डॉ॰ नन्द कुमार राय, अज्ञेय की चिंतन-दृष्टि, २५

२२- अज्ञेय, सदानीरा-१, १४१

२३- तुलसीदास, रामचरित मानस, टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार, १३४

२४- गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस- टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार, प्रथम सोपान, २

२५- टीकाकार- जयदयाल गोयंदका, भगवदगीता (२/४७), १०१

२६- अज्ञेय, आत्मनेपद, ७६

२७- अज्ञेय, सदानीरा -१, २८५

२८- जयदयाल गोयंदका (टीकाकार), श्रीमदभगवद्गीता, १३७

२९- डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भगवद्गीता, १२४, १२५

३०- अज्ञेय, सदानीरा-१, १८१-१८२,

३१- अज्ञेय, सदानीरा-१, १६७

३२-- जयदयाल गोयंदका (टीकाकार), श्रीमदभगवद्गीता, १४१

३३- अज्ञेय, सदानीरा-१, २१३

३४- रामविलास शर्मा (सं॰), स्वामी विवेकानंद, कर्मयोग, १२

३५- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली (भाग-९), १०३

३६- अज्ञेय, आत्मनेपद, २३

३७- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, २०

३८- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २२४

३९- मुंडकोपनिषद, श्रीशांकरभाष्यसयुंता, श्री स्वामी सच्चिदानंदेन्द्र सरस्वती (सं॰), ८७

४०- डॉ॰ शिवदास, भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, ९८

४१- अज्ञेय, सदानीरा-१, २७७, २७८,

४२- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, १८६

४३- अज्ञेय, सदानीरा-१, २८०

४४- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली- (भाग-९), ८७

४५- अज्ञेय, सदानीरा-१, २५०

४६- अज्ञेय, सदानीरा-१, २७६

४७- अज्ञेय, सदानीरा-१, २५४

४८- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, १६३

४९- तुलसीदास, रामचरितमानस, टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार, ८७१

५०- अज्ञेय, सदानीरा-१, ३०३

५१- डॉ॰ शिवदास भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, ४९

५२- अज्ञेय, ऐसा कोई घर आपने देखा है, ३३

५३- कृष्णदत्त पालीवाल, कवि कर्म का संकट, पृ. ४४

५४- अज्ञेय, आत्मपरक, २१०

५५- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से बातचीत, १०१

५६- अज्ञेय, चिंता, १४७

५७- भोलाभाई पटेल, अज्ञेय: एक अध्ययन, १११

५८- अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, ९

५९- T॰S॰ Elliot, The sacred Wood, ४८,५०

६०- अज्ञेय, सदानीरा-१, २५२

६१- अज्ञेय, सदानीरा-१, २५२

६२- अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, १०

६३- T॰S॰ Elliot, The sacred Wood, ५६

६४- अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, १६

६५- अज्ञेय, चिंता, ८

६६- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ७४

६७- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ८३

६८- अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, १७

६९- T.S. Elliot, The sacred Wood, ५८

७०- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि, १३५

७१- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, १४६-१४७

७२- रामस्वरुप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, ११४

७३- डॉ. तारक नाथ बाली, पाश्चात्य काव्यशास्त्र, २६४

७४- अज्ञेय, सदानीरा -२, २३१

७५- अज्ञेय, सदानीरा-१, १४९

७६- शिव कुमार मिश्र, मार्क्सवादी साहित्य चिंतन: इतिहास तथा सिद्धांत, ३१६

७७- अज्ञेय, सदानीरा-१, २८४

७८- अज्ञेय, तारसप्तक, ८३

७९- शिव कुमार मिश्र, मार्क्सवादी साहित्य चिंतन: इतिहास तथा सिद्धांत, ३७०

८०- डॉ. भगीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र : इतिहास, सिद्धान्त, और वाद, १००

८१- डॉ. रामचंद्र तिवारी, भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिंदी आलोचना, १६१

८२- अज्ञेय, तारसप्तक, २७२

८३- अज्ञेय चिंता, ७७

८४- अज्ञेय, तारसप्तक, २७६

८५- भोलाभाई पटेल, अज्ञेय: एक अध्ययन, ११३

८६- अज्ञेय, सदानीरा-१, २२०

८७- ज्वाला प्रसाद खेतान, अज्ञेय: चेतना के सीमांत, ७५

८८- अज्ञेय, सदानीरा-२, ७१

८९- अज्ञेय: शिखर अनुभूतियां, ज्वाला प्रसाद खेतान, १८

९०- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी बार, २५

९१- अज्ञेय, आत्मनेपद, २२

९२- डॉ॰ भगीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र : इतिहास, सिद्धान्त, और वाद, २३०

९३- अज्ञेय, सदानीरा-१, १९२-१९३

९४- भोला भाई पटेल, अज्ञेय: एक अध्ययन, ११४

९५- अज्ञेय, तारसप्तक, २७६

९६- डॉ॰ रामचंद्र तिवारी, भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिंदी आलोचना, १६९

९७- दुर्गा प्रसाद गुप्ता, आधुनिकतावाद, ७१-७२

९८- अज्ञेय, आत्मनेपद, ३१

९९- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ३०

१००- ललित शुक्ल, नया काव्य नए मूल्य, २२३

१०१- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ६७

१०२- अज्ञेय, आत्मनेपद, ४०

१०३- डॉ॰ भगवान तिवारी, बिंबवाद, बिम्ब और आधुनिक कविता, ४

१०४- विद्यावाचस्पति डॉ॰ भवगतशरण अग्रवाल, हाइकू काव्य विश्वकोश, ११८

१०५- पूर्वग्रह, रमेशचंद्र शाह (सं॰), १५८, १५९

१०६- श्याम सुंदर मिश्र, अस्तित्व वाद और साहित्य, १२

१०७- ज्यां पॉल सार्त्र, (अनुवादक- जवरीमल्ल पारख), अस्तित्ववाद और मानववाद, ३६

१०८- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, १०३

१०९- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ६१

११०- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ४७

१११- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ९४

११२- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ५६

११३- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ३२

११४- रामस्वरुप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, ११९

११५- वर्तमान साहित्य, अंक ८-९, ७

११६- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २२०

११७- डॉ॰ विजय पाल सिंह, हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, ३०१

११८- अज्ञेय, सदानीरा-१, २५१

११९- अज्ञेय, तारसप्तक, २७०

१२०- रमेश ऋषिकल्प, अज्ञेय की कविता: परंपरा और प्रयोग, २०

१२१- अज्ञेय, तारसप्तक, २७१

१२२- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २१९

१२३- अज्ञेय, संवत्सर, २३,२४

१२४- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २२१

१२५- अज्ञेय, सदानीरा-१, १९८

१२६- अज्ञेय, बावरा अहेरी, २६

१२७- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, १५५

१२८- विष्णु प्रभाकर, गांधी: समय, समाज और संस्कृति, १५९

१२९- अज्ञेय, बावरा अहेरी, २६,२७

१३०- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, २१

१३१- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, ४५

१३२- विद्यानिवास मिश्र, रमेशचंद्र शाह, अज्ञेय काव्य-स्तबक, ६३

तृतीय अध्याय

अज्ञेय का काव्य: व्यष्टि एवं समष्टि संबंधी दृष्टि

अज्ञेय के काव्य में व्यष्टि, समष्टि तथा उनके मध्य संबंधों को लेकर आधुनिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है। वे व्यक्ति और समाज की अवधारणाओं तथा उनके मध्य संबंधों की गहरी समझ रखते हैं। अज्ञेय से पूर्व मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित प्रगतिवादी काव्य में केवल समष्टि को महत्व दिया गया। व्यक्ति को वह स्थान नहीं मिला जो उसे मिलना चाहिए था। अज्ञेय का महत्त्व इसी बात में है कि उन्होंने व्यष्टि को समष्टि के स्थान पर अपनी कविता का आधार बनाया। ऐसा नहीं है कि अज्ञेय की कविता में समष्टि का कोई स्थान नहीं है वरन वह व्यष्टि को समाज का अंग मानते हुए व्यक्ति की गरिमा को महत्त्व देते हैं।

उनके काव्य के आरंभ से ही उनकी व्यक्तिवादी दृष्टि दिखाई देती है। उनकी अधिकांश कविताएं व्यक्ति के ताने-बाने के साथ साथ प्रस्तुत हुई हैं, इसलिए अज्ञेय पर घोर व्यक्तिवादी का आरोप भी लगता रहा। अज्ञेय का कथन है कि "मैंने तो अपने आप को व्यक्तिवादी कभी नहीं माना। लेकिन जो अपने आप को समाजवादी कहते हैं और मेरा विरोध करना चाहते हैं, क्योंकि अपने आप को समाजवादी कहते हैं, इसलिए मुझको कुछ इतर बनाना उनके लिए आवश्यक हो जाता है और इसीलिए वे मुझे व्यक्तिवादी कहते हैं।"[१] वास्तव में अज्ञेय की कविता का केंद्र व्यक्ति अवश्य है परंतु वे उसे समाज से अलग करके नहीं देखते। अज्ञेय की व्यष्टि, समष्टि और उनके अंतर्संबंधों को समझने से पूर्व मैं सर्वप्रथम व्यष्टि एवं समष्टि का अर्थ स्पष्ट करना उचित समझती हूं- डॉ॰ हरदेव बाहरी के अनुसार -'<u>व्यष्टि</u>' का शब्दकोश गत अर्थ है- "समष्टि का सदस्य या व्यक्ति"[२] एवं <u>समष्टि</u> का अर्थ है- १-"सामूहिकता २- समवेत सत्ता।"[३] अंग्रेज़ी शब्दकोश में व्यक्ति को 'Person"[४] कहते हैं

जिसका शाब्दिक अर्थ है- 'An individual human being"[५] तथा समाज को अंग्रेज़ी में- 'Society"[६] कहते हैं जिसका तात्पर्य है- People living together in an ordered community॰ २- a community of people living in a country or region and having shared customs, laws and organizations"[७] इन शब्दकोशगत अर्थ के आधार पर हम कह सकते हैं कि जब व्यक्तियों का एक समुदाय आपस में मिलकर एक स्थान पर रहता है और अपने रीति-रिवाजों, क्रिया-कलापों, प्रथाओं आदि का एक-दूसरे के साथ व्यवहार करता है तब एक समाज का निर्माण होता है। दोनों शब्दों के अर्थ स्पष्टीकरण से ज्ञात होता है कि व्यक्ति एवं समाज के में परस्परता का संबंध है। बिना व्यक्ति के समाज और समाज के बिना व्यक्ति को समझा नहीं जा सकता। व्यक्ति समाज में अपनी पहचान पाता है। वह समाज का आवश्यक अंग है। प्रगतिशील काव्य में समाज को इतनी महत्ता दी कि व्यक्ति उपेक्षित हो गया। प्रयोगवादी कवि अज्ञेय ने इस उपेक्षित व्यक्ति के अंतर्जगत की यात्रा कर उसकी प्रतिष्ठा काव्य में की। यह कहने का तात्पर्य नहीं है कि अज्ञेय से पूर्व व्यक्ति को कविता में स्थान नहीं मिला। निराला की 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर', 'विधवा' आदि मानवीय संवेदनाओं को प्रकट करने वाली कविताएं थीं जिसमें व्यक्ति की पीड़ा को समझने का प्रयत्न हुआ। परंतु अज्ञेय ने व्यक्ति के संत्रास को अपनी पीड़ा समझी और काव्य में व्यक्ति के प्रति एक यथार्थवादी दृष्टिकोण का सूत्रपात हुआ। अज्ञेय की वैयक्तिकता फ्रायडीय और अस्तित्ववादी प्रभावों से भी दृष्टि ग्रहण करती है। उनके वैयक्तिक विचारों में अपने पूर्ववर्ती विचारों से अधिक मनोवैज्ञानिकता दिखाई देती है। कहना न होगा कि उन्होंने भोगे हुए सत्य को अपनी कविता में उकेरा और उसी की छाया में उनकी वैयक्तिक दृष्टि निर्मित हुई। इस संबंध में उनके वैयक्तिक दृष्टिकोण को समझना समीचीन होगा।

(क) वैयक्तिक दृष्टिकोण

मानव वह इकाई है जो समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसका कारण यह है कि मानव एक विवेक शील प्राणी है जिसके कारण वह सभी प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ प्राणी कहलाता है। वह अपने बौद्धिक क्षमता

के आधार पर उसने इतनी प्रगति की। आदि मानव से सभ्य मानव के रूप में परिवर्तन इसी बुद्धि के कारण संभव हो पाया। वर्तमान में व्यक्ति का जो रूप हमारे समक्ष है, वह आश्चर्य में डालने वाला है। यदि व्यक्ति का आदि-मानव से विकास देखें तो आज के विकसित मानव का रूप अदभुत ही कहा जाएगा। आदिमानव से सभ्य विकसित व्यक्ति के इतिहास में उसने अपनी प्रयोगशील बुद्धि, और ज्ञानार्जन से न केवल स्वयं को समृद्ध किया बल्कि अपने पूरे समाज को उन्नति का मार्ग दिखाया। यह उसकी सोचने और वैचारिक दृष्टि का परिणाम है कि आज वह इस उन्नत और भौतिक साधनों से सम्पन्न समाज का अंग है। इस भौतिकता ने व्यक्ति को जहां समृद्धि का मार्ग दिखाया वहीं उसके लिए परेशानियों के द्वार भी खोले। इस विकसित समाज में व्यक्ति सुख के साधनों में कहीं खो गया है। व्यक्ति के इन्हीं नाना प्रकार की स्थितियों को कवियों ने विभिन्न दृष्टिकोण से देखा है। अज्ञेय की कविताओं में भी व्यक्ति के संबंध में उनके विभिन्न विचारों की अभिव्यक्ति हुई है।

अज्ञेय के काव्य में व्यक्तिपरक दृष्टि दिखाई देती है। वे मानव को श्रेष्ठ प्राणी का दर्ज़ा देते हैं क्योंकि वे व्यक्ति को मूल्यों का स्रष्टा मानते हैं। व्यक्ति द्वारा ही मूल्यों को बनाया जाता है। उनका कथन है कि “मनुष्य मूल्यों की सृष्टि करता है। सिर्फ़ पहचानता नहीं है कि मूल्य है, वह रचता है उन मूल्यों को। निरंतर उसके मूल्य भी विकसित होते जाते हैं जैसे वह विकसित होता जाता है। एक मूल्य के बदले वह उस बड़े या व्यापक या ज्यादा बड़े समाज के लिए कल्याणकारी मूल्य की अवधारणा करता है।”[८] अज्ञेय के इस कथन से ज्ञात होता है कि वे व्यक्ति को सृष्टि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई मानते हैं। व्यक्ति अपने द्वारा निर्मित श्रेष्ठ मूल्यों की स्थापना कर एक उच्च समाज की रचना करता है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति ईश्वर से कम नहीं। रमेश चंद्र शाह का मत है- “ध्यान देने की बात यह है कि किस तरह अज्ञेय के काव्य में यह मूल्य बोध और इसका मानवनिष्ठ (हयूमिनिस्ट) अभिप्राय क्रमश: एक प्रभासिक्त पावनता के बोध से उद्दीप्त होता जाता है।”[९] इस संबंध में अज्ञेय की यह कविता दृष्टव्य है। वे कहते हैं-

"भीड़ों में

जब-जब जिस-जिस से आंखें मिलती हैं

वह सहसा दिख जाता है

मानव

अंगारे-सा -भगवान-सा

अकेला। और हमारे सारे लोकाचार

राख की युगों -युगों की परते हैं।"[१०]

अज्ञेय का अकेले मानव में भी ईश्वर जैसी शक्तियों में विश्वास हैं। इससे प्रतीत होता है कि वे व्यक्ति के सामर्थ्य के प्रति आस्थावान हैं। इस संबंध में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कथन है कि "वे मानव शक्ति को अंतत: पूज्य मानते हैं। उसी के प्रति नमित और अर्पित होते हैं।"[११]

व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना अज्ञेय के काव्य में दिखाई देती है। उनके व्यक्ति के विकास के लिए उसके स्वतंत्र अस्तित्व को महत्त्व देते हैं। अज्ञेय की व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा उनके काव्य की प्रेरणा है। डॉ॰ केदार शर्मा का मत है कि "अज्ञेय के सम्पूर्ण मूल्य चिंतन का केंद्र स्वतन्त्रता है। उनकी दृष्टि में यह एक चरम मूल्य है, सभी मूल्यों का बीज मूल्य है। और मूल्यों का मूल्य होने की कसौटी है।"[१२] जब तक व्यक्ति अपने अस्तित्व के स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं करता तब तक उसका विकास संभव नहीं है। इस संबंध में अज्ञेय का कथन है- "मनुष्य के विकास की, पशु से मनुष्य तक के विकास की और मनुष्य की मनुष्य के रूप में विकास की, एक बहुत बड़ी प्रवृत्ति मैं इस स्वतन्त्रता की पहचान और खोज मानता हूं। मनुष्य ही पहला जीव है जिसके लिए स्वतन्त्रता संभव है और जो यह पहचानता है कि मैं स्वतंत्र हो सकता हूं।"[१३] एक स्वतंत्र व्यक्ति ही अपनी स्वाधीनता का अनुभव कर सकता है। वह प्रकृति के साथ स्व की अनुभूति करता है। उनकी कविता में व्यक्ति की इसी स्वतन्त्रता की अभिव्यक्ति हुई है। वे कहते हैं-

“मैं सोते के साथ बहता हूं
पक्षी के साथ गाता हूं
वृक्षों के कोपलों के साथ थरथराता हूं
और इसी अदृश्य क्रम में भीतर ही भीतर
झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता हूं
नए प्राण पाता हूं।”[१४]

इन पंक्तियों में व्यक्ति अपनी खोज अपने ही भीतर करता है। यह उसकी स्वतन्त्रता ही है कि वह प्रकृति के साथ स्वयं को जोड़ लेता है और उसी के साथ बहता, गाता, थरथराता, गलता, जीर्ण होता नव जीवन का अनुभव करता है। जीवन के इस अनुभूति को स्वाधीन व्यक्ति ही अनभूत करता है। स्वाधीनता को परिभाषित करते हुए अज्ञेय कहते हैं कि “स्वाधीनता एक ऐसी चीज़ है जो निरंतर आविष्कार, शोध और संघर्ष मांगती है, यहां तक कि उस शोध और संघर्ष को ही, स्वाधीनता की अंतहीन ललक को ही स्वाधीनता का सार सत्त्व कह सकते हैं।”[१५] इस तरह व्यक्ति- स्वातन्त्रय को अज्ञेय व्यक्ति के लिए अनिवार्य मानते हैं। इस स्वाधीनता के अभाव में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं कर पाता है।

व्यक्ति अपनी स्वाधीनता के कारण ही अन्य प्राणियों या पशुओं से अपना विभेद कर पाता है। वह अपने मन के विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता है। यह उसकी स्वाधीनता का सबसे बड़ा प्रमाण है। मानव की स्वाधीनता पर अज्ञेय ने अपना विचार प्रकट किया है- “मानव होकर मैं जैविक वृत्त से बाहर निकल गया होऊं, ऐसा नहीं है; जीव मात्र के धर्म से मैं अब भी बंधा हूं। पर एक चीज है जो मुझे पशु जीवन से अलग कर देती है। मानव पहला स्वाधीन पशु है- और स्वाधीन होने के नाते पशु नहीं है। मानवेतर सभी प्राणियों के जीवन की चरम संभावनाएं उन की शरीर-संरचना से मर्यादित हैं; मानव पहला ऐसा प्राणी है जो भाषा पाकर, अवधारणा की शक्ति पाकर, प्रतीकों का स्रष्टा होकर, पूर्व कल्पना से परे चला गया है, अकल्पनीय और असीम

संभावनाओं से सम्पन्न हो गया है- एक परोक्ष सत्ता से जुड़ गया है, स्वाधीन हो गया है, वह मूल्यों की अवधारणा करता है। उन की सृष्टि करता है और स्वाधीनता उस का सबसे पहला, सब से आधारभूत मूल्य है- क्योंकि यही उस के मानवत्व की कसौटी है, इसके बिना वह पशु है। और यही मेरी समझ में, वह आधारभूमि है जिस पर खड़े होकर हम प्रासंगिकता का प्रश्न पूछ सकते हैं। सब प्रासंगिकताओं के मूल में एक प्रासंगिकता है- क्योंकि सब मूल्यों के मूल में एक अभिमूल्य है- स्वाधीनता। जो कुछ स्वाधीनता को बढ़ाता है, पुष्ट करता है, उसे स्थायित्व और सुरक्षा देता है, वह सब मूल्यवान है प्रासंगिक है; जो वैसा नहीं करता, वह प्रासंगिक नहीं है।"[१६] अज्ञेय की दृष्टि में व्यक्ति के लिए स्वाधीनता मानव होने की पहचान है। स्वाधीनता मानव मूल्य है, मानव होने का प्रमाण है। अपने से बड़ा कुछ करने की उसमें जो योग्यता है वही उसे स्वाधीन करती है। अज्ञेय यह भी मानते हैं कि व्यक्ति अपनी इसी स्वातंत्र्य-अनुभूति के कारण अलौकिक सत्ता से भी जुड़ गया। इसलिए उनकी व्यक्ति या आत्म-स्वतन्त्रता की खोज कहीं-कहीं रहस्यवादी हो जाती है-

"मैं भी एक प्रवाह हूं

लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है

मैं उस असीम शक्ति से संबंध जोड़ना चाहता हूं-

अभिभूत होना चाहता हूं

जो मेरे भीतर है।"[१७]

अज्ञेय का कवि मन उस असीम सत्ता से अपना संबंध जोड़ने के लिए प्रयत्न शील है, जिसे वह ईश्वर नहीं कहता। उसे वह देख नहीं पाता फिर भी उसे वह अपने अंदर अनुभव करता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने होने की अनुभूति होती है। व्यक्ति अपने जीवन के लिए, आगे बढ़ने के लिए और अपने विकास के लिए प्रकृति के साथ सामंजस्य का प्रयत्न करता है। उसके स्वतन्त्र होने की यही पहचान है। उसे इस स्वाधीनता के लिए अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं। क्रिस्टोफर कॉडवेल ने 'जगत और मैं' के विषय में विचार करते हुए यह स्वीकार किया है कि

"मनुष्य प्रकृति के साथ अपने संघर्ष में जिस चीज की तलाश करता है, वह है स्वतन्त्रता। यह स्वतन्त्रता चूंकि क्रिया के बिना अर्जित नहीं की जा सकती इसलिए वह महज चिंतन की स्वतन्त्रता नहीं है। इसे हासिल करने के लिए मनुष्य अपने भीतर सिमटकर नहीं रह जाता कि 'जो भी होता है होने दो।' जैसे कला की स्वत: स्फूर्तता श्रमजन्य क्रिया का परिणाम है, उसी तरह स्वतन्त्रता की भी अपनी कीमत चिर सतर्कता नहीं अपितु सतत श्रम है।"[१८] आशय यह है कि व्यक्ति केवल सोचता है इसलिए अपनी स्वतन्त्रता का अनुभव नहीं करता बल्कि उसके लिए उसे संघर्ष भी करना पड़ता है। अज्ञेय की कविताओं में भी इस प्रकार प्रकार के विचार मिलते हैं, जहां वह वह अनुभव करता है कि उसका जीवन ओस की बूंदों के समान और कर्म जोते हुए खेत की तरह हो और उसमें वे अपने कर्मों के नए बीज बो सकें-

"मेरा जीवन -

घास की पत्ती से झूलती हुई यह अजानी ओस बूंद-

सूर्य की पहली किरण से जगमगा उठे और स्वयं

किरणें विकरित करने लगे।

मेरा कर्म

मेरे गले का जूआ नहीं,

वह जोती हुई भूमि बन जाए

जिस में मुझे नया बीज बोना है।"[१९]

इन पंक्तियों में कवि ओस की बूंदों की तरह सूर्य से ऊर्जा प्राप्त कर स्वयं प्रकाश विकरित करना चाहता है और अपने कर्म में एक अबाध गति चाहता है। एक स्वतंत्र चेतना ही व्यक्ति को ऐसे चिंतन के लिए प्रेरित कर सकती है। व्यक्ति एक सचेतन प्राणी है। वह चिंतन करता है क्योंकि उसे अपने सत्व की अनुभूति होती है। परंतु उसकी यह स्वतन्त्रता उसकी अपनी ही नहीं है, वह दूसरों को भी स्वतंत्र करता है। इस संबंध में अज्ञेय कहते हैं कि "स्वाधीनता की सच्ची कसौटी मैं नहीं

ममेतर है। ममेतर के दर्पण में ही मुझे मेरी अपनी अस्मिता का सच्चा प्रतिबिंब दिख सकता है। शायद मसीही धर्म ग्रंथ में जब यह कहा गया कि ईश्वर ने अपनी प्रतिच्छवि में मानव को बनाया तब आशय यही था कि ईश्वर को भी अपने को पहचानने के लिए उस प्रतिच्छवि की जरूरत महसूस हुई।"[२०] व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता ही कर्म के लिए प्रेरणा देती है। उसकी स्वाधीनता का यही प्रमाण है कि अपनी मुक्ति के साथ उसका कर्म दूसरों को भी मुक्त करता है। इस संदर्भ में अज्ञेय ने गौतम बुद्ध का उल्लेख किया है- "उस बोधिसत्व की कथा कई वर्षों बाद सुनी जिसने मानव मात्र की मुक्ति के लिए स्वयं अपनी मुक्ति का उत्सर्ग कर दिया था। और यह तो इसके भी कुछ वर्षों बाद समझ में आया कि यह उत्सर्ग ही सच्चा और एकमात्र स्वाधीन कर्म है।.........बोधिसत्व का स्वाधीन कर्म, उसका स्वतंत्र वरण एक ऐसा कर्म था जिसके द्वारा स्वाधीनता अपने आप में एक अनिवार्यता बन जाती है।"[२१] व्यक्ति अपनी सचेतना के कारण ही अपने कर्मों का चुनाव करता है। कर्मों का वरण किया जाना उसके सत्व का परिचायक है। जब व्यक्ति का सत्व है तभी वह अपने कर्मों का चुनाव करने में समर्थ है। अज्ञेय के इस विचार पर अस्तित्ववादी प्रभाव दिखाई देता है। अस्तित्ववादी विचारक सार्त्र के वरण के संबंधी विचार के विषय में रमेश की ऋषिकल्प का कथन द्रष्टव्य है- "स्वतन्त्रता का वरण करना मानव का सत्व पक्ष है जिसके द्वारा विश्व में निषेधियों की तो कलई खोलता है ही बल्कि अपने संबंध में भी निषेधात्मक दृष्टिकोण बना सकता है। यह चर्चा करते हुए हमें ज्यां पाल सार्त्र की याद आती है। जिनके अनुसार संचेतना वह सत्व है जिसका धर्म है अपने सत्व के प्रति सचेत होना। सार्त्र लिखते हैं- Consciousness of being is the being of consciousness. इसका मतलब यह हुआ कि सचेतन तत्व के कारण ही मनुष्य स्वतन्त्रता का वरण करता है।"[२२]

वैयक्तिक चेतना में 'मैं' की अभिव्यक्ति होती है। 'मैं हूं', 'यह मेरा है', 'यह मेरा नहीं है' आदि का प्रयोग जब व्यक्ति करता है तो उसका अहं भाव प्रकट होता है। अस्तित्ववाद भी मानता है कि व्यक्ति में जो चेतना है वह अहं को प्रकट करती है। सार्त्र के चेतना संबंधी विचार के संबंध में मस्तराम कपूर का मत है- "सार्त्र मानव चेतना को निर्वैयक्तिक चेतना

और अहं (ईगो) की पृथक सत्ता नहीं मानते। वे मानव चेतना के वैयक्तिक रूप को अहं कहते हैं। मेरे पन का भाव चेतना में हमेशा मौजूद रहता है और इस दुनिया के संबंध में मेरे पन का भाव इस अर्थ में होता है कि दुनिया मेरी संभावनाओं से भरी है और प्रत्येक संभावना की चेतना आत्म चेतना अर्थात मैं हूं।"[२३] अज्ञेय के कवि में इस मैं की अभिव्यक्ति बार-बार हुई है। व्यक्ति में 'मैं' का भाव उसका अस्तित्व बोध है। मैं चेतना को अभिव्यक्त करने वाली प्रतीति है-

"मैं जिया हूं, और मेरे भीतर से जी लिया गया है;

मैं मिटा हूं, मैं पराभूत हूं, मैं तिरोहित हूं,

मैं अवतरित हुआ हूं, मैं आत्मसात हूं,

अमर्त्य, कालजित हूं।"[२४]

'कितनी नावों में कितनी बार' की कविता 'ओ नि: संगममेतर' की इन पंक्तियों में कवि ने अपने अहं भाव को प्रकट किया है। वह 'मैं जिया हूं, मैं मिटा हूं, मैं अवतरित हुआ हूं, मैं आत्मसात हूं, अमर्त्य, कालजित हूं, में कवि मैं हूं के माध्यम से स्व की सार्थकता प्रकट करता है। 'मैं' की संभावना से इस संसार की सार्थकता है।

अज्ञेय की कविताओं में व्यक्ति के इस मैं को विभिन्न रूपों देखा जा सकता है। व्यक्ति का जीवन है तो मृत्यु का बोध भी है। उसके जीवन में सुख भी तो दुख भी है। जहां उसे सौंदर्य मोहित करता है वहीं कुरूपता से पीड़ित भी होता है। अज्ञेय का व्यक्ति स्वयं को विधि का खेल समझता है और कहता है -

"मैं मिट्टी का दीपक, मैं ही हूं उस में जलने का तेल

मैं ही हूं दीपक की बत्ती, कैसा है यह विधि का खेल"[२५]

व्यक्ति केवल मिट्टी का दीपक ही नहीं है बल्कि वह मार्ग दर्शक के रूप में भी सामने आता है। वह स्वयं छोटा है तो क्या हुआ उसमें शक्ति की कहीं कमी नहीं है। मिट्टी का भी होकर उसमें एक तेज है और वह सूर्य

को भी अपनी ऊर्जा देने का सामर्थ्य रखने वाला है। इसलिए वह कहता है -

"लो यह मेरी ज्योति दिवाकर!

मैं पथ दर्शक बनकर जागा करता रजनी को आलोकित -

या मैं अनिमिष रूपज्वाल-सा किए रहा शलभों को विकलित;

यह मिथ्या अभिमान नहीं मुझको छू पाया क्षण-भर।

लो यह मेरी ज्योति दिवाकर!

x x x x x x x x

मैं मिट्टी हूं पर यह मेरी अचिर साधना की ज्वाला है

मैंने अविरल अपनी आहुति दे दे कर इस को पाला है,

स्रष्टा मैं हूं, यदपि सफल मैं हुआ सृजन में जल कर!

लो यह मेरी ज्योति दिवाकर!"[२६]

व्यक्ति मिट्टी के दीपक की तरह लघु होकर भी पथ-दर्शक बनकर बिना किसी अभिमान के अंधकार को आलोकित करता रहता है। कवि ने व्यष्टि की लघुता को उसके उच्च कार्यों से जोड़कर उसे मानववादी आदर्श रूप दिया है। वह स्रष्टा है, वह मूल्यों का स्रष्टा है। इसके लिए वह अचिर साधना करता है। उसकी मानवता इसी सर्जनधर्मिता से जुड़ी है। इस संदर्भ में अज्ञेय का कथन है- "मानव की मानवता मूलत: और सारत: उसकी सर्जनधर्मिता में है और इस सर्जनधर्मिता की पहली और मौलिक अभिव्यक्ति मूल्यों की सृष्टि में है।"[२७]

अज्ञेय का कवि में मूल्यों का अवलोकन मिलता है। वे मानवीय मूल्यों की को श्रेष्ठ मानते हैं और उसकी स्थापना में संलग्न दिखाई देते हैं। व्यक्ति ही इन मूल्यों का सर्जक है। उसने प्रेम, विश्वास, सत्य, अहिसा, नैतिकता आदि मूल्यों को जन्म दिया है। इनके साथ घृणा, अविश्वास, असत्य, हिंसा और अनैतिकता आदि का भी जन्म हुआ परंतु

अज्ञेय का व्यक्ति इनका विद्रोह करता है और श्रेष्ठ, उच्च और आदर्शों वाले मूल्यों में विश्वास करता है। वह कहता है -

"जिन्होंने अपने प्राण
घृणा को नहीं, प्यार को दिए
स्मारकों को नहीं, मिट्टी को दिए;
मोल आंकनेवालों को नहीं, मूल्यों को दिए
ये स्मारक- नए- पुराने ढूह - नहीं,
वह मिट्टी ही है पूज्य:
प्यार की मिट्टी
जिस से सर्जन होता है
मूल्यों का
पीढ़ी- दर- पीढ़ी!"[२८]

मनुष्य इन मूल्यों के द्वारा ही मनुष्य कहलाता है। इन्हीं के बल पर वह अपनी पशु-प्रवृत्ति पर अंकुश लगाता है। व्यक्ति का मानव होना इन्हीं मूल्यों के कारण संभव हुआ है। यह किसी पशु में संभव नहीं है। इन्हीं मूल्यों की सर्जना कर वह पशुओं से अलग हो जाता है। अज्ञेय मानते हैं कि "ये मूल्य मनुष्य के रचे हुए होते हैं। इसलिए माना जा सकता है कि मनुष्य उन से बड़ा है; लेकिन वास्तव में मनुष्य ही उन्हें अपने से बड़ा बनाता है और उन पर अपने प्राण भी निछावर करने को प्रस्तुत हो जाता है। यह अपने से बड़ा कुछ रच सकने की और लगातार रचते रहने की शक्ति, यह अशेष सर्जनशीलता ही मनुष्य की मनुष्यता की कसौटी है।"[२९] इसी मनुष्यता के लिए हमारे कितने महान व्यक्तियों ने अपने प्राणों को त्याग दिया या कि अनेकों कष्ट सहे। उदाहरण के रूप में गौतम बुद्ध, ईसा मसीह, गांधी जी आदि कुछ ऐसे ही महान पुरुषों में अग्रणी रहे जिन्होंने मानवता के लिए अपने प्राणों की भी चिंता

नहीं की। अज्ञेय की कविताओं में इस तरह के मूल्यों के दर्शन होते हैं जो मनुष्यता की कसौटी ही कहे जाएंगे-

"जब तख्ते पर कर-बद्ध टंगे, नरवर के कपड़े खून-रंगे,

पांसे के दांव लगाकर वे सब आपस में थे बांट रहे,

तब जिसने करुणा से भरकर उस जगत्पिता से आग्रह कर

मांगा था, "मुझे यही वर दे: इनके अपराध क्षमा कर दे!"

वह अंत समय विश्वास-भरी जग से घिर कर सन्यास-भरी

अपनी पीड़ा की तड़पन में भी पर-पीड़ा से त्रास-भरी

ईसा की सब सहने वाली चिर-जागरूक रहने वाली

यातना तुझे आदर्श बने कटु सुन मीठा कहने वाली!

तुझ में सामर्थ्य रहे जब तक तू ऐसे सदा तड़पता चल-

धक धक धक धक ओ मेरे दिल!"[३०]

कविता की ये पंक्तियां मानव के उस रूप का दर्शन होता है जिस में पर-पीड़ा स्व पीड़ा से कहीं अधिक है। ईसा मसीह का शरीर कीलों से भेदे जाने पर भी उन्होंने ईश्वर से अपराधियों के अपराध को क्षमा करने की प्रार्थना की। अज्ञेय ऐसे ही व्यक्ति की स्थापना अपने काव्य में करते हैं जो उच्च आदर्श मूल्यों का स्रष्टा है।

व्यक्ति अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए स्वतंत्र है। कभी-कभी उसकी यह स्वतन्त्रता बाधित होती है तो उसमें निराशा के भी भाव दिखाई देते हैं। अज्ञेय ने व्यक्ति की इस कुंठा और नैराश्य को समझा और उसे अपनी कविता में प्रकट किया है -

"मन बहुत सोचता है कि उदास न हो

पर उदासी के बिना रहा कैसे जाए?

शहर के दूर के तनाव- दबाव कोई सह भी ले,

पर ये अपने ही रचे एकांत का दबाव सहा कैसे जाए।

नील आकाश, तैरते से मेघ के टुकड़े,

खुली घासों में दौड़ती मेघ छायाएं,

पहाड़ी नदी: पारदर्श पानी,

धूप-धुले तल के रंगारंग पत्थर

सब देख बहुत गहरे कहीं जो उठे,

वह कहूं भी तो सुनने को कोई पास न हो-

इसी पर जो जो में उठे वह कहा कैसे जाए"[३१]

व्यक्ति आज के इस वातावरण में अकेला अनुभव करता है। यहां तक कि वह अपने मन में उठते भावों को भी व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है। वर्तमान में व्यक्ति कहीं न कहीं स्वयं को स्वतंत्र नहीं समझता। इसका प्रभाव उसके हृदय पर गहरा पड़ता है और संसार में अपने को नितांत अकेला और असहाय समझने लगता। अनेक कुंठाएं उसके मन को घेर लेती हैं। इस संदर्भ में डॉ श्याम सुंदर मिश्र का मत उचित ही है - "स्वतन्त्रता का अधिकार आवश्यक है अन्यथा जो व्यक्ति स्वतन्त्रता प्राप्त करने में असमर्थ रहता है वह अनायास संकट, नाशिया, न्यायाधिकरण और फांसी-जीवन के ओछे तरीकों की फिसलन का शिकार होता है।"[३२]

अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति के प्रत्येक पहलू पर विचार हुआ है। अज्ञेय का व्यक्ति कहीं अपने आप से ही अलग हो गया है। अज्ञेय व्यक्ति के व्यक्तित्व को महत्ता प्रदान करते हैं। उनका मत है कि "व्यक्तित्व का बनना ही मनुष्य का मनुष्य बनना है।"[३३] उनकी कविताओं में व्यक्तित्व खोज की जिज्ञासा दिखाई देती है-

"यों मत छोड़ दो मुझे, सागर

कहीं मुझे तोड़ दो, सागर

कहीं मुझे तोड़ दो!

मेरी दीठ को और मेरे हिए को,

मेरी वासना को और मेरे मन को,

मेरे कर्म को और मेरे मर्म को,

मेरे चाहे को और मेरे जिए को

मुझको और मुझको और मुझको

कहीं मुझसे जोड़ दो!"[३४]

अज्ञेय मानते हैं कि व्यक्तित्व से ही व्यक्ति को सही मायने में समझा जा सकता है। व्यक्ति अपने 'मैं' को पहचानता है। इसलिए वह मानवेतर प्राणियों से भिन्न है। अपनी इसी मैं की पहचान के कारण वह समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। इस संबंध में उनका कथन है कि "जब तक व्यक्तित्व नहीं बनता तब तक तो पशु से मनुष्य को अलग करने वाली स्थिति ही पूरी नहीं बनती। वह मैं असामाजिक नहीं है लेकिन एक बड़ी स्पष्ट निरूपित इकाई अवश्य है।"[३५]

अज्ञेय व्यक्ति के सकारात्मक और निराशावादी मनोभावों को प्रकट करने में सफल हुए हैं। अज्ञेय की व्यक्ति में अटूट आस्था है। वे कहते हैं-

"मार्ग कभी धुंधला हो, दिक्चक्र थोड़े ही खो जाता है

ज्ञान अधूरा है, सही, विवेक थोड़े ही सो जाता है?

आस्था न कांपे, मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है"[३६]

अज्ञेय मानते हैं कि कितनी भी कठिन परिस्थितियां क्यों ना हो यदि व्यक्ति की आस्था समाप्त न हो या कमजोर न पड़े तो वह विषम से विषम स्थिति का सामना कर सकता है। वास्तव में अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति का प्रमुख स्थान है और उनकी कविताएं व्यक्ति की जीवन में आस्था का प्रतीक हैं। वे कहते हैं -

"वे जिन्होंने

धरती में विश्वास नहीं खोया,

जिन्होंने जीवन में आस्था नहीं खोयी,

जिन के घर

उन पहलों ने नष्ट किए,

महासागर में डुबोए :

पर जिन्होंने अपनी जिजीविषा

घृणा के परनाले में नहीं डुबोई

उनकी डोंगियां

फिर इन तरंगों पर तिरेंगी।"[३७]

अज्ञेय का काव्य व्यक्ति की इयत्ता को महत्त्वपूर्ण मानता है परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे उसे समाज से अलग मानते हैं। उनके काव्य में समाज की उपेक्षा नहीं की गई। उनके काव्य में समाज संबंधी विचारों को समझने के लिए उनकी सामाजिक दृष्टि को समझना समीचीन है-

(ख) सामाजिक दृष्टिकोण

अज्ञेय व्यक्ति को महत्त्व देते हुए समाज की ओर अग्रसर होते हैं। अज्ञेय की समाज के प्रति दृष्टि प्रगतिवादी दृष्टि से भिन्न रही। प्रगतिवाद ने समाज के माध्यम से व्यक्ति को देखा। अज्ञेय ने उसी समाज को व्यक्ति के द्‌वारा जाना और परखा। उनकी आधुनिक और प्रयोगवादी दृष्टि ने समाज को भी नई दृष्टि से समझने की चेष्टा की। अज्ञेय के सामाजिक दृष्टिकोण को समझने से पूर्व हमें समाज की अवधारणा को समझना होगा।

समाज से तात्पर्य है व्यक्तियों के ऐसे समूह से जहां सब मिल-जुल जीवन के विभिन्न क्रियाकलाप करते हैं और उसमें भाग लेते हैं। उदाहरण के रूप में देखें तो व्यक्ति को अपने तीज-त्योहार, धार्मिक

उत्सव और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे की सहायता लेनी पड़ती है। बिना एक दूसरे के सहयोग के व्यक्ति अपनी मूलभूत जरूरतें भी पूरी करने में असमर्थ होता है। ऐसा इसलिए है कि व्यक्ति समाज में रहने वाला प्राणी है। वह समाज के बिना अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता क्योंकि इसी में रहकर वह एक-दूसरे से संबंध बनाता है, संस्कृति का निर्माण करता है, परम्पराओं का निर्वहन करता है। वस्तुत: व्यक्ति के समूह में रहने की प्रवृत्ति को समाज के नाम से जाना जाता है। डॉ॰ गणेश पाण्डेय ने समाजशास्त्री मैकाईवर और पेज द्‌वारा की गई समाज की परिभाषा का उल्लेख किया है- "समाज चलनों और कार्यविधियों की, प्रभुत्व और परस्पर सहायता की, अनेक समूहों और श्रेणियों की, मानव व्यवहार के नियंत्रणों और स्वछंदताओं की व्यवस्था है। (Society is a system of usages and procedures, of authority and mutual aid, of many groupings and divisions, of controls of human behavior and of liberties. This ever-changing, complex system we call society.)"[३८] उक्त मत के अनुसार समाज के वैविध्य रूपों में क्रिया-कलाप, चाल-चलन, रीति-रिवाज, परस्पर सहयोग आदि अनेक बातों का समावेश होता है। एक अन्य समाजशास्त्री 'रियूटर' ने समाज की परिभाषा दी है- "समाज एक अमूर्त धारणा है जो एक समूह के सदस्यों के बीच पाए जाने वाले संबंधों की संपूर्णता का बोध कराती है"[३९] इस कथन के अनुसार समाज अंत:संबंध और अंत:क्रियाओं का एक संश्लिष्ट बोध है। व्यक्तियों के मध्य आपस में अन्तः संबंध और अंत: क्रियाएं होती हैं जिसके फलस्वरूप समाज बनता है। अत: समाज व्यक्तियों से ही बनता है और वह समाज में रहकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए एक दूसरे के साथ रहकर अपना जीवन यापन करता है।

अज्ञेय की दृष्टि में व्यक्ति की सत्ता अधिक महत्वपूर्ण है परंतु फिर भी वे समाज से परे नहीं है। वे समाज की महत्ता को नकार कर व्यक्ति को स्वछंद नहीं मानते। उनके अकेले, एकांतिक जीवन ने उन्हें अवश्य ही एक नितांत वैयक्तिक दृष्टि दी लेकिन इसी अकेलेपन के जीवन ने उन्हें समाज की गंभीर दृष्टि दी। इस दृष्टि से समाज की अवधारणा करते हुए उनका कथन है- "समाज से अभिप्राय वह परिवृत्ति

है जिसके साथ व्यक्ति किसी प्रकार अपनापा महसूस करे। वह मानव समाज का एक अंश भी हो सकती है, और मानव-समाज की परिधि से बाहर बढ़कर पशु-पक्षियों को भी घेर सकती है; बल्कि (चरमावस्था में) मानव-समाज को छोड़कर पशु -पक्षियों और पेड़-पत्तों तक ही रह जा सकती है। समाज की इयत्ता अंततोगत्वा समाजत्व की भावना पर आश्रित है यदि किसी कारण हम अपनी प्रवृत्ति से सामाजिक संबंध नहीं महसूस करते, तो वह हमारा समाज नहीं है, यदि किसी दूसरी प्रवृत्ति से वैसा संबंध मानते हैं, तो वह हमारा समाज है।"[४०] अज्ञेय का यह कथन उनके समाज के विषय में विचार को प्रकट करता है। उनका मत है कि समाज से हमारा संबंध अपनेपन का है। अगर जिस समाज में हम रहते हैं उसे हम एक लगाव नहीं रखते तो उसे समाज कहने में संकोच होता है। आशय यह है कि समाज में रहकर व्यक्ति समाज से अपना घनिष्ट संबंध जोड़ता है।

समाज जहां व्यक्ति की आवश्यकता पूरी करता है वहीं वह उसके संस्कारों का परिमार्जन भी करता है। इस समाज के कारण ही व्यक्ति अपनी पहचान बनाता है और पहचाना भी जाता है। इसी से संबन्धित क्रिस्टोफर कॉडवेल का मत है कि "जब हम मनुष्य की बात करते हैं तो हमारा आशय वंशजात या व्यक्ति से अर्थात जिस रूप में वह पैदा होता है उस अंत:वृत्ति वाले मनुष्य से होता है जिसे यदि उपेक्षित छोड़ दिया जाए तो बढ़कर एक मूक पशु बन सकता है, परंतु इसके बजाय वह एक खास किस्म के समाज में बढ़कर एक खास किस्म का मनुष्य- यूनानी, ऐज़्तेक, लंदनवासी बनता है। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि वंशजात मनुष्य पूरी तरह लोंदा होता है। इसमें कुछ निश्चित अंत: वृत्तियां और क्षमताएं होती हैं जो इसकी ऊर्जा और बेचैनी का स्रोत होती हैं। सभी वंशजात एक जैसे भी नहीं होते, मनुष्यों में जन्मजात लक्षणों के कारण परस्पर भिन्नता होती है। परंतु समाज इस प्रकार की जन्मजात वैयक्तिकता के विरुद्ध नहीं होता; उल्टे सभ्यता के विकास के साथ जो विभेदीकरण उत्पन्न होता है वह मनुष्यों की विशिष्ट विशेषताओं को फलीभूत करने का साधन बनता है।"[४१] क्रिस्टोफर कॉडवेल का यह कथन समाज का व्यक्ति के लिए महत्त्व व्यक्त करता है।

समष्टि की इयत्ता व्यष्टि के लिए अपना महत्त्व ही नहीं रखती बल्कि उसके लिए आवश्यक भी है। व्यष्टि इसी समष्टि का हिस्सा है और यहीं वह अपना व्यक्तित्व बनाता है। अज्ञेय की कविताओं में समष्टि के महत्त्व की प्रतिष्ठा इस बात का संकेत है कि वे समाज को व्यक्ति लिए आवश्यक मानते हैं। 'नदी के द्वीप' कविता व्यक्ति और समाज के संबंधों को अभिव्यक्त करने वाली कविता है। इसमें द्वीप उस व्यक्ति का प्रतीक है जो समाज की पंक्ति में सम्मिलित होना चाहता है। वह कहता है-

"यह दीप अकेला
है गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।
यह मधु है: स्वयं काल की मौना का युग-संचय
यह गोरस: जीवन-कामधेनु का अमृत-पूत पय
यह अंकुर: फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयं स्वयंभू, ब्राम्ह, अयुत:
इसको भी शक्ति को दे दो।
यह दीप अकेला
है गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।"[४२]

अज्ञेय ने व्यक्ति को गर्व भरा और मदमाता माना है फिर भी उसे समाज से अलग नहीं रखा। यहां व्यक्ति और समाज की अभिव्यक्ति आधुनिक संदर्भ में हुई है। व्यक्ति की निजता को सुरक्षित रखते हुए समाज को सौंपा जाना अज्ञेय की नई विचार दृष्टि का प्रतीक है। अज्ञेय का मत है कि समाज हमें गढ़ने का कार्य करता है। तात्पर्य है कि समाज की गोद में व्यक्ति पलकर बड़ा ही नहीं होता अपितु वह उससे संस्कार पाकर सामाजिक भी बनता है। समाज में ही रहकर उसके

विचारों का जन्म होता है। उसकी जीवन शैली, कार्य पद्धति, आदि इसी समाज में तय होती है। संभवत: बड़ा होकर व्यक्ति किस प्रकार के व्यवसाय का चुनाव करेगा, यह भी समाज से निर्धारित होता है। तभी तो कवि कहता है-

"हम नदी के द्‌वीप हैं।

हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाए।

वह हमें आकार देती है।

हमारे कोण, गलियां, अंतरीप, उभार, सैकत कूल

सब गोलाइयां उस की गढ़ी हैं

मां है वह।

है, इसी से हम बने हैं।"[४३]

कविता की इन पंक्तियों में द्‌वीप रूपी व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि नदी रूपी समाज से ही अपना आकार ग्रहण करता है। उससे से वह आकार पाता है। यह समाज मां के समान है जिसके बिना बालक का पालन-पोषण दुष्कर है। व्यक्ति उसकी गोद में ही प्रेम और दुलार से बड़ा होता है। कविता की इन पंक्तियों में कवि ने समाज की सत्ता को स्वीकार ही नहीं किया वरन जीवन के लिए उसे आवश्यक भी माना है। वह जानता है कि निजता में जीवन का निर्वाह नहीं है। इसलिए वह समाज की ओर उन्मुख रहता है-

"अहं अंतर्गुहावासी! स्व-रति! क्या मैं चीन्हता कोई न दूजी राह?

जानता क्या नहीं निज में बद्ध होकर है नहीं निर्वाह?

क्षुद्र नलकी में समाता है कहीं बेथाह

मुक्त जीवन की सक्रिय अभिव्यंजना का तेज-दीप्त प्रवाह!

जानता हूं नहीं सकुचा हूं कभी समवाय को देने स्वयं का दान,

विश्व-जन की अर्चना में नहीं बाधक था कभी इस व्यष्टि का अभिमान!

कांति अणु की है सदा गुरु पुंज का सम्मान।

बना हूं कर्ता इसी से कहूं- मेरी चाह मेरी दाहमेरा खेद और उछाह:"[४४]

अज्ञेय का व्यक्ति समाज के दाय के लिए न केवल कृतज्ञ है। वह समाज को अपना कुछ सौंपने में संकोच नहीं करता है। अपनी निजता और लघुता की सफलता समष्टि के सम्मान से ही है। विश्व के कल्याण में वह कभी भी बाधक नहीं है।

अज्ञेय का व्यष्टि समाज की चिंता करने वाला व्यक्ति है। वह समाज की भलाई चाहता है। अत: इसमें हो रहे व्यवहार के प्रति भी सजग है। समाज में घटित हो रहे व्यवहारों से व्यक्ति उदासीन रह भी नहीं सकता क्योंकि वह उस का महत्वपूर्ण अंग है। वह इसीलिए समाज में घटित हो रहे अत्याचारों को दूर करना चाहता है। वह शोषण करने बाले शोषक वर्ग की जमकर निंदा करता है और उसके प्रति घृणा का गान करता है -

"तुम सत्ताधारी मानवता के शव पर आसीन

जीवन के चिर-रिपु विकास के प्रतिद्वंदी प्राचीन

तुम श्मशान के देव, सुनो यह रणभेरी की तान

आज तुम्हें ललकार रहा हूं सुनो घृणा का गान।"[४५]

इन पंक्तियों में अज्ञेय का क्रोध स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वे वर्ग भेद को भी समाज से मिटा देना चाहते हैं और उसे वर्ग भेद रहित बनाना चाहते हैं। कवि की दृष्टि में समाज में असमानता ठीक नहीं है। प्रत्येक के साथ वे न्याय चाहते हैं और समाज के प्रत्येक उस व्यक्ति के साथ हैं जो असहाय है, पीड़ित है और कमजोर है। अज्ञेय की सामाजिक दृष्टि समाज के उस हिस्से पर टिकती है, जहां वे व्यथित की व्यथा को समझते हैं। वे कहते हैं-

"यह जो कज्जल-पुता खानों में उतरता है

पर चमाचम विमानों को आकाश में उड़ाता है,

यह जो नंगे बदन दम साध पानी में उतरता है

और बाज़ार के लिए पानी निकाल लाता है,

यह कलम घिसता है, चाकरी करता है पर सरकार को चलाता है

उस की मैं व्यथा हूं।"[४६]

अज्ञेय ने अपनी कविता 'मैं वहां हूं' की इन पंक्तियों में समाज के मेहनतकश लोगों की ओर ध्यान दिलाया है। समाज में अव्यवस्था उन्हें स्वीकार नहीं है। वे ऐसे समाज में परिवर्तन के पक्षधर हैं। उनका कथन है कि "जिस समाज में मैं रहता हूं, उससे मैं संतुष्ट नहीं हूं और उसे बहुत कुछ बदलना चाहता हूं। उसमें बहुत सी विकृतियां हैं, जिन्हें मैं अस्वीकार करता हूं और मैं आशा करता हूं कि मेरी यह मनः स्थिति लगातार बनी रहेगी और उसका संस्पर्श मेरे पाठक को भी मिलेगा- और यह विश्वास भी कि समाज को मैं बदलता रह सकता हूं।"[४७]

अज्ञेय की कविताओं में, सामंती प्रवृतियों वाले समुदाय के प्रति एक आक्रोश दिखाई देता है। समाज की विद्रूपता उन्हें कचोटती है, पीड़ित करती है। समाज में उच्च पद पर आसीन लोग हैं उनसे वो फुफकार कर पूछते हैं कि-

"सांप! तुम सभ्य तो हुए नहीं-

नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।

एक बात पूंछू - (उत्तर दोगे ?)

तब कैसे सीखा डंसना - विष कहां पाया?"[४८]

इन पंक्तियों में कवि की सामाजिक भावना उभर कर दिखाई देती है। इन कविताओं के माध्यम से अज्ञेय की समाज के प्रति गहरी संवेदना प्रकट होती है। 'शोषक भैया' नामक एक अन्य कविता में भी इसी प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति हुई है-

"डरो मत शोषक भैया,

पी लो।

मेरा रक्त ताज़ा है

मीठा है

हृद्‌य है।

पी लो, शोषक भैया,

डरो मत।

शायद तुम्हें पचे नहीं -

अपना मेदा तुम देखो, मेरा क्या दोष है।

मेरा रक्त मीठा तो है, पर पतला या हलका भी हो

इसका जिम्मा मैं तो नहीं ले सकता,

शोषक भैया?"[४९]

कविता की इन पंक्तियों में कवि ने साधारण बोलचाल की भाषा में ही सामाजिक स्थिति पर कटाक्ष किया है। इस प्रकार की कविताओं में अज्ञेय की सामाजिक दृष्टि दिखाई देती है। उन्होंने समाज की कुरूप स्थिति पर भी दृष्टि डाला है। 'शरणार्थी' की कविता ८ 'हमारा रक्त' में वे कहते हैं -

"यह इधर बहा मेरे भाई का रक्त

वह उधर रहा

उतना ही लाल

तुम्हारी एक बहिन का रक्त,

बह गया मिली दोनों धारा

जा कर मिट्टी में हुई एक

पर धारा न चेती

मिट्टी जागी नहीं

न अंकुर उसमें फूटा

यह दूषित दान नहीं लेती -

क्योंकि घृणा के तीखे विश से आज हो गया अशक्त

निस्तेज और निर्वीर्य

हमारा रक्त"[५०]

समाज में हो रहे अत्याचारों को उनकी पैनी दृष्टि एक नए संदर्भ के साथ प्रस्तुत करती है। कविता की ये पंक्तियां समाज में हो रहे रक्तपात, खून-खराबे के दृश्य को प्रस्तुत करती हैं। साथ ही उसमें अज्ञेय की व्यंग्यात्मक दृष्टि की प्रधानता भी झलकती है। इतने रक्त से सिंचित होने के बाद भी 'धरती नहीं चेती और न ही उसमें कोई अंकुर फूटा' क्योंकि 'धरती दूषित रक्त का दान ग्रहण नहीं करती।' तात्पर्य यह है कि व्यक्ति एक दूसरे के खून का प्यासा हो गया है। उसकी मनुष्यता कहीं विलुप्त सी हो गई है। प्रेम का स्थान घृणा ने ले लिया है। वह अपने ही भाई-बंधुओं को मारने-काटने में लगा हुआ है और यह नहीं समझ पा रहा है कि हम सभी मानव ही हैं। हिंसात्मक समाज का यह दृश्य आज के वातवरण को भी हमारे समक्ष प्रकट कर देता है। वर्तमान में भी समाज में कहीं न कहीं नरसंहार का यह आतंक देखने को मिलता ही रहता है। आतंकवाद की क्रूरता से आज सभी परिचित हैं। अज्ञेय की कविता 'गाड़ी रुक गई' में भी इसी प्रकार की संवेदना प्रकट हुई है-

"रात गाड़ी रुक गई वीरान में।

नींद से जागा चमक कर सुना

पिछले किसी डिब्बे में किसी ने

मार कर छुरा किसी को दिया बाहर फेंक

रुकी है गाड़ी- यहीं पड़ताल होगी।

न जाने कौन था वह

पर हृदय ने तभी साखी दी

रात में कोई अभागा मार बैठा छुरा अपने ही हृदय में

स्वयं अपने को उठाकर फेंक बैठा

दनदनाती बढ़ रही कुल मनुजता की रेल से।"[५१]

अज्ञेय की कविता 'शरणार्थी'-७ से उद्धृत इन पंक्तियों में समाज की भयावह स्थिति की अभिव्यक्ति हुई है। समाज के सांप्रदायिक रूप को अज्ञेय ने अपनी तार्किक दृष्टि दी है। इन कविताओं की रचना सन् १९४७ में हुई जब भारत स्वतन्त्र हुआ। अज्ञेय की अन्वेषी दृष्टि ने समाज की तत्कालीन यथास्थिति को अपनी कविता का रूप दिया। 'शरणार्थी' कविता में अभिव्यक्त हुए संवेदनाओं के संबंध में प्रसिद्ध साहित्यकार शंभुनाथ का कथन है- "१९४७ में जब हिंदुस्तान के असंख्य लोग भारत या पाकिस्तान में शरणार्थी बन गए थे- कत्लेआम मचा था, कविता की दुनिया में सिर्फ अज्ञेय थे, जिनकी विस्तृत नज़र इस वहशीपन की तरफ गई। उन्होंने उसी समय घृणा, वैर और हिंसा के उस रक्तरंजित खेल पर 'शरणार्थी' नाम से ११ कविताएं लिखीं।"[५२] अज्ञेय की इन कविताओं से यह भी पता चलता है कि वे केवल व्यक्तिवादी विचारों के पोषक नहीं थे वरन उनकी दृष्टि समाज को भी खंगालती है। उनके विचारों में इसलिए ही हमें ताजगी का अनुभव होता है क्योंकि वे सामान्य घटना को भी यथार्थ की दृष्टि देते हैं।

अज्ञेय की सामाजिक विचारों को व्यक्त करने वाली कविताओं में उनकी समाज के प्रति चिंता झलकती है। समाज में हो रही घटनाओं से वे विमुख नहीं है। समाज में हिंसक रूप का एक डर उनकी कविता 'वे फिर आएंगे' में दिखाई देता है जो उनकी सामाजिक दृष्टि की चेतना को इंगित करता है-

"लेकिन वे तो फिर आएंगे

फिर रौंदे जाएंगे खेत

ऊसरों में फिर झूमेंगे

बिस खोपड़े, संपोले

x x x x x

वे फिर आएंगे

सुंदर होंगे

सुंदर यानों पर सवार दिखेंगे

दस हाथ उनकी संवेदन भरी ऊंगलियों से

कर सकते होंगे सौ-सौ करतब

पर जबड़ों से उनके टपक रहा होगा

जो सर्प रक्त

वह जहां गिरेगा

मट्टी हो जाएंगी मानव कृतियां"[५३]

इस कविता में मानव समाज का एक वीभत्स रूप देखने को मिलता है। अज्ञेय समाज में इस प्रकार की हिंसा से आत्मपीड़ा झलकती है। शंभुनाथ ने इस कविता का उदाहरण देते हुए अपना मत प्रकट किया है -"अज्ञेय की सामाजिक चिंता के कुछ उदाहरण उनके जीवन काल के आखिरी कविता संग्रह 'ऐसा कोई घर अपने देखा है' (१९८६) से है।"[५४]

अज्ञेय की कविताओं के द्वारा यह स्पष्ट है कि उनमें समाजिकता की दृष्टि बहुत गहरी है। उनकी व्यक्तिवादी दृष्टि में समाज का हित भी निहित है। इस संबंध में अज्ञेय का कथन है- "पिछली दो पीढ़ियों ने मान लिया है कि व्यक्ति की चर्चा करना या व्यक्ति के लिए स्थान चाहना व्यक्ति वादिता है और समाज के विरुद्ध जाना है जबकि उस अच्छे व्यक्ति के बिना अच्छा समाज बन ही नहीं सकता।"[५५] अत: हम कह सकते हैं कि अज्ञेय की दृष्टि में समाज का अपना महत्त्व है।

(ग) वैयक्तिक एवं समष्टि का अंतर्द्वंद

अज्ञेय की कविताओं में एक प्रमुख स्वर व्यक्ति और समष्टि के मध्य अंतर्द्वंद है। जब हम व्यक्ति और समाज की बात करते हैं तब

प्रश्न यह उठता है कि क्या केवल व्यक्ति की ही एकनिष्ठ सत्ता है? क्या समाज की कोई सत्ता नहीं है? अथवा दोनों एक दूसरे से परे हैं या दोनों एक दूसरे के अविछिन्न अंग हैं। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति समाज का हिस्सा है। उसके बिना व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और बिना सामाजिक स्थिति के वह सामाजिक प्राणी भी नहीं माना जा सकता। अतएव हम कह सकते हैं कि समाज का आधार सामाजिक संबंध है और यह संबंध व्यक्तियों के मध्य पाया जाता है। यद्यपि जीव-जंतुओं में भी समाज होता है परंतु मनुष्य इन संबंधों के द्वारा एक संस्कृति का निर्माण करता है जो अन्य प्राणियों में नहीं होता। संस्कृति के संबंध में अज्ञेय का विचार है कि “संस्कृति वह सत्ता है जो कि उस में भाग लेने वाले सब लोगों को सिर्फ़ मिलाती ही नहीं है, उनमें यह बोध भी जगाती है कि हम एक हैं।”[५६] इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति संस्कृति के आधार पर समाज में अपना संबंध बनाता है और समाज में एक व्यवस्था स्थापित करता है। समाज का आधार व्यक्ति है और व्यक्ति का आधार समाज है। वस्तुत: व्यक्ति समाज की ही इकाई है। व्यक्ति के बिना समाज और समाज के बिना व्यक्ति का अस्तित्व संभव ही नहीं है। यदि व्यक्ति समाज की इकाई है तो समाज उन इकाइयों का समूह है।

समाज के आश्रय में व्यक्ति सामाजिक और संस्कारिक बनता है। अज्ञेय व्यक्ति के बनने में संस्कारों के योगदान को स्वीकार करते हैं। उनका मत है -“व्यक्ति अपने संस्कारों का पुंज भी है, प्रतिबिंब भी, पुतला भी; इसी तरह वह अपनी जैविक परम्पराओं का भी प्रतिबिंब और पुतला है- जैविक सामाजिक के विरोध में नहीं, उससे अधिक पुराने और व्यापक और लंबे संस्कारों को ध्यान में रखते हुए। फिर वह इस दाय पर अपनी छाप भी बैठता है, क्योंकि जिन परिस्थितियों से वह बनता है, उन्हीं को बनाता और बदलता भी चलता है। वह निरा पुतला निरा जीव नहीं है, वह व्यक्ति है, बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति।”[५७] व्यक्ति में विवेकशीलता है। वह अपनी बुद्धि के आधार पर समाज को भी गढ़ता है। समाज के प्रति अपने दायित्त्वों को निभाता है। अपने कर्तव्यों को निभाकर उसे आदर्श रूप देने में सहयोग करता है। इस तरह व्यक्ति

और समाज में एक पारस्परिक संबंध देखने को मिलता है। व्यक्ति और समाज के संबंध के विषय में अज्ञेय का मंतव्य है- "समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति कुछ दायित्व होता है। समाज जितना ही कम विकसित हो, उतना ही वह दायित्व अधिक स्पष्ट और अनिवार्य होता है- अविकसित समाज में विकल्प की गुंजाइश कम रहती है।"[५८] वास्तव में व्यक्ति और समाज का पारस्परिकता का संबंध माना जाता है परंतु अज्ञेय की दृष्टि में इन दोनों के संबंध में एक द्वंद दिखाई देता है।

व्यक्ति को अपने जीवन यापन के लिए समाज के द्वारा प्रदत्त व्यवस्था की आवश्यकता होती है। वह उसी व्यवस्था में जीता है। व्यक्ति स्वाधीन और विवेकशील प्राणी है इसलिए वह समाज की इस व्यवस्था को अपनाकर अपने जीवन को एक सुगठित आकार देता है। परंतु फिर भी ऐसी भी स्थिति आती है जब व्यक्ति और समाज के संबंधों में तनाव दिखाई देता है। अज्ञेय की दृष्टि इन संबंधों का अन्वेषण करती है। इस संबंध में उनका मत दृष्टव्य है- "व्यक्ति व्यवस्था में जीता है और व्यवस्थित जीवन उस की एक सामाजिक प्रेरणा है, लेकिन जो बात सिद्धान्त के रूप में रखने पर इतनी साधारण सी जान पड़ती है, जब हम चारों ओर देखते हुए उसकी व्यवहारिक परीक्षा करने लगते हैं तो पाते हैं कि सर्वत्र स्वाधीनता और व्यवस्था के बीच तनाव और संघर्ष की स्थिति है और कहीं कहीं तो इस संघर्ष में स्वाधीनता का पक्ष भी परास्त हो चुका है- बल्कि कहीं कहीं उसे बराबरी के संघर्ष का अवसर ही नहीं मिला।"[५९] वस्तुत: जब व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता में समाज को बाधा पाता है तो उसकी स्थिति तनावपूर्ण बन जाती है। उसे अपनी लघुता का एहसास होने लगता है और उसका मनोबल गिरने लगता है। तब कहीं उसमें विद्रोह की भावना भी जन्म लेने लगती है। अज्ञेय की कविता 'नहीं तेरे चरणों में' में यही भाव व्यक्त हुए हैं। वे कहते हैं -

"तोड़ मरोड़ फूल मैं अपने पथ में बिखराऊंगा

पैरों से फिर कुचल उन्हें मैं पलट चला जाऊंगा

देव! आऊंगा तेरे द्वार-

किन्तु नहीं तेरे चरणों में दूंगा वह उपहार!

क्यों मैंने भी सदा यही पाया है

सदा मुझे जो प्रिय था उस को तू ने ठुकराया है

देव! आऊंगा तेरे द्वार-

किन्तु नहीं तेरे चरणों में दूंगा वह उपहार!"[६०]

कविता की इन पंक्तियों में कवि के मन की कड़ुवाहट स्पष्ट दिखाई दे रही है। व्यक्ति में निराशा तो है परंतु वह हार में परिवर्तित नहीं होता। उसमें एक आक्रोश है जिससे उसे अपने मनोभावों को प्रकट करने का बल मिलता है। 'विश्वास' कविता में भी व्यक्ति की ऐसी ही संवेदना झलकती है-

"तुम्हारा यह उद्धत विद्रोही

घिरा हुआ है जग से पर है सदा अलग, निर्मोही!

जीवन सागर हहर-हहर कर उसे लीलने आता दुर्धर

पर वह बढ़ता है जाएगा लहरों पर आरोही!"[६१]

व्यक्ति समाज में रहकर भी अपने को अलग पाता है। समाज से उत्पन्न जीवन की कठिनाइयों से अन्तर्मन खिन्न है। समाज में अपना उचित स्थान न पाकर उसके मन में एक कसमसाहट है। इसका कारण यह है कि एक तरफ तो व्यक्ति समाज में रहता है दूसरी तरफ उसे अपनी स्वाधीनता छिनती सी प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति समाज के लिए भी ठीक नहीं काही जा सकती। एक स्वस्थ समाज के लिए व्यक्ति का सामर्थ्यवान होना अति आवश्यक है। इस संदर्भ में गांधी जी के विचार को प्रकट करते हुए अज्ञेय का कथन है -"गांधी जी मानते थे व्यक्ति ही समाज बनाता है। और अगर व्यक्ति पिलपिला होगा तो समाज भी पिलपिला होगा। समाज निर्भय नहीं होता, व्यक्ति निर्भय होता है, तब समाज में परिवर्तन आता है।"[६२] वस्तुत: अज्ञेय का व्यक्ति

समाज को अर्पित है। वह गर्व भरा अकेला दीप अवश्य परंतु उसका गर्व समाज को प्रकाशित करने में भी दिखाई देता है-

"मिटना स्वयं, बनाना जग को; जलना स्वयं, जलना जग को;

शोणित तक से सींच, स्वच्छ रखना उस स्वतन्त्रता के मग को"[६३]

'अखंड ज्योति' शीर्षक की यह कविता व्यष्टि का समष्टि के प्रति समर्पण का बोध कराती है। अज्ञेय की यह कविता स्वतन्त्रता के पूर्व १९३६ में रची गई थी। एक क्रांतिकारी के रूप में अज्ञेय कई वर्षों तक जेल में रहे। यदि उनमें समाज के प्रति श्रद्धा नहीं होती तो उनका यह क्रांतिकारी रूप संभव ही नहीं था। उनकी सामाजिक दृष्टि का आभास तो हमें यहीं से मिलने लगता है।

अज्ञेय का व्यक्ति समाज से असंपृक्त नहीं है। वह समाज का व्यक्ति है। स्व में सिमट कर उसका कल्याण संभव नहीं है। यह अवश्य है कि व्यक्ति की इयत्ता स्वतंत्रता चाहती है। वह अपना विलय समाज में नहीं कर सकती। यदि व्यक्ति का विलय समाज में हो गया तो व्यक्ति का अहित तो होगा ही साथ ही समाज की प्रगति में भी रुकावट उत्पन्न होगी। इसलिए अज्ञेय व्यक्ति का पूर्ण विलय समाज में नहीं होने देना चाहते। इसलिए ही इन दोनों अवधारणाओं में अंतर्द्वंद की स्थिति दिखाई देती है। अज्ञेय की कविता 'नदी के द्वीप' में समाज और व्यक्ति के मध्य अंतर्द्वंद और अंतर्संबंध दोनों दृष्टिगोचर होता है-

"किन्तु हम हैं द्वीप।

हम धारा नहीं है।

स्थिर समर्पण है हमारा।

हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के

किन्तु हम बहते नहीं है

क्योंकि बहना रेत होना है।

हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।

पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जाएंगे।

और फिर हम चूर्ण हो कर भी कभी क्या धार बन सकते?

रेत बन कर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।

अनुपयोगी ही बनाएंगे।"[६४]

इस कविता में अज्ञेय स्वीकार करते हैं कि समाज ने ही हमें गढ़ा है। उसी ने हमें आकार प्रदान किया है। द्वीप और नदी के प्रतीकों के माध्यम से दोनों में एक संघर्ष और सहयोग इंगित हुआ है। 'संघर्ष' कहने का तात्पर्य है कि द्वीप यह तो स्वीकार करता है कि नदी के द्वारा ही उसका निर्माण हुआ है, उसी के कारण उसने यह आकार पाया है किन्तु फिर भी उसका अपना एक पृथक अस्तित्व है जो नदी के अस्तित्व से भिन्न है। इसलिए अज्ञेय कहते हैं कि हमारा समर्पण स्थिर है किन्तु बहना हमें स्वीकार नहीं क्योंकि बहने से हमारा अस्तित्व ही मिट जाएगा। यहां अज्ञेय व्यक्ति और समाज का ऐसा संबंध स्वीकार करते हैं, जिनकी अपनी अलग-अलग पहचान है। फिर भी एक सामाजिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति को समाज के नियमों को स्वीकार करना पड़ता है। व्यक्ति को अपनी इच्छा पूर्ति के लिए समाज पर निर्भर भी रहना पड़ता है। अज्ञेय मानते हैं कि "व्यक्ति को स्वीकृति पाने के लिए किसी हद तक समाज की या उसकी मान्यताओं की ओर ध्यान देना पड़ेगा। वह किसी व्यक्ति के, या किसी दल के, नियम के आगे झुके न भी, तो भी यह तो उसे मानना ही होगा कि अन्य व्यक्तिगत अनुभव और दल का समष्टिगत अनुभव, उसकी निजी अनुभूति के साथ गहरा संबंध रखते हैं और उसका मूल्य आंकने के लिए अवश्य विचारणीय है।"[६५]

व्यक्ति के विकास में समाज की महत्वपूर्ण भूमिका होती है; इस सत्य से अज्ञेय भी इनकार नहीं करते। वे व्यक्ति और समाज में पारस्परिक निर्भरता का संबंध मानते हैं। उनका मत है कि व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है कि उसके आधारभूत मूल्यों की रक्षा हो जिसका वह स्वयं निर्माता है। समाज इन मूल्यों और नियमों को परिभाषित करने के साथ-साथ उनका नियमन करता है और इस प्रकार

समाज और व्यक्ति में अन्योन्याश्रिता का संबंध स्थापित होता है। तभी तो वे समाज के ऋण-भार से मुक्त भी नहीं है। अज्ञेय का मानना है कि व्यक्ति का स्पंदन और धमनियों में दौड़ रहा रक्त-वेग इसी समाज की अनुकंपा है। वे कहते हैं-

तुम्हीं ने दिया यह स्पंद

तुम्हीं ने धमनी में बांधा है लहू का वेग

यह मैं अनुक्षण जानता हूं।

गति जहां सब कुछ है, तुम धृति पारमिता

जीवन के सहज छंद

तुम्हें पहचानता हूं।

मांगों तुम चाहे जो : मांगोगे, दूंगा

तुम दोगे जो मैं सहूंगा।”[६६]

अज्ञेय की इस कविता में व्यक्ति का समाज के प्रति कृतज्ञता स्पष्ट दिखाई देती है। वास्तव में व्यक्ति समाज की ही इकाई है। व्यक्ति के निर्माण के लिए लिए समाज की भूमिका अहं होती है। परंतु व्यक्ति अपनी महत्ता को छोड़ नहीं पाता। वह कहता है -

“यह वह विश्वास नहीं जो अपनी लघुता में भी कांपा,

वह पीड़ा जिस की गहराई को स्वयं उसी ने नापा;

कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुंधलाते कड़ुवे तम में

यह सदा द्रवित चिर-अखंड अपनापा।

जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय

इसको भक्ति को दे दो:”[६७]

व्यक्ति अपनी लघुता को, समाज की कुत्सा और अपमान को भी सहकर वह भक्ति को दे दिया जाना चाहता है। वह अपनी इयत्ता को

सुरक्षित रखकर भी समाज का होने अपने गर्व की दीप्ति को कम नहीं समझता। इस संबंध में चन्द्रकान्त महादेव बांदिवड़ेकर का कथन उचित ही है- "अज्ञेय की वस्तुत: यही कविता समाज और व्यक्ति के संबंधों की सच्ची व्याख्या करती है। 'नदी के द्वीप' को कुछ अनावश्यक रूप में अधिक गंभीर रूप में लिया जाता है। वस्तुत: 'नदी के द्वीप' व्यक्ति की सीमाओं का संकेत करतीं हैं और 'यह द्वीप अकेला' उसकी शक्ति और समाज की संपृक्ति का गहरा बोध कराने में समर्थ है।"[६८]

वर्तमान की आधुनिकता ने व्यक्ति और समाज के संबंधो में अनेकों परिवर्तन कर दिए हैं। वैज्ञानिकता के इस युग में बड़े-बड़े, उद्योग, चिमनियां, मोटर-कार और उनके धूएं ने व्यक्ति के जीवन को प्रभावित किया है। अज्ञेय इससे अनजान नहीं थे। उन्हों ने इस बदलते परिवेश को न केवल भांपा बल्कि कविता में भी प्रकट किया। 'हवाई यात्रा: ऊंची उड़ान' कविता में अज्ञेय ने समाज के बदलते रूप के परिदृश्य को दिहाया है-

"उतरो थोड़ा और:
घनी कुछ हो आने दो
रासायनिक धुंध के इस चीकट कंबल की घुटन:
मानव का समूह- जीवन इस झिल्ली में ही पनप रहा है!
उतारो थोड़ा और: धरा पर
हां वह देखा, लगते ही आघात ठोस धरती का
धमनी में भरी हो आया मानव रक्त और कानों में
गूंजा सन्नाटा संसृति का!"[६९]

अज्ञेय की यह कविता मानव और समाज के उस अंतर्द्वंद को व्यक्त करती है जो मशीनी युग की देन है। यहां 'रासायनिक धुंध के इस चीकट कंबल की घुटन' से ही मानव और समाज के बीच प्रदूषित रिश्ते की संवेदना प्रकट हो रही है। उद्योग और मशीनी संयंत्रों ने मानवीय रिश्तों में दरार सी डाल दी है। अज्ञेय का मत है कि आज का

व्यक्ति गर्व भरा दीपक न रहकर एक एक ऐसा इंसान है जिसका जीवन हर शान एक संघर्ष है। वे कहते हैं-

"इनसान है कि जनमता है
और विरोध के वातावरण में आ गिरता है:
उस की पहली सांस संघर्ष का पैंतरा है
उस की पहली चीख एक युद्ध का नारा है
जिसे वह जीवन भर लड़ेगा।
हमारा जन्म लेना ही पक्षधर बनना है,
जीना ही क्रमश: यह जानना है
कि युद्ध ठनना है
और अपनी पक्षधरता में
हमें पग पग पर पहचानना है
कि अब से हमें हर क्षण में, हर वार में, हर क्षति में,
हर दुख दर्द, जय पराजय, गति-प्रतिगति में
स्वयं अपनी नियति बन
अपने को जनना है।"[७०]

अज्ञेय की इस कविता में व्यक्ति के जन्म को युद्ध का नारा घोषित कर दिया गया है। अज्ञेय ने अपने प्रयोग शील दृष्टि से व्यक्ति और समाज के मध्य द्वंद और संघर्ष का कितना व्यंग्यात्मक रूप उभारा है। जब एक शिशु अपनी माता के गर्भ से जन्म लेता है तभी से वो अपने जीवन के लिए संघर्ष करने लगता है। यह जीवन उसके लिए एक युद्ध है और उसे लड़कर ही इससे पार पाया जा सकता है। हम सभी यह अनुभव करते हैं कि किसी न किसी आवश्यकता को लेकर हम सुबह से शाम तक जूझते हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज के संबंधों को अपनी अन्वेषणात्मक दृष्टि से

पहचानने की चेष्टा की है। साथ ही इन दोनों के बीच रिश्तों के उतार और चढ़ाव को भी समझा है। इसी प्रकार की संवेदना हमें 'सागर मुद्रा' की कविताओं से प्राप्त होती है। दृष्टांत स्वरूप 'अभागे गा' कविता में कवि कहता है -

जीता है ?

आस-पास सब कुछ इतना भरा-पुरा है

और बीच में सब रीता है?

-गा!"[७१]

अज्ञेय ने कविता की इन पंक्तियों में व्यक्ति को रीता ही बताया जबकि उसके आस-पास किसी भी साधन की कमी नहीं है। सब सुख-साधनों के बीच भी वह नितांत अकेला है। इससे यह ज्ञात होता है कि समाज से व्यक्ति का संबंध कहीं न कहीं अलग पड़ गया है। पर फिर भी व्यक्ति का समाज से विछोह नहीं होता। अज्ञेय अपने अंतिम काव्य संग्रह 'ऐसा कोई घर आपने देखा है' कहते हैं कि 'वे फिर आएंगे और धरा को रत्न प्रसू बनाएंगे'-

"लेकिन

फिर आऊंगा मैं भी

लिए झोली में अग्निबीज

धारेगी जिसको धरा

ताप से होगी रत्नप्रसू।"[७३]

वस्तुत: अज्ञेय की वैयक्तिक चेतना समाज को छोड़कर अपना स्थान ढूंढने प्रयास नहीं करती। इतना तो है कि वे व्यक्ति का अबाधित विकास चाहते हैं परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे समाज के विरुद्ध हैं। वे मम से ममेतर में विश्वास करते हैं। समाज और व्यक्ति का संबंध परस्परिक प्रेम और सौहार्द्य पर टिका है जिससे अज्ञेय भी इनकार नहीं करते। एक दूसरे का सहयोग दोनों के स्वतंत्र विकास में

सहायक है। यह स्वतन्त्रता केवल व्यक्ति के लिए ही नहीं बल्कि समाज के लिए भी आवश्यक है। इस संबंध में अज्ञेय का कथन लक्षणार्थ है- "व्यक्ति सत्ता पर बल किसी भी तरह बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के विरुद्ध नहीं जाता; बल्कि वह आदर्श इकाई द्वारा प्रस्तावित शाश्वत अभिमूल्य है। बहुजन के हित और सुख के लिए एक इकाई के सुख का स्वेच्छित उत्सर्ग और विलय तो वास्तव में व्यक्ति स्वतन्त्रता की सच्ची और सम्पूर्ण परिभाषा करता है। मेरी स्वतन्त्रता एकांत मेरी नहीं बल्कि ममेतर की स्वतन्त्रता है; दूसरे के मुकुर में ही मैं अपनी स्वतन्त्रता को और स्वयं अपने को पहचानता हूं। यह मानव के व्यक्ति के विवेक की पहुंच की पराकाष्ठा है।"[७४] अज्ञेय के इस कथन से स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि सभी का सुख देखती है। वे समाज के दुख को अपना समझते हैं और सभी को दुख से मुक्त रहने की कामना करते हैं-

"दुख सबको मांजता है

और - चाहे वह स्वयं को मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु -

जिन को मांजता है

उन्हें यह सीख देता है कि सब को मुक्त रखें।"[७६]

इस कविता के संदर्भ में डॉ संतोष कुमार तिवारी का कथन है "निकट से दुख को जानना-समझना-भोगना वस्तुत: समष्टि से जुडने की प्रक्रिया है और इस भावना का हृदय में दृढ़ होना है कि दूसरे इस दुख से अधिक मुक्त रहें, यही 'जीवन को मांजना' है।"[७७] वस्तुत: अज्ञेय की कविताओं में प्रेम, करुणा, दुख- दर्द आदि मानवीय भावों की अभिव्यक्ति हुई हैं। अत; उन्हें केवल व्यक्तिवादी समझना और मान लेना उचित नहीं होगा। वे व्यष्टि से समष्टि के विकास को संभव मानते हैं। दोनों का संबंध मूल्यों पर आधारित है जिसका प्रतिष्ठाता व्यक्ति है। यद्यपि व्यक्ति को समाज के अंतर्विरोधों का सामना करना पड़ता है परंतु इससे उनके मध्य संबंध में कोई विरोध नहीं होता।

--****--

संदर्भ सूची

लेखक/संपादक पुस्तक पृष्ठ संख्या

१- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २३३

२- डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल हिन्दी शब्द कोश, ८०५

३- डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल हिन्दी शब्द कोश, ७६४

४- डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल अंग्रेज़ी-हिंदी शब्दकोश, ५०७

५- Catherine Soanes, with Sara Hawker, and Juliya Elliott, Pocket Oxford English dictionary, 669 /tenth

६- डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल अंग्रेज़ी-हिंदी शब्दकोश, ७१३

७- Catherine Soanes, with Sara Hawker, and Juliya Elliott, Pocket Oxford English dictionary, 865

८- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २१५,२१६

९- रमेश चंद्र शाह, वागर्थ का वैभव, ५३

१०- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, १६१

११- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अज्ञेय, ६५

१२- डॉ॰ केदार शर्मा, अज्ञेय की जीवन दृष्टि, १६

१३- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २९५

१४- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ३६

१५- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, ९८

१६- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, ९२

१७- अज्ञेय, सदानीरा-१, १७२

१८- क्रिस्टोफर कॉडवेल, विभ्रम और यथार्थ, १५५

१९- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ३८

२०- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, १००

२१- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, १००

२२- रमेश ऋषिकल्प, अज्ञेय की कविता: प्रयोग और परंपरा, ५८

२३- मस्तराम कपूर, अस्तित्ववाद से गांधीवाद तक, ५५,५६

२४- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी बार, ३५

२५- अज्ञेय, सदानीरा -१, १२९

२६- अज्ञेय, सदानीरा -१, १५६

२७- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, १४२

२८- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी बार, ६८,६९

२९- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, १४८,१४९

३०- अज्ञेय, सदानीरा भाग- १, १७३,१७४

३१- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी बार, ९५

३२- डॉ॰ श्याम सुंदर मिश्र, अस्तित्ववाद और साहित्य, ९२

३३- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २१३, २१४

३४- अज्ञेय, सागर मुद्रा, ७७

३५- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २३५

३६- अज्ञेय, सदानीरा-१, २९६

३७- अज्ञेय, सदानीरा-२, २२८

३८- डॉ॰ गणेश शंकर पांडेय, समाजशास्त्र के सिद्धान्त, ५६

३९- डॉ॰ गणेश शंकर पांडेय, समाजशास्त्र के सिद्धान्त, ५७

४०- अज्ञेय, साहित्य, संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया, ४५,४६

४१- क्रिस्टोफर कॉडवेल, विभ्रम और यथार्थ, १३७

४२- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ६१

४३- अज्ञेय, सदानीरा-१, २५२

४४- अज्ञेय, सदानीरा-१, २२१

४५- अज्ञेय, सदानीरा-१, १५०

४६- अज्ञेय, सदानीरा-१, २८४

४७- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २५९,२६०

४८- अज्ञेय, सदानीरा-१, २८२

४९- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ४१

५०- अज्ञेय, सदानीरा-१, २३१,२३२

५१- अज्ञेय, सदानीरा-१, २३०

५२- शंभुनाथ, कवि की नई दुनिया, २१

५३- अज्ञेय, ऐसा कोई घर अपने देखा है, २७,२८

५४- शंभुनाथ, कवि की नई दुनिया, २२

५५- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २०५

५६- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, १३०

५७- अज्ञेय, आत्मनेपद, ५६

५८- अज्ञेय, साहित्य, संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया, ४३

५९- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, १५९

६०- अज्ञेय, सदानीरा-१, १३६,१३७

६१- अज्ञेय, सदानीरा-१, १५७

६२- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, २०६

६३- अज्ञेय, सदानीरा-१, १६२

६४- अज्ञेय, सदानीरा-१,२५२

६५- अज्ञेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य, ४४

६६- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ११

६७- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ६१,६२

६८- चन्द्रकान्त महादेव बांदिवड़ेकर, अज्ञेय की कविता: एक मूल्यांकन, १०२

६९- अज्ञेय, सदानीरा-१, ३०४

७०- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी बार, ४१

७२- अज्ञेय, सागर मुद्रा, ५८

७३- अज्ञेय, ऐसा कोई घर आपने देखा है, ७०

७४- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, १७०

७५- अज्ञेय, सदानीरा-१, २४९

७६- डॉ॰ संतोष कुमार तिवारी, अज्ञेय से अरुण कमल, ४८

चतुर्थ अध्याय

अज्ञेय का काव्य: सौंदर्य बोधीय दृष्टि

किसी वस्तु, पदार्थ, या विचारों के प्रति मुग्ध होना उस वस्तु, पदार्थ, या विचारों के सौंदर्य पर निर्भर करता है। सौंदर्य का अनुभव मानव जीवन को सदा से आकर्षित करता रहा है। सौंदर्य का ज्ञान हमें हमारी इंद्रियां करातीं हैं। इनसे होकर सौन्दर्य हमारे मन तक पहुंचता है। यह सौंदर्य हमें रंग, रूप, आकार, स्पर्श और प्रिय लगने वाले व्यवहारों से प्राप्त होता है। व्यवहारों में भी तभी सौंदर्य होता है जब वे मधुर हों अन्यथा रूप, रंग, वर्ण की सुंदरता भी कुरूप लगती है। कहने का आशय यह है कि सुंदर वही होता है जिसकी हम कामना करते हैं। हमारी चेतना में प्रसन्नता, इच्छा, आनंद, ईर्ष्या, उल्लास, प्रेम, वात्सल्य आदि भावनाएं जागती हैं। वस्तुत: सौंदर्य को समझने के लिए उसकी अवधारणा को समझना समीचीन है।

प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ हरदेव बाहरी के शब्दकोशानुसार 'सौंदर्य' का तात्पर्य है- 'सुंदरता', 'खूबसूरती'।'[१] अंग्रेजी में 'सौंदर्य' का अर्थ 'beauty'[२] है। यह सौंदर्य का साधारण पर्याय है। उदाहरणत: प्राय: हम कहते हैं कि यह फूल बहुत सुंदर है या वे पक्षी बहुत सुंदर हैं। सुंदरता देखने वाले की आंखों पर भी निर्भर करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सौंदर्य को देखने और परखने की अपनी-अपनी दृष्टि होती है। एक ही वस्तु किसी की दृष्टि में सुंदर हो सकती है तो किसी की दृष्टि में असुंदर, किसी को प्रिय तो वही किसी को अप्रिय लग सकती है। पंचतंत्र में भी कहा गया है-

"किमप्यस्ति स्वभावेन सुंदरम् वाप्यसुंदरम्।

यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुंदरम्॥

(कोई भी वस्तु स्वभाव से न तो सुंदर है और न असुंदर। जिसे जो अच्छा लगे उसे वही सुंदर है) उदाहरण के लिए एक ही रंग की वस्तु

कई लोगों को सुंदर लगती पर कुछ लोगों को वह रंग थोड़ा भी नहीं भाता।"[3]

लांगफ़ेलो सौंदर्य को उसकी सार्थकता के आधार पर परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार- "उपयोगिता ही सच्चा सौंदर्य है।"[४]

साहित्य में सौंदर्य का संबंध सौंदर्यशास्त्र से है जिसे अंग्रेजी में 'एस्थेटिक्स' (Esthetics) कहते हैं। "सौंदर्यशास्त्र (Esthetics) का नाम देने वाले जर्मन विद्वान बौंमगार्टन थे। इन्होंने काव्य और कलाओं में निहित तत्व को सौंदर्यशास्त्र (Esthetics) कहा। सौंदर्यशास्त्र के इतिहास में उनका नाम इसलिए उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने सौंदर्य और कला का क्रमबद्ध विवेचन करने वाले शास्त्र को सौंदर्यशास्त्र की संज्ञा दी।"[५]

डॉ॰ राजेंद्र मिश्र के अनुसार "सौंदर्य शास्त्र हिंदी में 'एस्थेटिक्स' शब्द का पर्याय है इस शब्द का मूलाधार ग्रीक भाषा का 'अटोटिकौज' है, जिसका अर्थ ऐन्द्रिक सुख की चेतना है।"[६] इस अवधारणा के अनुसार सौंदर्य से हम सुख का अनुभव करते हैं। कान, घ्राण, जिव्हा, त्वचा आदि हमारी इंद्रियां क्रमश: स्वरमाधुर्य, गंध, स्वाद, संस्पर्श के सौंदर्य की चेतना से संबन्धित होती हैं।

सौंदर्य को परिभाषित करते हुए डॉ॰ रामविलास शर्मा का कथन है, "प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनंददायक गुण का नाम सौंदर्य है।"[७] इस परिभाषा के अनुसार सौंदर्य सर्वथा आनंददायी होता है। यह सौंदर्य प्रकृति के विभिन्न रूपों में, मानव द्वारा बनाई गई कलाकृतियों में और साहित्यिक विचारों में विद्यमान रहती है। हमारे समक्ष एक प्रश्न के रूप में यह भी है कि प्रकृति, मानव जीवन तथा ललित कलाएं सदैव सुख ही नहीं देती। उदाहरण के रूप में दुखांत काव्य, नाटक, आदि भी कुरूप या असुंदर हो सकते हैं। परंतु रामविलास शर्मा इस आपत्ति का उत्तर देते हैं- " कला में कुरूप विवादी स्वरों के समान हैं जो राग के रूप को निखारते हैं। वीभत्स का चित्रण देखकर हम उससे प्रेम नहीं करने लगते; हम उस कला से प्रेम करने लगते हैं जो हमें वीभत्स से घृणा करना सिखाती है।"[८] कहने का अर्थ है कि सौन्दर्य का कार्य सुख प्रदान करना है। वस्तुत: सौंदर्यशास्त्र का

अध्ययन दर्शन के एक अंग के रूप में होता है। सौंदर्यशास्त्र सौंदर्य और उसकी अनुभूतियों का व्यापक वर्णन करता है। यह मानव के जीवन में, कलाओं में और प्रकृति में निहित सौंदर्य की व्याख्या करता है।

सौंदर्य की सत्ता के विषय में एक प्रश्न यह भी है कि सौंदर्य बाह्य होता है या आंतरिक। तात्पर्य यह है कि सौंदर्य आत्मगत है या वस्तुगत। डॉ॰ भगीरथ मिश्र के अनुसार- "सौंदर्य के दो पक्ष हैं- एक बाह्य और दूसरा आंतरिक। बाह्य सौंदर्य इंद्रियों को प्रभावित करता है और आंतरिक सौंदर्य मन को, चेतना और आत्मा को। एक सुंदर स्त्री की मुखाकृति, रूप, रंग, आंखों की चमक, भौहों का कटाव, सभी अंगो की सुडौल आकृति, हमारी आंखों को मुग्ध कर लेती है; परंतु यही उसका व्यवहार कठोर, वाणी कर्कश और हृदय संकीर्ण और स्वार्थी तथा प्रवृत्ति लोभी और क्रोधी होती है, तो क्षण भर में वह सारा बाह्य सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। उसका शारीरिक आकर्षण व्यर्थ हो जाता है, परंतु यदि बाह्य सौंदर्य के साथ-साथ मन और हृदय तथा व्यवहार का भी सौंदर्य मिल जाता है, तो वहां सौंदर्य मन पर स्थाई प्रभाव डालता है।"[९] इनके अनुसार मन का सौंदर्य ही स्थायी होता है।

दार्शनिकों में सौंदर्य की सत्ता को लेकर दो विचार मिलते हैं। एक तो यह कि सौंदर्य का स्थान आत्मा है अर्थात सौंदर्य आत्मनिष्ठ है जिसका संबंध हमारे मन या चेतना से है। प्लेटो, हीगल, आदि ने सौंदर्य की सत्ता को मानव मन के भीतर ही माना हैं। डॉ॰ मुकेश गर्ग ने भाववादी मतों का उल्लेख करते हुए लिखा है- "सभ्यता और संस्कृति का जन्म और विकास, चेतना या ज्ञान की कृपा से हुआ है। हमारा अनुभव, हमारा सौंदर्य-बोध हमारी चेतना में निहित है। चूंकि चेतना शाश्वत है अत: सौंदर्यानुभूति का स्वरूप और सौंदर्य के मान भी शाश्वत हैं।"[१०] इस दृष्टि से भाववादी चिंतन में आत्मा या चेतना को प्रमुखता दी जाती है। चेतना ही पदार्थों के उत्पन्न होने के कारण हैं। परंतु भाववादी विचारों पर आपत्ति भी उठाई जाती है कि सौंदर्य की सत्ता आत्मा में न होकर वस्तुओं में होती है। इस संबंध में रामविलास शर्मा का मत है कि- "प्लेटो से लेकर हेगल तक यूरोप के अनेक प्रमुख दार्शनिक यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते रहे हैं कि सौंदर्य की सत्ता सुंदर वस्तु से पृथक

है। प्लेटो के लिए संसार की सुंदर वस्तुएं परोक्ष सौंदर्य सत्ता का प्रतिबिंब मात्र है।"[११] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सौंदर्य की आत्मगत सत्ता को नकराते हुए सौंदर्य की वस्तुवादी सत्ता पर बल दिया हैं। उनके अनुसार "सौंदर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है मन के भीतर की वस्तु है। यूरोपीय कला समीक्षा की यह एक बड़ी ऊंची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है। पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़झाले के सिवा कुछ नहीं है। जैसे वीर कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं वैसे ही सुंदर वस्तु से पृथक सौंदर्य कोई पदार्थ नहीं। कुछ रूप रंग की वस्तुएं ऐसी होती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं कि भावना के रूप में परिणत हो जाते हैं। हमारी अंतस्सता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है।"[१२] अत: शुक्ल जी सौन्दर्य के अंदर बाहर के भेद को व्यर्थ मानते हैं।

मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र सौंदर्य की आदर्शवादी सत्ता नहीं मानता। कुंवरपाल सिंह ने 'सोवियत एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एस्थेटिक्स' का संदर्भ देते हुए मार्क्सवादी सौंदर्य के विषय में लिखा है -"मार्क्सवाद मानता है कि प्रकृति और उसके अन्य उपकरण अपने आप में न सुंदर हो सकते हैं और न असुंदर। सौंदर्य की भावना तो मनुष्य में ऐतिहासिक परिस्थितिथियों के फलस्वरूप पैदा होती है। विषयीगत आदर्शवाद के विपरीत मार्क्सवादी इस बात को स्वीकार करते हैं प्रकृति सौंदर्य की भावना तो चेतना की विषयीगत अवस्था ही नहीं बल्कि प्रकृति वस्तुओं और मनुष्य के सामाजिक जीवन में प्राप्त निश्चित विषयगत गुणों के कारण होती है।"[१३] अत: मार्क्सवादी सौंदर्य को वस्तुगत रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार सौंदर्य की सत्ता को लेकर दार्शनिकों में वस्तुवाद और भाववाद दो दृष्टि मिलती हैं।

कभी-कभी सौंदर्य को विलासिता के रूप में भी देखा जाता है जैसा कि रीतिकालीन और छायावादी कविताओं में प्राय: मिलता है। परंतु एक साहित्यकार के रूप में सौंदर्य के संबंध में अज्ञेय इसे केवल विलासिता नहीं मानते बल्कि उनकी दृष्टि में सौंदर्य ऐसे भाव हैं जिसमें दूसरों के कल्याण की भावना होती है। उनका कथन है "एक सौंदर्योपासना होती है जो वास्तव में भाव-विलासिता होती है। 'मेरे मन में करुणा उपजी:

अहा-हा, देखी मेरी करुणा कितनी सुंदर है!' लेकिन इसलिए सभी सौंदर्यबोध को विलासिता ठहरा देना अन्याय भी है, मूर्खता भी: सभी भावों को आत्म-मुग्ध मान लेना मूर्खता भी है और क्रूरता भी। ऐसे भाव होते हैं जो दूसरों की ओर बहते हैं, ऐसे भाव होते हैं जिसमें दूसरों से साझा करने की, अपने को संपूर्णतया बल्कि सम्पूर्णतर रूप से दूसरों को दे देने की एक अनिवार्य प्रेरणा होती है। ऐसे ही भाव सम्प्रेषण का सेतु बनाते हैं और ऐसा हर सेतु सुंदर भी, मूल्यवान भी। (और, हां, कल्याणमय भी, और टिकाऊ भी।) और ऐसे सौंदर्य के साथ जुड़ने की चाहना, उसकी क्षमता, विलासिता नहीं, मानवता का एक अमूल्य गुण है।"[१४] अत: सौंदर्य के प्रति झुकाव मनुष्य का नैसर्गिक गुण है।

वस्तुत: सौंदर्य के प्रति दृष्टि अलग-अलग हो सकती परंतु इतना तो है कि सौंदर्य के प्रति हर मानव आकर्षित होता है। फिर कवि तो सौंदर्य को अपनी कविता में बांधता है। इस संबंध में आचार्य शुक्ल उक्ति सौंदर्य और कवि के सम्बन्धों का सटीक वर्णन करती है- "कवि की दृष्टि तो सौंदर्य की ओर जाती है चाहे वह जहां हो- वस्तुओं के रूप-रंग में अथवा मनुष्यों के मन में, वचन और कर्म में। उत्कर्ष-साधन के लिए, प्रभाव की वृद्धि के लिए, कवि लोग कई प्रकार के सौंदर्यो का मेल भी किया करते हैं। राम की रूप माधुरी और रावण की विकरालता भीतर का प्रतिबिंब-सी जान पड़ती है। मनुष्य के भीतरी-बाहरी सौंदर्य के साथ चारों ओर की प्रकृति के सौंदर्य को भी मिला देने से वर्णन का प्रभाव कभी-कभी बहुत बढ़ जाता है। चित्रकूट ऐसे रम्य स्थान में राम और भरत ऐसे रूपवानों की रम्य में अंत: प्रकृति की छटा का क्या कहना है।"[१५] इससे स्पष्ट है कि कवि कहीं से भी सौंदर्य को ग्रहण कर अपने काव्य में स्थान देता हैं।

अज्ञेय भी ऐसे कवियों में से हैं जिनकी विचार और दृष्टि का सौन्दर्य उनकी कविताओं में दिखाई देता है। सौंदर्य बोध हर काल के कवियों में दिखाई देता है। छायावादी कवियों में भी सौंदर्य की भावुकता का एक विकसित रूप दिखाई देता है। परंतु अज्ञेय के काव्य में सौंदर्य का पुष्ट रूप दिखाई देता है। इस संबंध में रामदेव शुक्ल का कथन ध्यातव्य है- "परिपक्व दृष्टि सम्पन्न कलापारखी का सौंदर्य बोध हिन्दी कविता को

अज्ञेय के पास आकार ही मिला छायावाद की अप्सरा को यथार्थ की धरती पर उतार कार उसका पार्थिव श्रृंगार करने और उसे पारखी दृष्टि के नैवेद्य का दान करने का काम अज्ञेय ने ही किया।"[१६] शुक्ल जी का यह कथन अज्ञेय के सौंदर्यबोध-दृष्टि को प्रकट करता है। अज्ञेय के सौन्दर्य बोधीय दृष्टि उनकी कविताओं में दृष्टिगत है। उनकी कविताओं में सौंदर्य की छटा हर कहीं दिखाई देती है चाहे वह प्रकृति का सौंदर्य हो, नारी का सौंदर्य हो, लोकजीवन का हो अथवा दर्शन का सौंदर्य हो।

क- प्रकृति संबंधी दृष्टि

प्रकृति मानव जीवन का आधार है। उसके सौंदर्य-मोह से हर कोई आकर्षित होता है और अज्ञेय के लिए तो वह उनकी सहचरी रही। उनका बचपन प्रकृति के साहचर्य में ही बीता। उन्होंने अपने जीवन के बहुत से अनुभव प्रकृति के निरंतर सानिध्य और उसके निरीक्षण से प्राप्त किया तथा उसके विविध रूपों से भी परिचित हुए।

यह विदित है कि अज्ञेय का जन्म कुशीनगर के पुरातत्व के खंडहरों में हुआ। पिता के पुरातत्वज्ञ विभाग में होने के कारण उनका बचपन एकांत और प्रकृति के साहचर्य में बीता अज्ञेय एक प्रकार से प्रकृति की गोद में पले बढ़े। अज्ञेय ने भी स्वीकार किया है कि "एकांत में बहुत रहा- जंगलों में, छोटी जगहों में- जहां पर्यवेक्षण की अपार सुविधा मिली। इसलिए बहुत-सी चीजों को, खासकर प्राकृतिक परिवेश में, मैंने ज्यादा बारीकी से देखा और अनुभव किया।"[१७] अज्ञेय का जीवन परिवेश ही प्रकृति है। परिवेश का प्रभाव से कैसे दूर रहा जा सकता है। व्यक्ति और परिवेश का घनिष्ठ संबंध है। परिवेश के प्रभाव के विषय में अज्ञेय का मत हैं- "परिवेश वह है जिसके बीच वह जीता है; जिससे वह प्रभावित होता है, जिसके दबावों-तनावों के बीच, उस की सर्जनात्मक प्रवृत्तियां रूप लेती हैं, पनपती हैं और विकसित होती हैं।"[१८] व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है, उससे प्रभावित अवश्य होता है। अज्ञेय के संबंध में भी यह सत्य है। प्रकृति का परिवेश में और उसके साहचर्य में उन्होंने

जीवन के सत्यों को अनुभूत किया और जिसे उनकी दृष्टि को यथार्थता भी प्राप्त हुई।

हमारे चारों ओर फैली प्रकृति के सौन्दर्य की छटा हमें अपनी ओर खींचती रहती है। जन्म के साथ ही प्रकृति और व्यक्ति एक दूसरे के सानिध्य में आते हैं और जीवनपर्यंत ये साथ बना रहता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि व्यक्ति का जीवन प्रकृति के बिना मुश्किल ही नहीं है बल्कि असंभव है। हम अपनी श्वास से लेकर भोजन, वस्त्र, निवास आदि सभी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति प्रकृति के माध्यम से ही करते हैं। प्रकृति ने मानव जीवन को संभव बनाया है। जल, वायु, अग्नि, भूमि, आदि सब प्रकृति की ही देन हैं। मनुष्य के जीवन-प्रारम्भ से वह प्रकृति के सौंदर्य से प्रभावित रहा। सूर्य देव, धरती माता, पवन देव, अग्नि देव ऐसे कितने ही उदाहरण हैं जो हमें व्यक्ति के साथ प्रकृति की घनिष्ठता का बोध कराते हैं। माता, पिता जैसे संबंधों के नाम से इनकी पहचान है। जब शिशु रोता है तब माता उसे 'चंदा मामा' को दिखाकर उसे शांत करती हैं। इससे सूरदास के कृष्ण का स्मरण होता है जब वे 'मैया मैं तो चंद्र खिलौना लेहौं' की मांग करते हैं। इस प्रकार प्रकृति सदैव मानव के साथ नितांत अपनी रही।

प्रकृति और साहित्य का सदा साथ रहा है। वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, आदि अनेक कवियों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है। अज्ञेय का महत्त्व प्रकृति को नई अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत करने में है। अज्ञेय और प्रकृति का साथ तो माता, सखा आदि के रूप में रहा। उन्होंने घास-फूस, फल-फूल, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी, सागर, रात-दिन और ऐसे अनेक प्राकृतिक उपादानों को न केवल उपमा के रूप में प्रयोग किया बल्कि उनके माध्यम से अपने हृदय की संवेदनाओं को भी प्रकट किया। अपनी रचनाओं में प्रकृति के नाना रूपों को चित्रित किया है। उनका प्रकृति के प्रति आत्मीयता का भाव प्रकट होता है। वे अपने सुख-दुख उसी बांटते प्रतीत होते है। प्रकृति उनकी भाई-बंधु है और वह उनके लिए व्यक्ति से बढ़कर हैं। वे कहते हैं-

"बंधु हैं नदियां: प्रकृति भी बंधु है

और क्या जाने कदाचित

बंधु

मानव भी।"[१९]

कविता की इन पंक्तियों में अज्ञेय का प्रकृति पर अधिक विश्वास हैं। नदी को मानव से अधिक अपना और विश्वसनीय मानते हैं। वर्तमान में रिश्तों में दूरियां, अविश्वास, ईर्ष्या-द्वेष आदि का स्थान अधिक महत्त्व रखने लगा है। अत: वे प्रकृति को अपने बंधु-बांधव के रूप में देखते हैं जिसके माध्यम से उन्हें जीवन जीने का सहारा प्राप्त हुआ। मनुष्य के बंधुत्व पर उन्हें संदेह है। बचपन से वे प्रकृति के बीच अधिक और लोगों के बीच कम रहे। संभवत: यही कारण था कि वे प्रकृति के इतना निकट थे।

अज्ञेय की आरंभिक कविताओं में छायावादी प्रवृत्तियों का प्रभाव दिखाई देता है। प्रकृति के विभिन्न सौंदर्यात्मक रूपों का वर्णन और उसका मानवीकरण जैसी छायावादी प्रवृत्तियां अज्ञेय की प्रकृति संबंधी कविताओं में भी दृष्टिगोचर होती हैं। 'अंतिम आलोक' कविता की कतिपय पंक्तियां दृष्टव्य हैं -

"संध्या की किरण परी ने उठ अरुण पंख दो खोले

कंपित-कर गिरि शिखरों के उर-छिपे रहस्य टटोले

देखी उस अरुण किरण ने कुल पर्वत-माला श्यामल

बस एक श्रृंग पर हिम का था कंपित कंचन झलमल।"[२०]

इस कविता की पंक्तियों में संध्या, परी, अरुण पंख, गिरि शिखरों, अरुण किरण आदि शब्दों के प्रयोग और कविता में लयात्मकता छायावादी प्रतीत होते हैं। संध्या के मानवीकरण से प्रकृति के सौन्दर्य को उकेरा गया है। प्रकृति के मानवीकरण का सौंदर्य छायावाद की भी विशेषता रही है। दृष्टांत के रूप में प्रकृति के सुकुमार कवि पंत की कविता 'प्रथम रश्मि' की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है जिसमें प्रात: का मानवीकरण हुआ है -

"प्रथम रश्मि का आना रंगिणी

तूने कैसे पहचाना ?

कहां कहां हे, बाल विहंगिनी !

पाया तूने यह गाना

सोई थी तू स्वप्न नीड़ में

पंखों के सुख में छिपकर

झूम रहे थे घूम द्वार पर,

प्रहरी से जुगनू नाना;"[२१]

अज्ञेय की प्रारंभिक कविताएं भले ही भावबोध, भाषा और शिल्प की दृष्टि से छायावादी हों परंतु उनकी रचनाओं में नवीनता दिखाई देती है। उनकी बाद की कविताओं और रचनाओं में इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता है। 'इत्यलम' और 'हरी घास पर क्षणभर' से उनकी कविताओं में नए भाव बोधों का विकास दिखाई देता। इत्यलम' की कविता 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' में कवि ने प्रकृति को जीवन से जोड़ा है और अपनी संवेदनाएं अभिव्यक्त की है। प्रकृति के सूखेपन को वर्षा हरा-भरा और सरस बना देती है। इसी को कवि ने प्रेम की वर्षा से अपने जीवन का परिवर्तन दिखलाया है-

"घन आकास में दिखा

x x x x x

वह आएगी -

मेरी ढांप लेगी नंग अपनी देह से बहते स्नेह से:

अभी रेत हूं पर हो जाऊंगा हरा गति-जीवित, भरा,

बालू धारा बन जाएगी- धारा आनी जानी है

पर मेरी तो वह नस-नस की पहचानी है-

वह आएगी:

खिंच जाएगी हिमगिरि से आसमुद्र

बांकी किन्तु एक अचूक जीवन की रेखा- जीवन बहता पानी है-

इन टूटे हुए कगारों में फिर जीती इन धारों की लंबी बे अंत कहानी है!"[२२]

इन पंक्तियों में बारिश से प्रकृति के हरेपन की बात की गई है तो दूसरी ओर जीवन की कहानी को भी प्रकट होती हैं। 'मेरी ढांप लेगी नंग अपनी देह से बहते स्नेह से' पंक्ति में कवि के प्रेम की कुंठा-भावना भी झलकती है। इसी तरह की संवेदना 'पानी बरसा' कविता में भी परिलक्षित है-

"ओठ को ओठ, वक्ष वक्ष -

ओ पिया पानी!

मेरा हिया तरसा।

ओ पिया पानी बरसा"[२३]

प्रकृति, कवि के सुख-दुख के साक्षी के रूप में उसकी कविताओं में उतर आती है। प्रकृति के उपादानों से वह अपनी भावनाओं को प्रकट करता है। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रकृति को एक नयी दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया है। 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य संग्रह में प्रकृति में विभिन्न रंग-रूपों के सौंदर्य के साथ नवीन शब्दों का भी सौंदर्य दिखाई देता है। नामवर सिंह का कथन है- "प्रकृति-केवल कुछ लोग यही जानते हैं कि चिड़ियों का चहचहाना, कोयल की बोली है लेकिन प्रकृति जितनी बहुरंगी है शायद किसी के पास उतने रंग नहीं, जितने प्रकृति के पास हैं। ये उनकी कविताओं में मिलेगा। अज्ञेय ने प्रकृति के चित्रण में ३४-३५ के दशक से लेकर अंत तक, अज्ञेय कैमरे की तरह से छवियों को लेने में भाषा का इस्तेमाल एक कविता हैं उनकी 'दूर्वाचल' ये सन् ४७ की है। पार्थव गिरि का उमंग आप याद रखें कि हिमाचल-हिमालय के कवि तुलसीदास जी रह चुके हैं और पंत ने भी कहा है। दूर्वाचल है गांव का

नाम। दूर्वा से भरा हुआ है मैं नहीं जानता, हिन्दी में किसी ने दूर्वाचल का शब्द का प्रयोग किया है।"[२४]

अज्ञेय प्रकृति और मानव के संबंध को वे वैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं और उसे नई व्याख्या देते हैं। जहां पुराने कवियों के लिए वायु ठंडदाई है, वहीं अज्ञेय वायु को उम्मीद से जोड़ देते हैं।

"मरण धर्मा है सभी कुछ किन्तु फिर भी बहो, मीठी हवा,

जीवन की क्रियाओं को तुम्ही तो तीव्र करती हो !

बहो, मीठी हवा, तुम बहती रहो,

पगली हवा, गति बढ़े जीवन की"[२५]

संसार की नश्वरता की बात करते हुए अज्ञेय वायु को जीवन की क्रियाशीलता से जोड़ते हैं जिससे उनकी वायु के प्रति नवीन सौंदर्य दृष्टि ज्ञात होती है। यतीन्द्र मिश्र का मंतव्य है- "प्रकृति के प्रति अज्ञेय का यह अनुराग इतना मर्मस्पर्शी और सहज रहा है बहुत सारी कविताओं से कुछ आंतरिक पंक्तियों को अलग हटाकर पढ़ने से एक नए ढंग का अर्थ वैशिष्ट्य देखने को मिलता है। प्रकृति की संवेदना को जितना विलक्षण और चाक्षुष रंग-रोगन अज्ञेय दे पाए हैं वह, उनके समकालीनों में मुश्किल से मिलती हैं।"[२६] अनेक प्राकृतिक दृष्टांत इनकी कविताओं में मिलते हैं जिनके सौंदर्य को अपनी प्रायोगिक दृष्टि देकर नए रूप में ढाल दिया है। उदाहरण के रूप में 'आज तुम शब्द न दो' कविता की निम्न पक्तियां दृष्टव्य हैं -

"तुम पर्वत हो अभ्र-भेदी शिला-खंडों के गरिष्ठ पुंज

चांपे इस निर्झर को रहो, रहो

तुम्हारे रंध्र-रंध्र से

तुम्हीं को रस देता हुआ

फूट कर मैं बहूंगा"[२७]

कवि के दृष्टि-सौंदर्य का यह उत्तम उदाहरण है जिसमें प्रकृति के सौंदर्य को व्यक्ति और समाज के अंतर-सम्बन्धों के रूप में प्रस्तुत किया है। समाज पाषाण के समान कठोर है फिर भी कवि उसी को रस देता हुआ फूट कर बहने की बात कर रहा है। पूर्व के कवियों ने पर्वत की कठोरता को ही देखा, उसकी अनेक उपमाएं भी दीं परंतु अज्ञेय उसकी कठोरता से ही रस की धार पाते हैं। इस कविता में शब्दों के प्रयोग में नवीनता दिखाई देती है। 'चांपे इस निर्झर को रहो' जैसे शब्दों का प्रयोग शायद ही किसी ने किया हो। इसी तरह की सामाजिक अभिव्यक्ति 'हवाएं चैत' की कविता में भी प्रकट हुईं हैं।

"बह चुकी हवाएं चैत की

कट गईं पूलें हमारे खेत की

कोठरी में लौ बढ़ाकर दीप की -

गिन रहा होगा महाजन सेंत की"[२८]

इस कविता में प्राकृतिक शीर्षक से शोषक वर्ग पर व्यंग्य साधा गया है। वस्तुत: बावरा अहेरी में अधिकांश रचनाएं प्रकृतिपरक हैं जो विचार की दृष्टि से अपना एक विशेष स्थान रखती हैं। वसंत की बदली, 'ये मेघ साहसिक सैलानी', शरद की सांझ के पंछी, 'वर्षांत', 'सांध्य तारा', आदि प्रकृति की कविताओं में अज्ञेय के विभिन्न विचारों की अभिव्यक्ति हुई है।

अज्ञेय की कविताएं प्रणयानुभूति के साथ भी प्रकट हुई हैं। प्रकृति तो सदा से कवियों के प्रेम की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। प्रकृति कवि के सुख में साथ हंसती प्रतीत होती है तो उसकी वेदना में उसकी पीड़ा भी बढ़ाती है। जैसे- सूरदास की प्रकृति जो कृष्ण के साथ शीतलता प्रदान करने वाली थीं, वही अब बिना कृष्ण के बैरिन बनकर गोपियों की विरह को बढ़ा देती हैं-

"बिनु गुपाल बैरिन भई कुंजै'।

तब वै लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै॥

वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलनि अलि गुंजै।

पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि सूट किरनि भानु बही भुंजै"[२९]

अज्ञेय के काव्य में प्रेम-चित्रण के लिए प्रकृति-चित्र भक्तिकाल या रीतिकाल से भिन्न रूप में प्रस्तुत होती है। उनकी प्रकृति नए सौंदर्यबोध के साथ दिखाई देती है। उन्होंने अपने प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के उपादानों का प्रयोग नई दृष्टि के साथ किया है। छायावादी रहस्यात्मकता से हटकर आधुनिक जीवन में प्रकृति के संपर्क को महत्त्व देते हैं-

"आओ बैठे

इसी ढील की हरी घास पर।

माली-चौकीदारों का यह समय नहीं है,

और घास तो आधुनातन मानव-मन की भावना की तरह

सदा बिछी है-हरी, न्यौतती, कोई आ कर रौंदे।

x x x x x x x x

चाहे बोलो, चाहे धीरे-धीरे बोलो, स्वागत गुनगनाओ,

हो प्रकृस्थ: तनो मत कटी-छंटी उस बाड़ सरीखी

नमो, खुल खिलो, सहज मिलो

अंत: स्मित, अंत: संयत हरी घास-सी"[३०]

वर्तमान परिवेश में व्यक्ति प्रकृति से दूर होता जा रहा है। शहरी सभ्यता ने व्यक्ति के जीवन में कृत्रिमता भर दी है। कवि शहरी जीवन से दूर प्रकृति के सानिध्य में हरी घास पर अपनी प्रिया के साथ संमय व्यतीत करना चाहता है। कवि प्रकृति को जीवन के निकट अनुभव करना चाहता है। इसलिए वो घास की तरह ही नमो, खुल खिलो, सहज मिलो की उपमा दे रहा है। वह प्रकृति के खुले और मुक्त स्वभाव को अपने जीवन में उतारना चाहता है। यहां अज्ञेय की प्रकृति के साथ नए

रिश्ते की स्थापना दिखाई देती है। यह उनकी वैज्ञानिक और प्रयोगशील दृष्टि को भी दर्शाता है। विश्वनाथ त्रिपाठी ने अज्ञेय के प्रकृति परिवीक्षण की दृष्टि के संबंध में उचित ही कहा है- "उनके आचरण में आभिजात्य और बड़प्पन था। यह बात उनकी कविताओं में भी भरपूर दिखाई पड़ती है। प्रकृति की मामूली-सी चीज दूब, पत्ती, लता-फूल, मिट्टी में पैठकर सौंदर्य देख लेना और दिखा देना कोई अज्ञेय से सीखे। वे विषमता के नहीं सुषमा के कलाकार हैं।"[३१] विद्यानिवास जी का यह कथन अज्ञेय की दौंडरी दृष्टि को प्रकट करता है।

आज के वातावरण में प्रकृति के लगातार दोहन से अज्ञेय विचलित भी दिखते हैं और इसकी चिंता उनकी कविताओं में भी दिखाई देती है-

"और भी नीचे

कट गिरे वन की चिरी पट्टियों के बीच से

नए खनि-यंत्र की

भट्ठी से उठे धुएं का फंदा।

नदी की घेरती सी वत्सल कुहनी के मोड़ में

सिहरते-लहरते शिशु-धान।

चलता ही जाता है यह

अंतहीन, अन-सुलझ

गोरख-धंधा"[३२]

प्रकृति के विनाश की चिंता उन्हें 'महावृक्ष के नीचे' काव्य संग्रह की कविता 'साल दर साल' में भी है जिसमें वे कहते हैं-

"आज उसकी फुनगी पर

बैठा है पहाड़ी काक:

रुक-रुक करता गुहार

कल उसे काट ले जाएंगे

लकड़हारों के

कुल्हाड़े, वसूले और आरे"[३३]

प्रकृति के दिन-प्रतिदिन हो रहे विनाश ने प्रकृति और मानव के बीच स्थापित संबंधों को भी प्रभावित किया है जिससे प्रकृति और मानव के रिश्ते और उनके मध्य स्थापित प्राकृतिक मान्यताएं भी बदली हैं। अज्ञेय को इस बात का भान है और इसलिए वे कहते हैं-

"सबेरे-सबेरे नहीं आती बुलबुल

न श्यामा सुरीली न फुटकी न दंहगल सुनाती है बोली;।

नहीं फूलसुंघनी, पतेना- सहेली लगती है फेरे।

जैसे ही जागा, कहीं पर अभागा अड़ड़ाता है कागा

कांय! कांय! कांय!"[३४]

ये पंक्तियां प्रकृति और मानव के संबंधों पर व्यंग्य करती प्रतीत होती हैं। पहले की तरह अब भोर की प्रथम किरणों के साथ ही चिड़ियों की चहचहाहट नहीं सुनाई देती। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई ने उनके आवास छीन लिए हैं जिससे मनुष्य और प्रकृति बीच मधुर संबंध अब दिखाई नहीं देते। इस संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी जी का कथन है कि- "नव विकसित मानवीय सभ्यता में अब पहले की तरह प्रकृति का एकछत्र राज्य नहीं है, नई व्यवस्था में प्रकृति, प्रविधि और मानव के बीच सानुपात संबंध विकसित करने होंगे, यह व्यंजना बराबर ऊपर आती है।"[३५] प्रस्तुत कथन में आज के पर्यावरण की समस्या दृष्टि गोचर होती है जहां मनुष्य जल, जंगल, जमीन को नष्ट करने में लगा हुआ है और यही कारण है कि नाना प्रकार की प्राकृतिक आपदाएं मुंह बाए खड़ी हैं। उदाहरण के रूप में "२५ मई २०१५ को नेपाल में आए भूकंप ने सब कुछ तहस-नहस कर दिया।"[३६] बाढ़ की समस्या प्रत्येक वर्ष हमारी आधुनिकता को चुनौती देती ही रहती है। परंतु अज्ञेय की जीवन में अगाध आस्था भी है जो उनके प्रकृति में दिखाई देती है-

"अगले बरस फिर

कहीं किसी गांठ में

दरार से

एक नई कोंपल

फूट आएगी

जिस पर

मंडराएगी

उतरेगी

पिद्दी-सी फूलचूही:

प्यार से जिद्द करती

गाएगी!"[३७]

अज्ञेय की यह आस्था प्रकृति से रस प्राप्त करती है जो मानव जीवन को भी सरसता देती है। कविता की इन पंक्तियों में उनकी वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकृति का निरीक्षण हुआ है। प्रकृति में उनकी यह वैज्ञानिकता उनके आत्मशोधी रूप में भी दिखाई देती है। झील, नदियां, सागर, वन आदि के माध्यम अज्ञेय आत्मान्वेषण करते दिखाई देते हैं-

"जब जब सागर में

मछली तड़पी-

तब तब हमने उस की गहराई को जाना।

जब जब उल्का

गिरा टूट कर -गिरा कहां ?-

हमने सूने को अंतहीन पहचाना"[३८]

'टेर रहा सागर' कविता की इन पंक्तियों में अज्ञेय का आत्म चिंतन दिखाई देता है। रूप दार्शनिकता उभर कर सामने आती है। उनकी कविताओं में 'वन में एक झरना बहता है' (चक्रांतशिला-२), 'घनी धुंध

से छाया निकली', 'चुप-चाप झरने का स्वर हम में भर जाए', 'बना दे चितेरे एक चित्र बना दे' आदि पंक्तियां और कविता इसी प्रकार के भाव-बोध व्यक्त करती हैं। जिनमें अज्ञेय का जीवन दर्शन भी परिलक्षित होता है। कवि की यह प्रयोगशील दृष्टि ही है कि वन का सन्नाटे में भी उनके भीतर संगीत वृंद आता है-

"मैं वन में हूं।

सब ओर घना सन्नाटा छाया है

तब क्वचित्

कहीं मेरे भीतर ही कोई संगीत वृंद आया है।"[३९]

अज्ञेय ने प्रकृति को प्रयोगशीलता और वैज्ञानिकता की दृष्टि से देखा, परखा। प्रकृति के बहुरंगी रंग को भी एक नए रंग के साथ प्रस्तुत किया। अज्ञेय ने अपनी रचनाओं 'इत्यलम', 'हरी घास पर क्षण भर', 'सागर मुद्रा', 'महावृक्ष के नीचे', 'नदी की बांक पर छाया' आदि में प्रकृति और उसके माध्यम से अपनी विभिन्न अनुभूतियों और संवेदनाओं को बड़ी बौद्धिकता और मार्मिकता के साथ प्रकट किया है। उनकी मृत्यु के पश्चात प्रकाशित रचना 'मरुथल' में प्रकृति का हरापन मरू में परिवर्तित दिखाई देता है। हरी बिछली घास का स्थान अब मरुभूमि ने ले लिया है। प्रकृति के उपादानों में शुष्कता परिलक्षित है -

"फिर बहकी हवा:

बालू की झील में उठी लहर।

फिर मिट गई छाया कोई

ऊंट की गड्डर की, गडेरिन की, मालिन, की, रानी की?

टूटा नीरव एक तारा/ टूटी

कड़ी मेरी अंतहीन कहानी की....

फिर पिपियाया वह अकुलाया परेवा

फिर निकल चले वे

छाया न छोड़ते

रातों-रात..."[४०]

'मरुथल': रात' शीर्षक की इस कविता में प्रतीत होता है कि अज्ञेय को अपने अंतिम दिनों की प्रतीति होने लगी थी। वस्तुत: अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति का परिवेश उनके जीवन के प्रारंभ से अंत तक उन्हें घेरे रहता है। जीवन का सौंदर्य उन्हें हरी घास से लेकर मरुथल तक में दिखाई दिया। प्रकृति उनके स्वभाव में ही रची बसी थी। विद्यानिवास मिश्र ने अज्ञेय के स्वभाव विनम्रता को प्रकृति से प्रदत्त माना है। वे कहते हैं- वे बड़ी सुरुचि से रहते थे, पर उस सुरुचि में कहीं भी भड़कीलापन नहीं था, अतिरेक नहीं था न था वहां बनाव, बड़ी सादगी थी, बड़ी सहज थी उनकी नफासत क्योंकि वह संतुलित थी प्रकृति के परिवेश से। वे घर में रहते हुए भी वन में रहते और वन में रहते हुए भी घर में।"[४१] अत: अज्ञेय को प्रकृति का सौंदर्य सदा ही लुभाता रहा। साथ ही प्रकृति के साहचर्य ने उनके जीवन को भी एक आकृति दी। जीवन के प्रारंभ से ही प्रकृति उनके मन में प्रवेश कर गयी जो आजीवन उनकी संगिनी बनी रही। हरी बिछली घास से मरुथल तक उनके जीवन का अभिन्न अंग रही। प्रकृति के सौंदर्य का शायद ही कोई रंग उनसे अछूता रहा। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि प्रकृति के अन्वेषण से उनके विचार तो पुष्ट हुए ही, उनकी सौंदर्य-दृष्टि को भी नया आयाम मिला।

ख- नारी संबंधी दृष्टि

हिंदी साहित्य में नारी की प्रतिष्ठा सौंदर्य और प्रेम की प्रतिमूर्ति के रूप में हुई है। नारी सृष्टि की आदि शक्ति रूपा है। सृष्टि के मूल में नारी की महत्ता सर्वव्याप्त है। प्रेम की भावना मानव की स्वाभाविक और सहज प्रवृत्ति है, जो अनेक संबंधों को जन्म देती है यथा-माता-पिता का संबंध, माता-शिशु का संबंध, भाई और बहन का संबंध आदि। लेकिन इन संबंधों की केंद्र-बिन्दु एक नारी है, जिसके बिना इस जगत की रचना संभव नहीं है।

हिंदी काव्य में नारी-विषयक दृष्टि भिन्न-भिन्न रही है। भक्ति काल में जहां तुलसी ने सीता को पतिव्रता नारी के रूप में पूज्य माना, सूर ने राधा को आदर्श प्रेम के रूप में स्थापित किया, वहीं रीतिकाल की नारी पुरुष के लिए विलास की आलंबन बन गई। आधुनिक काल में नारी के रूप में परिवर्तन आया और वह नायिका के स्थान पर मां, बहन, पुत्री, आदि के रूपों में प्रतिष्ठित हुई। कालांतर में छायावाद कवियों ने नारी, पुरुष, प्रेम के सौंदर्य को प्रकृति के नाना उपादानों के माध्यम से चित्रित किया। वस्तुत: भक्ति काल हो या आधुनिक काल, नारी के सौंदर्य से सभी काल के कवि प्रभावित रहे हैं।

नारी में सौंदर्य का आकर्षण है। पुरुष का नारी-सौंदर्य के प्रति सदा से आकर्षण रहा है। भक्त कवि तुलसीदास जी ने सीताजी के सौंदर्य से तीनों लोकों के स्वामी श्री राम को मुग्ध पाया है-

“देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदयं सराहत बचनु न आवा।।

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहं प्रगटि देखाई॥

अर्थात- सीता जी की शोभा देखकर श्री राम जी ने बड़ा सुख पाया। हृदय में वे उसकी सराहना करते हैं किन्तु मुख से वचन नहीं निकलते। वह शोभा ऐसी अनुपम है मानो ब्रहमा ने अपनी सारी निपुणता को मूर्तिमान कर संसार को प्रकट करके दिखा दिया हो।”[४२]

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की कामायनी में ‘श्रद्धा’ को देख ‘मनु’ की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है -

“एक झटका-सा लगा सहर्ष, निरखने लगे लूटे-से, कौन-

गा रहा यह सुंदर संगीत? कुतूहल रह न सका फिर मौन।

और देखा वह सुंदर दृश्य नयन का इंद्रजाल अभिराम,

कुसुम-वैभव में लता समान चंद्रिका से लिपटा घनस्याम।”[४३]

नारी-सौंदर्य के प्रति प्रभु राम से लेकर एक साधारण मनुष्य तक प्रभावित है। इतिहास में इस बात के प्रमाण हैं कि स्त्री और उसके सौंदर्य को लेकर कितने युद्ध हुए हैं। मूलत: इस सौंदर्य में प्रेम की

भावना पनपती है। बिना प्रेम के सौन्दर्य के प्रति आकर्षण केवल एक आसक्ति है। अज्ञेय की प्रारंभिक कविताओं में नारी के सौंदर्य के आकर्षण से उत्पन्न प्रेम दिखाई देता है। 'चिंता' में नारी के प्रति पुरुष का आकर्षण काम-भावना से लिप्त है। वह स्त्री के साथ साथ प्रणय का खेल खेलना चाहता है-

"आओ, एक खेल खेलें !

मैं आदिम पुरुष बनूंगा

तुम पहली मानव-वधुका।

पहला पातक अपना ही।

हो परिणय, यौवन-मधु का!"[४४]

पुरूष, स्त्री में केवल रूप को देखता है। उसे नारी के हृदय का भान नहीं है। पुरुष को लगता है कि नारी को अपने रूप का दर्प भी है। इससे उसकी पौरुषता को चोट लगती है। वे केवल नारी के प्रति आकर्षित ही नहीं है वरन उनमें पुरुषत्व का अहंकार भी है। इसलिए वह कहता हैं -

"तुम हंसो कह दो कि अब उत्संग वर्जित है -

छोड़ दूं भला मैं जो अभीसिप्त है?

कोशवत सिमटी रहे यह चाहती नारी-

खोल देने, लूटने का पुरुष अधिकारी!"

x x x

शक्ति का सहवास खोकर पुरुष मिट्टी है-

पूछता है पुरुष पर, वह शक्ति किस की है?

शक्ति के बिन व्यर्थ मेरा दृप्त जीवन-यान

क्यों न उस को बांधने में तब लगूं तन प्राण?

x x x

"मत हंसो नारी मुझे अपना वशीकृत जान-

तोड़ दूंगा मैं तुम्हारा आज यह अभिमान!"[४५]

अज्ञेय की दृष्टि आधुनिक है। वे नर-नारी के संबंध को छायावादियों के समान कल्पना लोक में स्थापित नहीं करते। इस संबंध में अन्नत मिश्र का कथन है कि- "नारी के प्रति कवि कि यह यथार्थ दृष्टि उसे छायावादी कवियों से बिलकुल अलग करती है। छायावादी कवि के लिए नारी या तो विवेचन की विषय थी या कोई अतिरिक्त रूप से कल्पित रागात्मक प्रतिमा। उसे कोई श्रद्धा नाम दे या अंत: सलिला। पर कवि अज्ञेय के लिए नारी केवल वही है जो एक नर नारी के विषय में सोचता है। कोई आग्रह जो रहस्य या दर्शन की ओर ले जाए, अज्ञेय का, नारी के विषय में नहीं है।"[४६] अत: अज्ञेय का नारी प्रेम अलौकिक नहीं बल्कि लौकिक है।

वे नारी-पुरुष के जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की भांति प्रेम को भी आवश्यक मानते हैं। यह प्रेम ही नारी और पुरुष के संबंधों का आधार है। वास्तव में स्त्री और पुरुष में एक दूसरे का आकर्षण होता है जिससे वे दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंध के विषय में अज्ञेय का मत है- "पुरुष और स्त्री की परस्पर अवस्थिति एक कर्षण की अवस्था है। वह शक्ति आकर्षण का रुप ले अथवा विकर्षण का; अथवा आकर्षण और का विकर्षण की विभिन्न प्रवृत्तियों के संतुलन द्वारा एक ऐसी अवस्था प्राप्त कर ले, जिसमें बाह्य रूप से कोई गति-प्रेरणा नहीं है; किन्तु किसी न किसी प्रकार का आंतरिक खिंचाव बना रहना अनिवार्य है।"[४७] वस्तुत: नारी और पुरुष एक दूसरे के आकर्षण में बंधे होते हैं। एक दूसरे के सानिध्य से प्रेम की अभिलाषा होती है। परन्तु कवि समाज के बंधनों में रहकर अपने प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं करना चाहता। वह मुक्त प्रेम की कामना करता है-

"हरी घास की पत्ती-पत्ती भी मिट जावे लिपट झाड़ियों के पैरों में

और झाड़ियां भी घुल जावें क्षिति-रेखा के मसृण ध्वांत में;

केवल बना रहे विस्तार-हमारा बोध

मुक्ति का,

सीमाहीन खुलेपन का ही"[४८]

यहां कवि नारी-पुरुष के प्रेम को भी प्रकृति की विराटता एवं सीमाहीन विस्तार का संदर्भ देता है। कवि के विचारों में स्त्री-पुरुष के संबंधों में आधुनिक भावबोध दिखाई देता है। अज्ञेय की आगे की रचनाओं में नारी के शारीरिक सौंदर्य, उसकी रूप-सज्जा आदि धारणाओं में भी आधुनिक रूप व्यक्त हुआ है। उनकी कविता 'नख-शिख' में नारी के आंगिक सौंदर्य की चेतना प्रकट हुई है-

"तुम्हारी देह

मुझको कनक-चंपे की कली है

दूर ही से स्मरण में भी गंध देती है।

(रूप स्पर्शातीत वह जिस की लुनाई

कुहासे सी चेतना को मोह ले)

तुम्हारे नैन पहले भोर की दो ओस की बूंदे हैं

अछूती, ज्योतिमर्य,

भीतर द्रवित।

[मानो विधाता के हृदय में

जग गई हो भाप करुणा की अपरिमित]

तुम्हारे ओठ -

पर दहकते दाड़िम-पुहुप को

मूक ताकता रह सकूं मैं-

[सह सकूं मैं

ताप ऊष्मा का मुझे जो लील लेती है!]"[४९]

कवि ने नारी सौंदर्य को उपमानों से रूपायित किया है। नारी के शरीर-सौष्ठव की सुंदर उपमा कवि अज्ञेय ने की है। इस कविता के विषय में डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद जी का कथन है कि- "यहां कवि ने देहाश्रित रूप का वर्णन किया है। देह का समग्र प्रभाव चंपे की कली के समान है तथा उसके अलग-अलग अंग अपना विशिष्ट प्रभाव रखते हैं।"[५०] नारी की देह को कनक चंपे की कली कहना, आंखों को भोर की दो ओस की बूंदे और ओठ पर दहकते दाड़िम-पुहुप जैसे प्राकृतिक उपमान सर्वथा नए और आधुनिक हैं। इस कविता में सौंदर्य की श्रेष्ठता दृष्टिगत है। डॉ॰ ब्रजमोहन शर्मा का मत है कि "यहां सौंदर्य की उदात्त स्थिति है क्योंकि जहां द्रष्टा किसी सुंदर वस्तु या अंग के साक्षात्कार से हतप्रभ हो जाए और उसकी कायिक तृष्णाएं शमित हो जाएं वहां उदात्तीकरण का धरातल आ जाता है।"[५१] नारी-सौंदर्य को बिछली घास की उपमा देता है-

"हरी बिछली घास।

दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।

अगर मैं तुमको ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता,

या शरद के भोर की नीहार न्हाई-कुईं

टटकी कली चंपे की

तो नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला कि सुना है

या कि मेरा प्यार मैला है।"[५२]

अपनी प्रेमिका को 'नभ की अकेली तारिका', 'टटकी कली चंपे की' कवि अब नहीं कहना चाहता क्योंकि उसे वह अब पुराने और मलिन लगते हैं। वह 'हरी बिछली घास', 'दोलती कलगी छरहरी बाजरे की' जैसे नितांत नए उपमानों से नायिका के सौंदर्य को वर्णित करता है। हरी घास और बिछी हुई आंखों को सुख देती है। उसके हरेपन में एक

मादकता है, स्निग्धता, और कोमलता है। ठीक ऐसे ही दोलती कलगी छरहरी बाजरे से शरीर के आकर्षक होने का पता चलता है। हवा की गति से बाजरे की कलगी में जो लचक दिखाई देती है, कवि उसी लचीलेपन से अपनी प्रेयसी के सौंदर्य को जोड़ता है। इसे अज्ञेय की बौद्धिक विचार-दृष्टि का प्रतीक कहा जा सकता है। सौंदर्य भाव के प्रति यह उनकी बौद्धिक विशिष्टता है। उनकी सौंदर्य चेतना की मौलिक विशेषता को प्रकट करती है। अपनी प्रिया या नायिका को तारे की, फूल की उपमाएं तो कवि देते ही आएं है लेकिन अज्ञेय की विशेषता इसमें है कि वे प्रकृति में से ऐसे उपमानों को चुनते हैं जिस पर अब तक किसी की दृष्टि नहीं पड़ी यद्‌यपि वे उनकी आंखों के सामने ही थे। कहने का आशय यह है कि अज्ञेय की दृष्टि अपनी बौद्धिक क्षमता का सहारा लेकर सामान्य वस्तुओं में भी विशिष्ट सौंदर्य की स्थापना कर देती है।

अज्ञेय ने मनुष्य की प्रेम और यौनात्मक मूल वृत्तियों को खुले भाव से अभिव्यक्त किया है। वे यौन भावनाओं को छिपाने में विश्वास नहीं रखते। काम-वृति तो प्राकृतिक प्रक्रिया है। प्रकृति में पशु-पक्षी मुक्त भाव से काम-क्रीड़ा परंतु मानव इन वृत्तियों को छिपाता है। कवि कहता है-

"खग-युगल! करो सम्पन्न प्रणय, क्षण जीवन में ही तन्मय।

हो अखिल अवनि ही निभृत निलय।

हाय तुमहरी नैसर्गिकता! मानव नियम निराला है-

वह तो अपने ही से अपना प्रणय छिपाने वाला है।"[५३]

अज्ञेय मुक्त विचारों के कवि हैं। उनकी दृष्टि नैसर्गिक भावनाओं और संवेदनाओं को छिपाकर रखने में विश्वास नहीं करती। यौन वृतियों और प्रणय संवेदनाओं को उन्होंने बहुत स्वाभाविक रूप से व्यक्त किया है। वस्तुत: संसार का जीवन-चक्र ही स्त्री और पुरुष के मध्य यौन-सम्बन्धों पर टिका है। अज्ञेय ने तारसप्तक के वक्तव्य में 'व्यक्ति को यौन वर्जनाओं का पुंज' कहा। व्यक्ति की इच्छाएं और कामनाएं कुंठित हैं। उनका मत है- "उसकी सौंदर्य चेतना भी इस से आक्रान्त है।"[५४] फ्रायड के मनोविश्लेषण से अज्ञेय प्रभावित हैं। फ्रायड ने मानव की

दमित इच्छाओं काम भावनाओं का कारण माना था। वे इस काम की भावना को मनोवैज्ञानिकता के आधार पर देखते हैं और उसे लौकिकता के स्तर पर प्रकट करते हैं-

"मुझे सब कुछ याद है। मैं उन सबों को भी

नहीं भूला। तुम्हारी देह पर जो

खोलती हैं अनमनी मेरी उंगलियां- और जिनका खेलना

सच है मुझे जो भुला देता है-

सभी मेरी इंद्रियों की चेतना उनमें जागी है।"[५५]

अज्ञेय के विचारों में स्वाभाविकता, सहजता और मौलिकता का गुण विद्‍यमान है। वे अपनी जीवनानुभूतियों को बड़ी साधारण और सामान्य तरीके से अभिव्यक्त कर देते हैं। चाहे वह यौन-प्रेरित ही क्यों ना हो। इस संबंध में रमेश ऋषिकल्प का कथन है कि- "अज्ञेय की कविता में प्रेम और यौन का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है, उसमें आध्यात्मिकता नहीं है बल्कि लौकिक स्तर पर प्रेम और यौन की अनुभूति व्यक्त हुई है।"[५६] कवि की भोगवादी दृष्टि उसकी आगे की कविताओं में भी दिखाई देता है। परंतु इस प्रणयी- याचना में कवि का सौंदर्य के प्रति आग्रह दिखाई देता है-

"मैंने तुम्हें देखा

असंख्य बार:

मेरी इन आंखों में बसी हुई है

छाया उस अनवद्‍य रूप की।

मेरे नासा पुटों में तुम्हारी गंध -

मैं स्वयं उससे सुवासित हूं।

मेरी मुट्ठियों में भरी हुई तुम

मेरी उंगलियों बीच छनकर बही हो -

कण प्रतिकण आप्त, स्पृष्ट, भुक्त,

मैंने तुम्हें चूमा है।"[५७]

अज्ञेय की कविता इसी धरा की कविता हैं इसलिए वे स्त्री-पुरुष के संबन्धों को आधुनिक रूप में देखते हैं। वे केवल मांसल प्रेम के अभिलाषी नहीं है। उनकी नारी-भावना में प्रेम की पीड़ा भी है। उसकी प्रिया उसके जीवन का प्रकाश है-

"चेतना की नदी

बहती जाए तेरी ओर

मौन तेरे ध्यान में

मैं रहूं विभोर

अलग हूं, पर विरह की धमनी

तड़पती लिए स्पंदित स्नेह

और मेरे प्यार में ओ हृदय के आलोक मेरे

वेदना की ओर!"[५८]

कवि की चेतना अपनी प्रेमिका के स्मरण से ही आत्म-विभोर है। उसे याद करके ही उसके प्रति अपने हृदय में प्रेम का आलोक पाता है। प्रेयसी के प्रेम के बिना उसके हृदय में अंधकार है। डॉ॰ संतोष कुमार तिवारी का मंतव्य है कि - "अज्ञेय ने प्रेयसी की आकुल स्मृतियों के भाव चित्र प्रस्तुत कर अपनी निराशा और वेदना को मधुर क्षणों में परिणित कर लिया है। उसमें अनुभूतियों की उत्कट सघनता है।"[५९]

अज्ञेय अपनी कविताओं में एक प्रेमी के रूप में परिलक्षित हैं। उनका हृदय प्रेम की भावना से पूरित है। एक प्रेमी के रूप में प्रेयसी के पलकों को उठने, और गिरने का सौंदर्य अनुभूत हुआ है। साथ ही भावक को भी पलकों के सौंदर्य का अनुभव होता है। अपनी प्रिया के सपनों का एक कण मात्र बन जाने में ही वे जीवन की सार्थक मान लेते हैं। वे कहते हैं-

“तुम्हारी पलकों का कंपना

तनिक-सा चमक खुलना, फिर झंपना।

तुम्हारी पलकों का कंपना

मानो दीखा तुम्हें लजीली किसी कली के

खिलने का सपना।

तुम्हारी पलकों का कंपना

सपने की एक किरण मुझको दो ना,

है मेरा इष्ट तुम्हारे उस अपने का कण होना।

और सब समय पराया है

बस उतना क्षण अपना है।”[६०]

नारी को प्रेम और करुणा का ही दूसरा रूप समझा जाता है। माता, पत्नी, पुत्री, बहन, बहु, सखी, की विभिन्न भूमिकाओं में नारी का स्नेही रूप झलकता है। पत्नी या प्रेमिका के प्रेम और स्नेह से पुरुष सब चिंताओं से निश्चिंत रहता है। अज्ञेय नारी के इस प्रेम को रति नहीं मानते बल्कि उसे नारी की करुणा कहते हैं। उन्हें नारी की करुणा को रति समझ लिए जाने का डर है-

“रात

एकाएक टूटी मेरी नींद

और सामने आयी एक बात

की तुम्हारे जिस प्यार में मैं खोया रहा हूं

जिस लंबी मीठी नशीली धुंध में

मैं सब भूलकर सोया रहा हूं

उसकी भीत जो है

वह नहीं है रति :

वह मूलत: है पुरुष के प्रति

नारी की करुणा।

अगाध, अबाध करुणा

फिर भी राग नहीं करुणा।"[६१]

अज्ञेय के आधुनिक विचार नारी को केवल एक प्रेमी या पुरुष की ही दृष्टि से नहीं देखते वरन उन्होंने उसकी वर्तमान दशा पर भी प्रकाश डाला है। 'दास व्यापारी' कविता में उन्होंने स्त्री देह-व्यापार के व्यंग्यात्मक दृश्य को चित्रित किया है-

"हम आए हैं

दूर के व्यापारी

माल बेचने के लिए आयें हैं:

माल: जीवित गंधित, स्पंदित

छटपटाती शिखाएं रूप की

तृषा की,

ईषा की, वासना की, हंसी की, हिंसा की

और एक शब्दातीत दर्द की घृणा की:

मानवता के चरम अपमान की!

चरम जिजीविषा की!

माल: किन्हीं की माताएं, बहुएं, बेटिएं, बहनें:

किन्हीं पीछे छूट गयों की, लूट गयों की,

जो बिकेंगी, क्योंकि बेची जाने को तो लाईं गईं है।

यहां की होकर रहने,

यही सहने

अपना हो जाता है किन्हीं और की माताएं बहुएं,

बेटिएं, बहनें:

जो रौंदी गईं, जो रौंदी जाएंगी

और यों मरेंगी नहीं, टिकेंगी।"[६२]

अज्ञेय की इस पूरी कविता में नारी के देह व्यापार को बड़ी यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया गया है। प्राचीन काल से ही स्त्री को भोग-विलासिता का साधन समझा गया। राजा-महाराजाओं के लिए तो वे उनकी राजदरबार की शोभा थीं। स्त्री की यह दशा आज भी वर्तमान है। आधुनिकता के इस युग में नारियां देह-व्यापार के लिए खरीदीं और बेची जातीं हैं। इसके अतिरिक्त नारी के बलात्कार के बारे में हम समाचार पत्रों में पढ़ते हैं, टीवी के समाचारों में सुनते ही रहते हैं। अज्ञेय की परखी दृष्टि समाज में हो रहे स्त्री के इस बाजारीकरण से विलग नहीं है। नारी की ऐसी दुर्दशा का कारण अज्ञेय मूल्यहीन समाज को मानते हैं। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' में वे एक मूल्य निहित मानते हैं परंतु इस मूल्य की सार्थकता तभी है जब नारी की स्वतंत्र सत्ता हो। इस संबंध में उनका विचार है- "जिस समाज में नारी को व्यक्तित्व नहीं दिया जाता, उसमें नारी की पूजा भी नहीं होती, न हो सकती है सकती: उसमें इस पूजा का अर्थ 'स्वार्थ पूजा 'या 'पेट पूजा' वाली पूजा से अधिक कुछ नहीं रहता। सच्चे अर्थ में पूज्य वही स्त्री हो सकती है जिसके व्यक्तित्व को समाज ने स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया है।"[६३] अत: अज्ञेय समाज में नारी का स्वतंत्र अस्तित्व चाहते हैं। यह उनकी विचारों के खुलेपन का द्योतक है।

'छातियों के बीच में', 'कन्हाई ने प्यार किया' (सागर मुद्रा) 'कभी-कभी', 'गांधारी' आदि कविताएं (ऐसा कोई घर अपने देखा है) अज्ञेय के नारी संबंधी विचारों को अभिव्यक्त करती हैं। उनके विचारों को दृष्टि इसी सांसारिक जगत से प्राप्त होती हैं। उनके विचारों में स्वाभाविकता स्वत: प्रवेश कर जाती है। नारी संबंधी दृष्टि में भी उनके विचार अत्यंत सहज रूप से व्यक्त हुए हैं। उनकी कविताओं में कहीं नारी का

शारीरिक सौंदय है तो कहीं प्रेम है। उसके वासनात्मक रूप का वर्णन है तो कहीं उसका करुणात्मक रूप भी दृष्टिगत है। वास्तव में अज्ञेय की नारी दृष्टि अपने चारों ओर से संवेदनाएं एकत्रित करती हैं और उसकी यथार्थता का बोध करने में सक्षम हैं।

ग- लोक जीवन संबंधी दृष्टि

'लोक' से तात्पर्य साधारण जनता से है। उनके रहन-सहन, प्रथा, परंपरा, धर्म कानून आदि लोक से संबन्धित है। लोक शब्द के प्रयोग पर भिन्न-भिन्न विचार दृष्टि प्राप्त होती है। 'लोक' का शब्दकोशीय अर्थ है- 'संसार'।"[६४] अंग्रेजी में लोक को फोक कहा जाता है। "फोक शब्द की व्युत्पति एंग्लो सैक्सन शब्द (Fole) से मानी जाती है। जर्मन भाषा में इसे (Volk) कहते हैं। हिन्दी के 'लोक' शब्द के लिए अंग्रेजी के 'फोक' को व्यवहृत किया जाता है।"[६५]

वीरेन्द्रनाथ द्विवेदी ने संस्कृत ग्रंथ 'वाचस्पत्यम' का उद्धरण देते हुए 'लोक' शब्द की अवधारणा प्रस्तुत की है- "संस्कृत के 'लोकृदर्शने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर लोक शब्द बना है। 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति कई तरह से की जाती है। 'लोक्यतेऽसौलोक':", लोकन्ते जना: अस्मिन इति लोक्यते अनेन (करणे घञ्) इति लोक:', इस के व्युत्पत्ति के आधार पर लोक शब्द जन समुदाय का बोधक हुआ।"[६६]

डॉ॰ राम निवास शर्मा ने डॉ॰ कृष्ण देव उपाध्याय के लोक की अवधारणा का उद्धरण दिया है- "शब्दकोश में लोक के कई अर्थ हैं -१-स्थान विशेष जिसका बोध प्राणी हो, २-संसार, ३- प्रदेश, ४-जन या लोग, ५-समाज, ६-प्राणी, ७- यश आदि। इसी प्रकार उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं- इहलोक और परलोक। निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख है- पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और द्युलोक। पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना हुई है- भू लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, और सत्य लोक या ब्रहमलोक। फिर इनके पीछे सात-सात पाताल- अतल, नितल, वितल, गमस्तिमान, तल, सुतल और पाताल मिलकर चौदह लोक किए गए हैं।"[६७]

लोक शब्द की अभिव्यक्ति वेद, पुराणों, श्रीमदभगवत आदि में भी हुई है। श्रीमदभगवत गीता में भी लोक शब्द का प्रयोग अधिकांश बार हुआ है। दो प्रकार के लोकों का प्रयोग मिलता है- लोक, और परलोक।

"अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति।

नायं लोकोअस्ति न परो न सुखं संशयात्मन:

अर्थात- विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है न परलोक है और न सुख ही है।"[६८] यहां दो लोकों- इहलोक और परलोक के विषय में धारणा की गयी है। इह लोक से सांसारिक जगत और परलोक अलौकिक जगत के अर्थ का भान होता है। गीता के अध्याय १५ में श्लोक १७ एवं १८ में भी लोक शब्द का व्यवहार हुआ है।

तुलसीदास रचित 'रामचरितमानस' में लोक शब्द का आवृत्ति हुई है। यथा- बालकांड में -"हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुं बेद बिदित सब काहू॥"[६९], -"लोकहुं बेद सुसाहिब रीति। बिनय सुनत पहिचानत प्रीति॥"[७०] यहां तुलसीदास जी का लोक से तात्पर्य इस मानव लोक से है।

'लोक' शब्द का प्रयोग राजनीतिक रूप से भी होता है। जैसे- लोकतन्त्र, लोकसभा। अत: लोक शब्द के विषय में विभिन्न दृष्टियों से यह स्पष्ट है कि लोक के बहुअर्थी रूप हैं। प्रस्तुत प्रसंग में लोक का संबंध इसी जगत के जनसामान्य से है। साधारण जनता के खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन, 'रीति-रिवाज, धर्म, परंपरा, अंधविश्वास, रूढ़ि आदि का अध्ययन लोक से संबन्धित है। साधारण अर्थ में कह सकते हैं कि सर्वसाधारण जन-जीवन से संबंन्धित परिवेश का अवलोकन ही लोक जीवन है। इसमें मानवीयता का भाव निहित है।

हिन्दी साहित्य में रामचन्द्र शुक्ल जी ने लोक शब्द का प्रयोग अपने निबंधों में किया है। समीक्षा ठाकुर ने अपने 'हिन्दी साहित्य में 'लोक' की अवधारणा' लेख में कहा है कि "साहित्यिक विमर्श में अधिकतर जनता, जनवाद, जनवादी, जनमत जैसे शब्दों का प्रयोग होता है लेकिन एक समय था जब जन के स्थान पर प्राय: लोक और

लोके से जुड़े हुए लोकमत, लोकधर्म, लोक संग्रह लोक मंगल, लोकरंजन, शब्द प्रयोग में थे। याद करें तो ये सभी शब्द आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की समालोचना के आलोचनात्मक निबंधों के बीज शब्द हैं और इनके पीछे एक सुनिश्चित लोक दृष्टि और लोकदर्शन है। अतिश्योक्ति न होगी यदि यह कहें कि हिन्दी के साहित्यिक विमर्श और समालोचना में लोक के महत्व को पहली बार रेखांकित करने का श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है।"[७१]

लोक जीवन से काव्य का गहरा और घनिष्ठ संबंध है। कवि इसी धारा से जुड़ा होता है और अपने आस-पास से ही संवेदनाएं ग्रहण करता है। यह अवश्य है कि इन संवेदनाओं में उसकी सर्जनशीलता का बहुत महत्त्व है। यों तो हम सभी इसी लोक के प्राणी हैं। यहीं रहकर हम अपना जीवन यापन करते हैं किन्तु हमारा ध्यान लोक के जीवन को उस प्रकार नहीं देख पाता जैसा कि एक कवि देखता है और अपनी कविता में उसे ढालता है। कविता के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि- "कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मण्डल के ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भवभूमि पर ले जाती है। जहां जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है, इस भूमि पर पहुंचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है।"[७२] शुक्ल जी के इस कथन से स्पष्ट है कि कवि लोक सत्ता में लीन होकर अपनी कविता कर पाता है। अज्ञेय एक कवि के रूप में अपनी कविता के लिए इसी लोक को जांचते-परखते हैं।

अज्ञेय के काव्य में लोक जीवन के सौंदर्य की गहरी व्यंजना कथ्य और भाषा के आधार पर देखी जा सकती है। इनकी रचनाओं में लोकतत्व उस प्रकार से नहीं मिलते जैसे सूर, तुलसी, मीरा आदि भक्त कवियों में विद्‌यमान हैं परंतु अज्ञेय के काव्य को लोक जीवन से रहित नहीं समझा जा सकता। उनकी रचना की सार्थकता उनके लोक कल्याण में दिखाई देती है। उनका कवि-मन अपनी भावनाओं की खाद से लोक कल्याण के पौधे अंकुरित करना चाहता है। जिसे लोक के भले की

चिंता हो वह लोक जीवन की चेतना से दूर नहीं रह सकता। उनकी इस भाव को 'कवि, हुआ क्या फिर' कविता की इन पंक्तियों से समझा जा सकता है-

"सुनो कवि! भावनाएं नहीं सोता, भावनाएं खाद हैं केवल

जरा उनको दबा रखो

जरा-सा और पकने दो, ताने और तचने दो

अंधेरी तहों की पुट में पिघलने और पचने दो;

रिसने और रचने दो-

कि उन का सार बनकर चेतना की धरा को कुछ उर्वरा कर दे;

भावनाएं तभी फलती हैं कि उन से लोक कल्याण का अंकुर कहीं फूटे।"[७३]

वे अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए लोक से ही सामाग्री प्राप्त करते हैं। लोक जीवन को समझने में प्रकृति की भूमिका अहम होती है। अज्ञेय ने प्रकृति के उपादानों से लोक जीवन को देखा है। पेड़-पौधे, चिड़िया, ऋतुएं अपने-अपने रंग से प्रकृति को रंग देती हैं। अज्ञेय की पारखी दृष्टि नीम की कटुता में भी मिठास ढूंढ़ लेती है-

"सखि! आ गए नीम को बौर!

हुआ चित्र कर्मा वसंत अवनी-तल पर सिरमौर।

आज नीम की कटुता से भी लगा टपकने मादक मधु-रस!

क्यों फड़क फिर उठे तड़पती विह्वलता से मेरी नस-नस!

x x x

सखि! आ गए नीम को बौर!

प्रिय के आगम की कब तक है बाट जोहनी और?

फैलाये पांवड़े सिरिस ने बुन-बुन कर सौरभ के जाल-

और पलाश आरती लेने लिए खड़े हैं दीपक-थाल!"[७४]

'नीम के पेड़ में बौर का आ जाना', प्रिया का अपने प्रिय की बाट जोहना, सिरिस का सौरभ के जाल बुनना', 'पलाश का आरती लेने के लिए दीपक-थाल लेकर खड़े होना' आदि शब्दों से ही लोक जीवन का रंग उभर कर सामने आता है। इस कविता में लोक गीत की लयात्मकता दिखाई देती है। लोकगीत गांवों में तीज-त्योहारों, उत्सव, पर्व, ऋतुओं के आगमन आदि के अवसर पर गाए जाते हैं। लोकजीवन का प्रतिबिंब लोकगीतों में दिखाई देता है। लोकगीतों की प्रासंगिकता के संबंध में डॉ॰ राजन यादव का कथन है- "लोक साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण, समृद्ध एवं सशक्त अभिव्यक्ति लोकगीत है। लोकगीतों में भावना अकेली नहीं होती। उसमें प्रकृति के उपकरणों के बीच हृदय की अनुभूतियां तरंगित होकर बहती है। आदमी के चारों ओर की दुनिया की सच्ची धड़कन लोक गीतों में रहती है।"[७५] इस आधार पर देखा जाए तो अज्ञेय की इस कविता में लोक गीत की झलक मिलती है। इसमें लयात्मकता है और प्रकृति के साथ हृदय की अनुभूतियों के उद्गार दृष्टिगत हैं।

अज्ञेय के लोक जीवन में मिट्टी का भी महत्त्व स्थापित है। बिना मिट्टी के इस धरती की कल्पना करना भी कठिन है। समाज मिट्टी को निरीह और कमजोर समझता है लेकिन वे 'मिट्टी को ही ईहा मानते है' और लोग जब उसकी अवज्ञा करते हैं तो उससे पनपा अंकुर तुनक कर बोलता है -

"और मैंने बार-बार स्वीकृति से, अनुमोदन से
और गहरे आग्रह से आवृत्ति की: 'मिट्टी से निरीह'-
और फिर अवज्ञा से उन्हें रौंदता चला-
जिन्हें कि मिट्टी सा निरीह मानता था।
किन्तु वसंत के उस अल्हड़ दिन में
एक भिदे हुए फटे हुए लौंदे के बीच से बढ़ कर अंकुर ने
तुनुक कर कहा- 'मिट्टी ही ईहा है!' "[७६]

अज्ञेय मिट्टी से व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार करते हैं। कवि किसी न किसी रूप में अपनी देशीयता से जुड़ा रहता है। इसी में उसके कवित्व की सार्थकता भी है। इस दृष्टि से देखें तो अज्ञेय में लोक जीवन का आधुनिक रूप दिखाई देता है परंतु यह आधुनिकता इसी लोक से जीवंतता ग्रहण करती है। इस जीवंतता में प्रकृति का योगदान महत्वपूर्ण है। वसंत के आने पर यौवन और प्यार दोनों ही सुखमय हो जाते हैं। मधुदूत अपने गीत गाता है-

"चेत उठी ढीली देह में लहू की धार
बेध गई मानस को दूर की पुकार
गूंज उठा दिग्दिगन्त
चीन्ह के दुरन्त यह स्वर बार-बार:
सुनो सखि! सुनो बंधु!
प्यार ही में यौवन है यौवन में प्यार!
आज मधु-दूत निज
गीत गा गया
जागो, जागो,
जागो सखि वसंत आ गया! जागो!"[७७]

वसंत के गीत की इस कविता में लोक जीवन की चेतना की महक समाई है। वसंत की बहार का वास्तविक रूप गांवों में ही देखा जा सकता है। शहरों की बड़ी-बड़ी इमारतों और धूएं भरे वातावरण में वासंती-माधुर्य कहीं खो सा जाता है। अज्ञेय की 'बावरा अहेरी' काव्य संग्रह में 'वसंत की बदली', 'हवाएं चैत की', 'ये मेघ साहसिक सैलानी' प्रकृतिपरक रचनाएं हैं परंतु इसमें लोक चेतना की झलक भी है। कांगड़े की छोरियां कविता में लोक गीत की झलक दिखाई देती है-

"ज्वार-मका की क्यारियां

हरियां, भरियां, प्यारियां

धनखेतों में लहर हवा की

सुना रहीं हैं लोरियां

कांगड़े की छोरियां"[७८]

इस कविता की शब्दावली में लोक शब्दों का प्रयोग किया गया है। 'ज्वार', 'मका', 'धनखेत, आदि शब्द से लोकजीवन से प्रभावित हैं।

अज्ञेय की कविताओं में हिन्दी महीनों के नाम का प्रयोग अधिकांश रूप में मिलता है। माघ, चैत, हेमंत, वसंत, फाल्गुन आदि नामों के साथ लोक जीवन का सौंदर्य दिखाई देता है। 'माघ-फागुन-चैत' की इस कविता में क्रमश: मौसम के करवट लेने का दृश्य अज्ञेय ने बहुत सुंदरता से उभारा है-

"आया हचकोला फाग का:

खग लगे परखने नए-नए सुर अपने-अपने राग का

(बिसरा कर सुध, कल बन जाएगा यही बगूला आग का!)

बिगड़ी बयार को ले जाने दो सूखे पीले पात पुरानी चैत के!

इठलाती आयी फुनगी, पावस में डोल उठी हरखाई नैया-

दिन बदला उनका, अब काल खेवैया!"[७९]

वर्षा का सौंदर्य हर किसी का मन मोह लेती है। अज्ञेय भी वर्षा और उससे होने वाले परिवर्तन के सौन्दर्य से मोहित हुए बिना नहीं रह सके। उनका हृदय वर्षा को देखकर हर्षित होता है। 'पानी बरसा' कविता की निम्न पंक्तियां कवि अज्ञेय की लोक-सौंदर्य दृष्टि का परिचय देती है-

"बादलों का हाशिया है आसपास,

बीच लिखी पांत काली बिजली की-

कूंजों की डार, कि असाढ़ की निशानी!

ओ पिया पानी!

मेरा जिया हरसा।"[८०]

अज्ञेय का लोक घास-फूस से बने छप्परों और ग्रामीणों के समाज से बनता है। ढोलक, मृदंग और बांसुरी के स्वर में भक्ति-भाव रूपी रस इस लोक को सिक्त करता है। गांवों में भजन-कीर्तन, तीज- त्योहारों में ढोल, मंजीरे आदि वाद्य यंत्रों के स्वर आज भी सुनाई देते हैं। अज्ञेय की दृष्टि में उस सौंदर्य की ताज़गी है। अज्ञेय की विचारों में गांव का वही सौंदर्य वास्तविक सौंदर्य है। वे कहते हैं-

"हमारा देश

"इन्हीं तृण-फूस छप्पर से

ढंके ढुलमुल गंवारु

झोंपड़ों में ही हमारा देश बसता है

इन्हीं के ढोल-मांदल-बांसुरी के

उमंगते सुर में

हमारी साधना का रस बसता है।"[८१]

अज्ञेय का सौंदर्य-बोध गांवों के घास-फूस की झोंपड़ियों तक ही सीमित नहीं है। उनकी अन्वेषी दृष्टि खेत-खलिहान और रेत के सौंदर्य को भी निरखती हैं। 'मरू और खेत' कविता की इन पंक्तियों में काका-भतीजा के सम्बन्धों की व्यंग्यात्मक मिठास दिखाई देती है-

"हंसा खेत: मरू काका ठीक है। होगा वही

लू बहेगी, पाला भी पड़ेगा- दुख होगा ही।

किन्तु जब मेरी छाती फोड़ कर अंकुर एक फूटेगा

और भोली गर्व भरी आस्था से निहारेगा,

तब- उस एक मात्र क्षण में - किन्तु काका, आप से क्या कहूं और

नव-सर्जन में जो अपने को होम कर होते हैं आनंदमग्न

उन की तो दृष्टि और होती है!"[८२]

अज्ञेय की आधुनिक दृष्टि गांव की मिट्टी के बाहर-भीतर के सौंदर्य को प्रकट करती है। इतना ही नहीं उनकी अवलोकनात्मक दृष्टि झींगुरों की लोरियां को भी सुन लेती है जो ग्रामीणों को सुलाती हैं। 'रात में गांव' कविता में गांव में रात के समय सन्नाटा छा जाता है। उसी सौंदर्य को अज्ञेय ने लोक शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है -

"झींगुरों की लोरियां

सुला गईं थीं गांव को,

झोंपड़े हिंडोलों सी झूला रही है

धीमे-धीमे

उजली कपासी धूम- डोरियां।"[८३]

'अरी ओ करुणा प्रभामय' काव्य संग्रह में 'बांगर और खादर' कविता है जिसमें अज्ञेय ने बांगर में राजा के कुएं और खादर में नदी के माध्यम से लोक जीवन के दृश्य को उभारा है-

"कुएं का पानी

राजा जी मांगाते हैं,

शौक से पीते हैं।

नदी सब लोग जाते हैं,

उस के किनारे मरते हैं,

उस के सहारे जीते हैं।

बांगर का कुआं

राजाजी का अपना है

लोकजन के लिए एक

कहानी है, सपना है।"[८४]

इस कविता में कथा शैली में उच्च और निम्न वर्ग के मध्य भेद-भाव की स्थिति दिखाई देती है। इस कविता के संदर्भ में सुश्री सुमन झा का कथन है- "इस कविता में लोक कथा की शैली है। लोक कथा में खेलों से सम्बद्ध भी कई पथ प्रचलित हैं। उसका लहजा भी इसमें दिखाई देता है।"[८५]

'असाध्य वीणा' कविता में लोक जीवन के ज्ञान को अज्ञेय ने बड़ी मार्मिकता से उभारा है। उन्होंने प्रकृति के व्यवहार के सूक्ष्म निरीक्षण से लोक जीवन का सटीक अंकन किया है-

"घनी रात में महुए का चुप-चाप टपकना।
चौंके खग-शावक की चिहुंक।
शिलाओं को दुलराते वन-झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल निनाद
कुहरे में छन कर आती
पर्वती गांव के उत्सव-ढोलक की थाप।
गड़रियों की अनमनी बांसुरी।
कठफोड़े का ठेका। फुलसुंघनी की आतुर फुरकन:
ओस-बूंद की ढरकन- इतनी कोमल, तरल, कि झरते-झरते मानो
हरसिंगार का फूल बन गई।"[८६]

कविता की इन पंक्तियों में अज्ञेय का लोकदर्शी व्यक्तित्व परिलक्षित होता है। रात में महुए का टपकना, चिड़िया के बच्चे का चिहुंकना, बहते जल की आवाज़, कोहरे से छनकर आती ढोलक की थाप, ओस की ढरकन आदि ऐसे सूक्ष्म दृष्टांत हैं जो उनके पर्यवेक्षण की कुशलता का बोध कराती हैं। अज्ञेय का यह कौशल ही है कि असाध्य वीणा के स्वर में तदोपस्थित प्रत्येक को वीणा के स्वर में जो अनुभूत होता है; वह

अज्ञेय की लोक जीवन की समझ और उनकी विचार-दृष्टि के सौंदर्य की पहचान हैं-

"बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुशबू।

किसी एक को नयी वधू की सहमी-सी पायल-ध्वनि।

किसी दूसरे को शिशु की किलकारी

x x x

चौथे को मंदिर की ताल-युक्त घंटा-ध्वनि"[८७]

व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार मन की कामना भी जाग्रत होती है। 'भूखे व्यक्ति को भोजन की सोंधी सुंगध', 'वंध्या को शिशु की इच्छा' का अत्यंत प्रभावशाली चित्रांकन किया है।

'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं' काव्य संग्रह की 'नंदा देवी' कविता में अज्ञेय के लोक जीवन का बड़ा सुंदर वर्णन मिलता है-

"पुआल के घेरदार घाघरे

झूल गए पेड़ों पर,

घास के गट्ठे लादे आती हैं

वन-कन्याएं

पैर साधे मेड़ों पर

चला चल डगर पर।

नंदा को निहारते।

तुड़ चुके सेब, धान

गया खलिहानों में

सुन पड़ती है

आस की गमक एक

गड़रियों की तानों में।

x x x

लौटती हुई बकरियां

मढ़ जाती हैं

कतकी धूप के ढलते सोने में"[८८]

इस कविता की पंक्तियां लोक जीवन का चित्र पाठक के सामने उतार देती हैं। गीत के रूप में इस कविता में पर्वतीय ग्रामीण वातावरण की हृदयंगम अभिव्यक्ति हुई है। इसके संबंध में कृष्णदत्त पालीवाल का कथन है "हमें याद है कि श्रीधर पाठक की कविता में 'दूर गगन में कोई बाला समंजु वीणा बाजा रही' थी - उसके स्वर में स्वर्ग का सुख था, क्या अदभुत बात है कि वही बाला परंपरा की पगडंडियों पर पैर रखती हुई अज्ञेय जी की नंदा देवी में आकार पर्वती-लास्य कर रही है। प्रकृति और वन कन्याओं का यह लास्य नर्तन अज्ञेय को मुग्ध किए रहा है। 'जापान के सुनहले शैवाल' अपनी कनक आभा में यहां के लोक जीवन में उतर आए हैं। लोक-लय में डूबा यह गीत नंदा के धूप कुन्दन को नया जीवन-छंद दे रहा है।"[८९]

वस्तुत: अज्ञेय के काव्य में लोक शब्दों के आधार पर भी लोक जीवन के प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। यथा- फटी छीमी, पुआल, खलिहान, अंखुआना, पगडंडी, अंजुरी, उधौ, माधौ, वनतुलसी आदि ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग अज्ञेय के लोक जीवन के सौंदर्य को प्रतिभासित करता है।

घ- दर्शन संबंधी दृष्टि

अज्ञेय की रचनाओं में दर्शन से संबंधित अनेक कविताओं का सौंदर्य भी दिखाई देता है। इन कविताओं से दर्शन में उनकी रुचि और जागरूकता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। यद्यपि अज्ञेय दार्शनिक विचारों से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं हैं परंतु परिवेश और संस्कृति से अर्जित ज्ञान और अनुभूति के कारण उनकी कविताओं में

दार्शनिकता का प्रभाव है। इस संबद्ध में अज्ञेय का मत विचारणीय है "मैं दार्शनिक बना ऐसा मैं नहीं जानता, अपने को दार्शनिक मानता भी नहीं हूं। पाठक क्या मानते हैं या उन के मन का आधार कितना पुष्ट है वही जाने- मैं इस बारे में क्या कहूंगा! थोड़ा-बहुत दर्शन पढ़ा, कुछ दार्शनिक प्रश्नों में रुचि है। बाकी जीवन के प्रति सतत जिज्ञासा मुझ में हैं और चीज़ों को समझने की कोशिश करता रहता हूं- समझने के लिए उनके बारे में सोचता भी हूं।"[९०] अज्ञेय की यही अन्वेषी जिज्ञासा ही उनके काव्य में दार्शनिकता का आधार है। उनकी कविताओं में भारतीय और पाश्चात्य दर्शन के विचारों का सौंदर्य परिलक्षित होता है।

भारतीय दर्शन के चिंतन का प्रमुख केंद्र आत्म तत्त्व है। आत्म-तत्व दर्शन का मुख्य विषय है जिसे स्वत: सिद्ध और स्वप्रकाश माना गया है। वह अजर, अमर, नित्य सनातन है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद, गीता आदि ग्रंथों में आत्मा की सत्ता स्वीकार की गयी है। गीता का तो दूसरा अध्याय आत्म तत्व का ही निरूपण करता है। इसमें कृष्ण अर्जुन को आत्मा की अमरता का ज्ञान देते हैं। वे कहते हैं कि -

"य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते॥

अर्थात- जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा वास्तव में ना तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।"[९१] कहने का आशय है कि आत्मा की मृत्यु असंभव है। आत्मा के अमरतत्व पर कृष्ण कहते हैं कि -

"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय:।

अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

तात्पर्य है- यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।"[९२] आत्मा का रहस्य व्यक्ति के लिए आकर्षण का

विषय है। आत्मतत्त्व को स्वत: सिद्ध प्रकाश माना गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आत्मा का अनुभव करता है। उसे अपने होने का ज्ञान होता है। चंद्रधर शर्मा के अनुसार "आत्मन् शब्द की व्युत्पत्ति के लिए शंकराचार्य ने एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है- आत्मा जगत के सारे पदार्थों में व्याप्त रहता है (आप्नोति), सारे पदार्थों को अपने में ग्रहण कर लेता है (आदत्ते), सारे पदार्थों का अनुभव करता है (अत्ति) और इसकी सत्ता निरंतर बनी रहती है, इसलिए इसे 'आत्मा' कहा जाता है।"[९३] अत: आत्मा शाश्वत है। अज्ञेय भी आत्मा की सत्ता की जिज्ञासा से परे नहीं हैं। भारतीय दर्शन आत्मा के शुद्ध, व्यापक और नित्य स्वरूप को स्वीकारता है।

आत्मा के इस रूप की अभिव्यक्ति अज्ञेय की कविताओं में भी दिखाई देती है। जगत के पदार्थों में उन्हें इस 'मैं' की अनुभूति है-

"मैं सोते के साथ बहता हूं पक्षी के साथ गाता हूं,

वृक्षों के कोपलों के साथ थरथराता हूं,

और उसी अदृश्य क्रम में, भीतर ही भीतर

झरे पत्तों के साथ गलता और जीर्ण होता रहता हूं

नए प्राण पाता हूं।"[९४]

अज्ञेय को इस आत्म की न केवल अनुभूति ही है वरन वे उसका परिणय महाशून्य के साथ भी कराते हैं-

"ओ आत्मा री,

कन्या भोली क्वांरी

महाशून्य के साथ भांवरें तेरी रचीं गईं।

x x x

जा आत्मा जा ,

कन्या- वधुका-

उसकी अनुगा,

वह महाशून्य ही अब तेरा पथ"[९५]

यह महाशून्य निर्विकार परमात्मा है। कविता में आत्मा और परमात्मा का एकात्म रूप दृष्टव्य है। दोनों के एकाकार का यह रूप कबीर का स्मरण कराता है -

"मैं अपने साहब संग चली।

हाथ में नारियल मुख में बीड़ा, मोतियन मांग भरी।"[९६]

कबीर की आत्मा रूपी दुल्हन अपने परमात्मा रूपी प्रियतम के साथ इस संसार से विदाई ले रही है। भारतीय दर्शन आत्मा और परमात्मा की सत्ता स्वीकार करता है। आत्मा जीव-चेतन है जो मन और इंद्रियों से घिरा रहता है। वाचस्पति गैरोला के अनुसार- "उपनिषदों में जीव को वैयक्तिक आत्मा और आत्मा को परम आत्मा कहा गया है और बताया गया है कि दोनों क्रमश: अंधकार तथा प्रकाश की भांति एक ही गुफा में निवास करते हैं। जीव अनुभूतियुक्त और कर्मफलों के बंधनों से जकड़ा हुआ है, किन्तु आत्म, अज, अनादि और नित्य है तथा कर्म बंधनों से विमुक्त है। जीव का लक्ष्य होता है आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना और सारे बंधनों और द्वैतभाव को मिटाकर अद्वैत की ओर उन्मुख होना।"[९७] जीव शरीर के पिजड़े में बंद है और आत्म शक्ति से वह गतिमान है। अज्ञेय शरीर के इसी शक्ति को आत्मा कहते हैं -

"देह-

वल्ली!

रूप को

एक बार बेझिझक देख लो। पिंजरा है? पर मन इसी से उपजा।

जिस की उन्नीत शक्ति आत्मा है।"[९८]

परमात्मा सर्वव्यापी परम सत्ता है। उपनिषद में इसे ब्रह्म कहा गया है। चंद्रधर शर्मा के "यह सब जड़चेतनमय विश्व ब्रह्म का शरीर है और

ब्रह्म इसकी आत्मा है, अत: निश्चय ही सब कुछ ब्रह्म ही है- 'सर्व खलु इदं ब्रह्म।"[९९] अज्ञेय की कविताओं में इस निर्विकार की चेतना का अनुभव किया जा सकता है-

"महाशून्य

वह महामौन

अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय

जो शब्दहीन

सब में गाता है।"[१००]

'असाध्य वीणा' कविता की इन पंक्तियों में 'महाशून्य' और महामौन का वर्णन परमतत्त्व का संकेत करता है। किरीटी तरु से बनी वीणा में साधक को उस ब्रम्ह का साक्षात्कार होता है जो सब में समाहित है। रामदरश मिश्र का कथन है- लौकिक स्तर पर किरी तरु समष्टि का प्रतीक है। अलौकिक स्तर पर वह ब्रहम है। महामौन है जिसमें संगीत सोता है, विराट है जो आकाश से लेकर पाताल तक व्याप्त है जो नाना और ध्वनियों और गतियों का साक्षी और ग्रहीता है।"[१०१] आकाश से लेकर पाताल तक व्याप्त होने का आशय यही है कि सम्पूर्ण सृष्टि ब्रम्हमय है।

अज्ञेय के काव्य में इस महाशून्य और महामौन का प्रयोग उनकी दार्शनिक दृष्टि को स्पष्ट करता है। यह महाशून्य ही सृजनकर्ता है। उसी का स्वरूप हमारे चारों ओर तरंगित हो रहा है-

"यह महाशून्य का शिविर

असीम छा रहा उपर

नीचे यह महामौन की सरिता

दिग्विहीन बहती है

x x x x x

रूपों में एक रूप सदा खिलता है
गोचर में एक अगोचर अप्रमेय
अनुभव में एक अतींद्रिय
पुरुषों के हर वैभव में ओझल
अपौरुषेय मिलता है।
मैं एक शिविर का प्रहरी, भोर जगा
अपने को मौन नदी के खड़ा किनारे पाता हूं:
मन मौन मुखर सब छंदों में
उस एक साथ अनिर्वच, छंद-मुक्त को
गाता हूं।"[१०२]

परमतत्त्व समस्त जड़ और चेतन में व्याप्त है। उस अनिर्वचनीय आत्मा की उन्मुखता भी उसी ओर है। इस सृष्टि का नियंता जड़ और चेतन का आधार है। वही सब में गाता है। आत्मा उस महामौन के शिविर का प्रहरी है और उसी परमानंद को भजता है। कहने का तात्पर्य यही है कि द्रष्टा की आत्म-चेतना ही शुद्ध स्वरूप है। शंकराचार्य ने ब्रह्म से ही सब उत्पन्न माना है। चंद्रधर शर्मा ने अद्वैत वेदान्त के ब्रह्म संबंधी लक्षण पर प्रकाश डाला है- "ब्रह्मसूत्र (जन्माद्यस्य यत:- १-१-२) में ब्रह्म का लक्षण इस प्रकार दिया है- ब्रह्म इस जगत की उत्पति, स्थिति और लय का कारण है। शंकराचार्य के अनुसार यह सूत्र तैत्तिरीय उपनिषद के उस वाक्य की ओर संकेत करता है जिसमें कहा गया है कि ब्रह्म वह है कि जिससे इस जगत के समस्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिसमें स्थित और जीवित रहते हैं और जिसमें पुन: विलीन हो जाते हैं- (यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवंति, यत प्रयंत्यभिसंविशान्ति....यद् ब्रह्म)"[१०३] जयशंकर प्रसाद की कामायनी में भी एक ही सत्ता को स्वीकार किया गया है-

"एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह।

नीचे जल था ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन,

एक तत्त्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन।"[१०४]

तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में एक ही नाम को सत्य कहा है। ब्रह्म के ही स्वरूप को सगुण और निर्गुण कहा जाता है-

"अगुन सगुन दुई ब्रहम सरुपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥

मोरे मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥"[१०५]

अज्ञेय भी मानते है कि सभी जीव उसी असीम शक्ति का अंश हैं। हमारे भीतर जो चेतना विद्‌यमान है वह उसी असीम का ही अणु है-

"शक्ति असीम है, मैं भी शक्ति का एक अणु हूं

मैं भी असीम हूं।

एक असीम बूंद

असीम समुद्र को अपने भीतर प्रतिबिम्बित करती है

एक असीम अणु उस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित करती है"[१०६]

अज्ञेय का विश्वास असीम सत्ता में अवश्य है किन्तु वह ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है। वे रहस्यवादी हैं। वे परमशक्ति में मिल जाना चाहते हैं, जिसका वे अंश है। वे कहते हैं -

"लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है

x x x x x

एक असीम अणु उस असीम शक्ति को जो उसे प्रेरित करती है,

अपने भीतर समा लेना चाहता है,

उस की रहस्यमयता का परदा खोल कर उस में मिल जाना चाहता है-

यही मेरा रहस्यवाद है।"[१०७]

रहस्यवाद सत्य के अपरोक्ष अनुभूति में विश्वास है। रहस्यवाद के संबंध में नामवर सिंह का कथन है- "रहस्यवाद एक निश्चित दर्शन है जिसके अनुसार सत्य 'रहस्य' है और उसका केवल दर्शन होता है। सत्य का दर्शन सबको सब समय नहीं होता। विशेष व्यक्ति विशेष क्षण में ही सत्य को देख सकते हैं। ऐसे विशेष व्यक्ति को विशेष प्रकार की दृष्टि प्राप्त होती है जिसे कभी-कभी अंतर्दृष्टि भी कहते हैं।"[१०८] ये रहस्यवादी भाव छायावाद में दिखाई देता है। छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा भी अपने प्रिय असीम की रहस्यात्मक सत्ता में ही अपना लघु जीवन देखती हैं -

"उस असीम का सुंदर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे!

मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनंदन रे!"[१०९]

अज्ञेय भी इस रहस्यात्मक सत्ता का अन्वेषण करते हैं। लेकिन उनका रहस्यवाद छायावादी रहस्यवाद से भिन्न है। उनके रहस्यवाद में वैज्ञानिकता है। इस संबंध में रमेश ऋषिकल्प का कथन है- "अज्ञेय के रहस्यवाद की दिशा विज्ञान से प्रेरित है जो चेतना के विकास की ओर उन्मुख है।"[११०] आशय यह है कि विराट की सत्ता का मानव चेतना से घनिष्ठ संबंध है। मानव चेतना असीम सत्ता की ज्योति से प्रकाशित है। अज्ञेय इस असीम सत्ता को शून्य कहते हैं -

"शून्य को भजता हुआ मैं भी

पराजय बरजता हूं

चेतना मेरी बिना जाने

प्रभा में निमजती है:

मैं स्वयं उस ज्योति से अभिषिक्त

सजता हूं।"[१११]

इस कविता में बौद्ध दर्शन के महायान शाखा के शून्यवाद का प्रभाव दिखाई देता है। अज्ञेय के संबंध शून्य की भावना से है न कि सिद्धांत से। इस संबंध में राधावल्लभ त्रिपाठी का मत है कि "शून्यता की बात

महात्मा बुद्ध ने की है और नागार्जुन ने उसे दार्शनिक युक्ति तक के साथ एक सैद्धांतिक आधार दिया है, किन्तु अज्ञेय को उससे कुछ लेना देना नहीं है, वे इस दृष्टि के महात्मा बुद्ध के जीवन में प्रतिफलन का अपनी भावना दृष्टि में साक्षात्कार कर उसे अभिव्यक्ति देते हैं, अथवा यह भी कह सकते हैं कि कवि के रूप में वे नागार्जुन की तार्किक युक्तियों से जिस जीवन को लक्षित देखते हैं, उसे अभिव्यक्ति देते हैं। इसी में उसका काव्यत्व है। इस कविता की प्रामाणिकता इसके तर्कत: सिद्ध होने में नहीं होकर कवि के भावन की सच्चाई में है।"[११२]

शून्य की भांति अज्ञेय की कविताओं में क्षण का भी आग्रह है। प्रत्येक क्षण की निज और स्वतंत्र सत्ता है। मनुष्य प्रत्येक क्षण को भोगता है। अज्ञेय प्रत्येक क्षण को महत्त्व देते हैं। वे क्षण को अनुभूति के साथ जोड़ देते हैं और कहते हैं- "क्षण का आग्रह क्षणिकता का आग्रह नहीं, अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह है। और अनुभूति को अनुभावक से अलग नहीं किया जा सकता। अनुभूति अद्‌वितीय है क्योंकि कोई दूसरे की अनुभूति नहीं भोग सकता।"[११३] इसलिए अज्ञेय हर क्षण के महत्त्व की स्थापना करते हैं-

"शरद चांदनी बरसी

अंजुरी भर कर पी लो

ऊंघ रहे हैं तारे सिहरी सरसी

ओ प्रिय कुमुद ताकते अनझिप

क्षण में तुम भी जी लो"[११४]

क्षणवाद बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धांतों में से एक है जो 'सर्वं क्षणिकम्' कहकर संसार की क्षणिकता का बोध कराती है। अज्ञेय को भी जीवन क्षणिकता का बोध है। वे कहते हैं-

"क्षण-क्षण जो मरता दिखता है, अविरल अंत: सत्व है

जीवन की गति धारा है या एक लड़ी है- क्रम अनवछिन्न है,

हर क्षण आगे पीछे बंधा हुआ है, इसीलिए पर अद्वितीय है, भिन्न है
"[११५]

अज्ञेय के काव्य में जीवन और मृत्यु की दार्शनिक व्याख्या मिलती है। संसार में जन्म है तो मृत्यु भी है। मृत्यु शाश्वत सत्य है। आज के वैज्ञानिक युग में भी इस सत्य को बदला नहीं जा सका है। अज्ञेय भी इस सत्य को स्वीकार करते हैं और कहते हैं इन पंक्तियों में अज्ञेय इस बात पर बल देते हैं कि यद्यपि मृत्यु तो सत्य है परंतु जो जीवन हमने पाया है वह भी सत्य है और उसे नकारा नहीं जा सकता। इस संदर्भ में अज्ञेय कहते हैं- "अगर मेरे लिए मृत्यु नहीं है, तो फिर जीवन भी 'मेरे लिए' नहीं है। मैं आज जीता हूं, यह भी उतनी सांयोगिक बात है जितनी यह कि कल मैं मर जाऊंगा।"[११६] व्यक्ति का जीवन उसके हृदय की गति पर आधारित है। जब तक वह स्पंदित होता है तभी तक उसका जीवन है। अज्ञेय उसे सांस का पुतला क़हते है जो वृद्धावस्था और मरणधर्म से बंधा है।

"सांस का पुतला हूं मैं:

जरा से बंधा हूं और

मरण को दे दिया गया हूं।"[११७]

अज्ञेय को इस मृत्यु की जिज्ञासा भी है। वे जीवन मृत्यु दार्शनिकता की गुत्थियों को सुलझाना चाहते हैं। इसलिए वे प्रश्न करते हैं-

"शिखर पर क्या है गजराज?

.......मृत्यु

क्या मृत्यु ही है शिखर पर?

मृत्यु शिखर पर क्यों है?

क्या यहां नहीं है, नहीं हो सकती?"[११८]

अज्ञेय मृत्यु तो अवश्यंभावी है। वह तो निश्चित है। अज्ञेय का इस तथ्य में पूरा विश्वास है। जीवन के इस अनुक्रम की उन्हें पहचान है। तभी तो वे कहते हैं -

"श्वास की दो क्रियाएं-खींचना फिर छोड़ देना,

कब भला संभव हमें इस अनुक्रम को तोड़ देना"[११९]

अज्ञेय के काव्य में काल का सौंदर्य भी परिलक्षित है। काल अर्थात समय। हम सभी काल के विषय में जानते हैं। यथा हम कहते हैं प्राचीन काल की बात है अथवा वह कार्य इस काल में हुआ या फिर उसका काल निकट है। इन सभी उदाहरण में एक काल अक अर्थ है समय से है चाहे वह समय बीते हुए कल का हो अथवा आने वाले समय का। इसी आधार पर काल के तीन रूप हैं- वर्तमान काल, भूत काल तथा भविष्य काल। तीनों काल का संबंध हमारी अनुभूतियों से है। बिना काल के मनुष्य की सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती। पाश्चात्य बुद्धिवादी दार्शनिकों के अनुसार समय अथवा काल के बिना हम किसी भी वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। काल के संदर्भ में अज्ञेय का मत है- "काल की प्रतीति, गति की उन्मुखता अथवा प्रतिमुखता की प्रतीति है। उन्मुखता की प्रतीति से भविष्य का और प्रतिमुखता से अतीत का बोध होता है।"[१२०] अज्ञेय मानते हैं कि हमारी चेतना वर्तमान में अवस्थित है और इसी निश्चित बिन्दु से हमें अतीत और भविष्य का ज्ञान होता है। इसके लिए वे डमरू का उदाहरण देते हैं। इसकी मध्य की स्थिति को वे 'वर्तमान का क्षण' कहते हैं जिसके दोनों शंकु अतीत और भविष्य की ओर इंगित करते हैं और डमरू के शंकुओं पर आघात करने वाली कौड़ी चित्त है। चित्त की गति से हमें अतीत और भविष्य की अनुभूति होती है। उनके इस विचार को 'काल-स्थिति-१' कविता में देखा जा सकता है-

"जिस अतीत को मैं भूल गया हूं वह

अतीत नहीं है क्योंकि वह

वर्तमान अतीत नही है

जिस भविष्य से मुझे कोई अपेक्षा नहीं है

भविष्य नहीं है क्योंकि वह

वर्तमान भविष्य नहीं है।

स्मृतिहीन, अपेक्षाहीन वर्तमान-

ऐसा वर्तमान क्या वर्तमान है ?

वही क्या है?"[१२१]

उनकी कविता में काल का आग्रह बराबर दिखाई देता है। उनकी काल संबंधी दृष्टि गूढ़ है। उनकी कविता में काल का क्षितिज अछोर है-

"गजर

बजता है

और स्वर की समकेन्द्र लहरियां

फैल जाती हैं

काल के अछोर क्षितिजों तक।"[१२२]

काल का सबंध व्यक्ति के अस्तित्व से जुड़ा है। इसी में उसको अपने होने की अनुभूति होती है। अस्तित्व व्यक्ति की इयत्ता है। जगदीश सहाय श्रीवास्तव ने अस्तित्ववादी पाश्चात्य दार्शनिक हाइडेगर के मानव अस्तित्व संबंधी विचारों का उल्लेख किया है- "मनुष्य केवल अस्तित्ववान ही नहीं है बल्कि उसके भीतर अस्तित्व की चेतना भी विद्‌यमान है। यही मानव-अस्तित्व की विशिष्टता है।"[१२३] तात्पर्य यह है कि मनुष्य एक चेतन सत्ता है और उसकी अपनी निज इयत्ता है। उसका अस्तित्व पहले है और सत्व बाद में। यहां अज्ञेय पाश्चात्य दर्शन के अस्तित्ववादी विचार से प्रभावित लगते हैं। इस संबंध में अज्ञेय का कथन है "अस्ति पहले है भवति बाद में। अगर मैं अपने अस्तित्व के बारे में नि:संशय नहीं हूं- अगर यह आस्था मुझमें नहीं है कि 'मैं हूं' और यह होना और यह 'मैं' एक विविक्त, अद्‌वितीय, स्वतंत्र, आत्मचेतन और आत्मनुशासित मैं का होना है, एक केंद्र युक्त सत्ता,

'होना' जिसकी परिधि है और केंद्र जिसका 'मैं' है -तो मैं किसी बात के संबंध में भी असंदिग्ध नहीं हो सकता।"[१२४] उनके इस 'मैं' की अभिव्यक्ति व्यक्ति की इसी स्वतंत्रता को दर्शाती है। अज्ञेय की कविताएं व्यक्ति के महत्त्व की स्थापना करती हैं। आज के वैज्ञानिक युग में उसकी ये स्वतंत्रता बाधित हो रही है जो उसके अस्तित्व के लिए ठीक नहीं। उसकी स्वतंत्रता का हनन होने पर उसमें नैराश्य का भाव उत्पन्न होता है -

"ऐसा क्यों हो

कि मेरे नीचे सदा खाई हो

जिसमें मैं जहां भी पैर टेकना चाहूं

भंवर उठे, क्रुद्ध;

कि मैं किनारों को मिलाऊं

पर जिनके आवागमन के लिए रह बनाऊं

उनके द्वारा निरंतर दोनों ओर से रौंदा जाऊं?"[१२५]

वस्तुत: अज्ञेय के काव्य का सौंदर्य बहुपक्षीय है। उन्होंने साहित्य को वही दिया जो सौंदर्य से परिपूर्ण था अर्थात आनंददायक था। उनके काव्य में प्रकृति, नारी, लोकजीवन और दर्शन का सौंदर्य अपने विभिन्न रूपों में स्पंदित होता है। उनकी सुंदरी दृष्टि के विषय में इस संदर्भ में लक्ष्मीकांत वर्मा का कथन उचित ही है- "अज्ञेय सौंदर्य वादी थे, लेकिन वह सौंदर्य जिसमें जीवन का सब कुछ हो हर्ष हो, विषाद हो, उल्लास हो और साथ वह तिक्त-कटु भी, जो क्षार होता है। अज्ञेय जो देते थे वह सुरुचि-सम्पन्न होता था- संयत, अनुशासित और प्रामाणिक लेकिन जो लेते थे वह तिक्त कटु, कसैला था। हर रचना का माध्यम वे स्वयं थे, लेकिन उनका 'स्वयं' एक छन्नी था, जो हर अनुभव को छानकर बाहर जाने देता था और इस छानने में जो भी कटु और तिक्त होता था, वह उनके स्वयं का भाग था।"[१२६]

अत: अज्ञेय की कविताएं उनकी बौद्धिक परिपक्वता, वैयक्तिक गरिमा, रागदीप्त संवेदना काव्य के सौंदर्य को प्रकाशित करती हैं। उनकी कविता का सौंदर्य अलौकिक न होकर होकर मानवीय सत्य पर आधारित है।

--****--

संदर्भ सूची

लेखक/संपादक पुस्तक पृष्ठ संख्या

१- डॉ॰ हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्दकोश, ८५१

२- डॉ॰ हरदेव बाहरी, हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश, ७८

३- भोला नाथ तिवारी (संपादक), उद्धरण कोश, ३९४

४- भोला नाथ तिवारी (संपादक), उद्धरण कोश, ३९४

५- डॉ॰ भगीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्य: इतिहास, सिद्धान्त और वाद, ३५

६- डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, कविता: नए संदर्भ का विकास, १७

७- डॉ॰ रामविलास शर्मा, आस्था और सौंदर्य, २७

८- डॉ॰ रामविलास शर्मा, आस्था और सौंदर्य, २७

९- डॉ॰ भगीरथ मिश्र, नया काव्यशास्त्र, ८४

१०- डॉ॰ मुकेश गर्ग, साहित्य और सौंदर्य बोध, ८

११- डॉ॰ रामविलास शर्मा, आस्था और सौंदर्य, २८

१२- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, ९४

१३- कुंवरपाल सिंह, मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र और उपन्यास, ९

१४- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली-९ ३५९

१५- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, ९७

१६- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक), अज्ञेय, २७८

१७- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से साक्षात्कार, १४१

१८- अज्ञेय (संपादक), साहित्य का परिवेश, १०४

१९- अज्ञेय, सदानीरा-१, २४५

२०- अज्ञेय, सदानीरा-१, १४८

२१- सुमित्रानंदन पंत, आधुनिक कवि-२, ३

२२- अज्ञेय, सदानीरा-१, २०७,२०८

२३- अज्ञेय, सदानीरा-१, २०८

२४- संपादक- रूपा गुप्ता, अज्ञेय और प्रकृति, १५

२५- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ५७

२६- यतीन्द्र मिश्र, जितना तुम्हारा सच है, १५

२७- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ११

२८- अज्ञेय, बावरा अहेरी, २१

२९- मैनेजर पाण्डेय, सूरसंचयिता, १५६, १५७

३०- अज्ञेय, सदानीरा-१, २४५,२४६

३१- ओम थानवी, अपने-अपने अज्ञेय-२, २४३

३२- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३२८,३२९

३३- अज्ञेय, सदानीरा-२ ३६७

३४- अज्ञेय, सदानीरा-१, २४१

३५- रामस्वरुप चतुर्वेदी, अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, १६

३६- दैनिक जागरण, २६ मई २०१५, १

३७- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३६७

३८- अज्ञेय आंगन के पार द्वार, १६७

३९- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ३७

४०- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली-२, ४७४

४१- विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय वन का छंद, ९६

४२- तुलसीदास, रामचरित मानस, टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार, १९६

४३- श्री रत्नशंकर प्रसाद, प्रसाद वाङ्मय (रचनावली), (प्रथम खंड), ५३१

४४- अज्ञेय, चिंता, ३६,३७

४५- अज्ञेय, चिंता, ४४,४५

४६- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, अज्ञेय, २९०

४७- अज्ञेय, चिंता, ७

४८- अज्ञेय, सदानीरा-१, २४७

४९- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ३४

५०- डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद, अज्ञेय: कवि और काव्य, १०८

५1- डॉ॰ ब्रज मोहन शर्मा, ७५

५२- अज्ञेय सदानीरा-१ २५१

५३- अज्ञेय सदानीरा-१, १४३

५४- अज्ञेय, तारसप्तक, २७२

५५- अज्ञेय सदानीरा-१, २३६

५६- अज्ञेय परंपरा और प्रयोग, रमेश ऋषिकल्प, १६९

५७- अज्ञेय, सदानीरा-२ १४२

५८- अज्ञेय बावरा अहेरी, ३७

५९- डॉ॰ संतोष कुमार तिवारी, अज्ञेय से अरुण कमल-१, ४०

६०- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी बार, २०

६१- अज्ञेय, सदानीरा-२, २०४

६२- अज्ञेय, सदानीरा-२, २२२

६३- अज्ञेय, केंद्र और परिधि, २२६

६४- डॉ॰ हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्दकोश, ७२७

६५- डॉ॰ उर्मीला बी॰ शर्मा के, निराला के काव्य में लोक तत्त्व, ४२

६६- डॉ॰ वीरेंद्रनाथ द्विवेदी, आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्त्व, ९

६७- डॉ॰ रामनिवास शर्मा, लोक साहित्य का लोक तत्त्व, ९

६८- जयदयाल गोयंदका, श्रीमदभगवतगीता:, (श्लोक-४/४६), २४६

६९- तुलसीदास, रामचरितमानस, टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार, १०

७०- तुलसीदास, रामचरितमानस, टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार, ३१

७१- आलोचना- सहस्त्राब्दी अंक-५१, ८२

७२- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि, ८२

७३- अज्ञेय, सदानीरा-१, २४४

७४- अज्ञेय, चिंता, ९७

७५- गगनांचल, अंक -६, ६१

७६- अज्ञेय, सदानीरा-१, १९०

७७- अज्ञेय, बावरा अहेरी, १८,१९

७८- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ४६

७९- अज्ञेय, सदानीरा-१, २०५

८०- अज्ञेय, सदानीरा-१, २०८

८१- अज्ञेय, सदानीरा-१, २४४

८२- अज्ञेय, सदानीरा-१, २७९

८३- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, ६१

८४- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, ४४

८५- सुश्री सुमन झा, अज्ञेय का काव्य, १३५

८६- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ७६

८७- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ८१,८२

८८- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३३२, ३३३

८९- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय: कवि-कर्म का संकट, १०८

९०- इन्दु जैन, रघुवीर सहाय, अपरोक्ष: अज्ञेय से सात संवाद, ८२

९१- जयदयाल गोयंदका(टीकाकार), श्रीमदभगवत गीता , ७८, (२/१९)

९२- जयदयाल गोयंदका(टीकाकार), श्रीमदभगवत गीता , ७८, (२/२०)

९३- चंद्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन, ७

९४- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ३६

९५- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ४८, ४९

९६- हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, २५४

९७- वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन, ४३

९८- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ३५

९९- चंद्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन, ११

१००- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ८३

१०१- प्रो॰ वशिष्ठ अनूप, असाध्य वीणा की साधना: मूल्यांकन और पाठ, १५

१०२- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ३५

१०३- चंद्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन, २५०

१०४- श्री रत्नशंकर प्रसाद, प्रसाद वाङ्मय, (प्रथम खंड), ५१५

१०५- तुलसीदास, रामचरितमानस, टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार, २७

१०६- अज्ञेय, सदानीरा-१, १७६

१०७- अज्ञेय, सदानीरा-१, १७६

१०८- नामवर सिंह, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, ३९

१०९- महादेवी वर्मा, आधुनिक कविता-१, ९७

११०- रमेश ऋषिकल्प, अज्ञेय की कविता: परंपरा और प्रयोग, ९८

१११- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ५४

११२- आलोचना त्रैमासिक, अंक-५२, १४

११३- अज्ञेय, आत्मनेपद, १२५

११४- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ५५

११५- अज्ञेय, सदानीरा-१, २७६

११६- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली-९, १५१

११७- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ३२

११८- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३३८

११९- अज्ञेय, सदानीरा-१, १६३

१२०- अज्ञेय, संवत्सर, ७८

१२१- अज्ञेय, सागर मुद्रा, ८९

१२१- अज्ञेय, सागर मुद्रा, ८८

१२३- जगदीश सहाय श्रीवास्तव, पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियां, ४५३

१२४- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली-९, १५९

१२५- अज्ञेय, सागर मुद्रा, ५५

१२६- डॉ॰ नीलम ऋषिकल्प, अज्ञेय: स्मृतियों के झरोखे से, ४९-५०

पंचम अध्याय

अज्ञेय का काव्य: भाषिक दृष्टि

अज्ञेय युग प्रणेता और आधुनिक कवि हैं। अपनी बहुमुखी प्रतिभा से उन्होंने हिन्दी साहित्य को आधुनिक और नवीन रूप दिया। कविता को छायावाद की काल्पनिकता और भावात्मकता से निकालकर यथार्थ और बौद्धिकता के आधार पर प्रतिष्ठित दिया। उनकी अन्वेषणात्मक दृष्टि के परिमाण स्वरूप ही कविता में प्रयोगवाद की धारा बही। अज्ञेय के काव्य में नवीनता का बोध है। भाषिक दृष्टि से उनके काव्य में नवीन भाषा, प्रतीक और नए बिम्बों, उपमानों आदि के आधुनिक संवेदनाओं का सूत्रपात हुआ।

अज्ञेय ने नए विचारों के साथ कविता में नए युग की शुरुआत की। उनकी प्रयोगशील दृष्टि ने कविता के प्रत्येक पक्ष को पुष्ट किया। अज्ञेय की कविता में विशिष्टताओं के संदर्भ में विद्यानिवास मिश्र का कथन है कि "अज्ञेय की कविता मुझे इसलिए प्रिय है कि वह जहां कहीं वक्तृता के प्रभाव से या सफाई के आग्रह से मुक्त है, शुद्ध कविता है। युग उसमें है पर व्यक्ति के माध्यम से। दर्प उसमें है, ध्वंस या निर्माण का नहीं अपनी किरण के दुलार का। बिंबों का वैचित्र भी ऐसा है जो अपरिचित न होते हुए भी नए परिचय का रस देता है, वहीं दीप, वही मुकुर, वही कोकनद, वही सागर, वही लहर, वही नैवेद्य, वही आहुति अज्ञेय अज्ञेय की कविता में नया प्राण पा जाते हैं। मैं अज्ञेय में नूतनता के अन्वेषण में नहीं बल्कि जीर्णता में भी पलाश के फूल की दहक देखता हूं।"[१] मिश्र जी का यह कथन न केवल अज्ञेय के काव्य के सौंदर्य की विशेषता बताता है वरन उसके भाषिक दृष्टि पर भी प्रकाश डालता है।

अज्ञेय के काव्य में कथ्य और भाषा के स्तर पर आधुनिक संवेदना दिखाई देती है। काव्य की दृष्टि से उनके काव्य की अंतर्वस्तु अपने पूर्व की काव्य परंपरा से भिन्न है। उनके काव्य में यह भिन्नता कला, भाषा, और शिल्प के आधार पर दिखाई देता है। काव्य के रूप-विधान और

सौंदर्य की दृष्टि से उत्कृष्ट उनके काव्य को उत्कृष्ट ही कहा जाएगा। उनकी भाषिक दृष्टि को समझने के लिए उनके कला, शिल्प, भाषा संबंधी मतों पर विचार करना समीचीन है।

क- कला एवं शिल्प संबंधी विचार

कवि एक कलाकार है और उसका काव्य उसकी कला। कलाकार कोई भी व्यक्ति हो सकता है जिसमें किसी कला के प्रति आग्रह हो। प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति करना चाहता है। यह उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अपने हृदय के भावों को वह किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त अवश्य करता है। उसकी इसी प्रवृत्ति ने संसार में अनेक कलाओं को जन्म दिया है। मूर्ति बनाने की कला, मिट्टी के बर्तन बनाने की कला, नक्काशी की कला, लकड़ी की वस्तुएं तैयार करने की कला, संगीत की कला, चित्र से अपनी कला का उद्घाटन करने वाला या फिर कविता करने वाला व्यक्ति कलाकार ही कहलाएगा और उसके द्वारा निर्मित या सृजित वस्तु- कला।

हम मानते हैं कि यह सृष्टि भी ईश्वर की कला है। उसकी इस कलात्मक सृष्टि का सौन्दर्य अद्भुत है। उसकी इस रचना का रूप विधान भी अदभुत है जिससे हम उसको कुशल शिल्पी कह सकते है। यद्यपि हमने ईश्वर को देखा नहीं परंतु संसार के व्यवस्थित सौंदर्य को देखकर हम इसके शिल्पी का या कलाकार का अनुमान कर लेते हैं। यह कहने का अर्थ यही है कि कला, कलाकार, शिल्प और शिल्पी आदि का संदर्भ हमें प्रकृति से ही मिल जाता है।

शिव कुमार मिश्र का कथन इसकी पुष्टि करता है कि हमें अपने कलाओं के लिए सामाग्री इसी जगत से प्राप्त होती है। इस संबंध में उनका मार्क्सवादी कला से संबन्धित कथन दृष्टव्य है- “यदि साहित्य एवं कलाओं का निर्माण इंद्रिय बोध, भावों और विचारों से होता है, तो इन सबका स्रोत यह यथार्थ जगत ही है। यथार्थ जगत के संपर्क से ही मनुष्य के इंद्रिय बोध पर शान चढ़ती है, उसकी सौंदर्य चेतना जाग्रत और परिष्कृत होती है, उसका भाव तथा विचार जगत सम्पन्न तथा समृद्ध होता है। यथार्थ जगत का संपर्क ही उसे प्राणवान तथा जीवंत

अनुभवों की वह व्यापक राशि प्रदान करता है, जो उसकी कला तथा साहित्य को स्थायित्व प्रदान करते हैं। इसी आधार पर मार्क्सवादी साहित्य दृष्टि यह प्रतिपादित करती है कि वस्तुगत यथार्थ से जुड़कर ही महान कला तथा साहित्य की रचना की जा सकती है, और जो साहित्य या कला यथार्थ जीवन से जितना ही दूर तथा कटी हुई होती है, वह उतनी दुर्बल तथा काल्पनिक होती है तथा जीवन की संभावनाएं उसमें उतनी ही क्षीण होती हैं।"[२]

मानव जीवन और कला का घनिष्ठ संबंध है। मानव अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिए कला का सर्जन करता है। इससे वह सुख और आनंद का अनुभव करता है। कला की अभिव्यंजना के लिए प्रतिभा उसका सहयोग करती है। कहने का आशय है कि कला की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति तभी संभव है जब कलाकार में मौलिक रूप से कला करने का गुण उसमें व्याप्त हो। यह अधिकार पूर्वक नहीं कराया जा सकता। रामशंकर त्रिपाठी का मंतव्य है- "मनुष्य जब अपनी प्रतिभा से सौंदर्य का सृजन करता है तब वह कलाकार होता है। कला जिस सौंदर्य को जन्म देती है उसमें दो विशेष गुण रहते हैं: एक तो यह कि मानव-माध्यम से उत्पन्न होने कारण उसमें 'मानवता' और 'मार्मिकता' रहती है। प्रकृति के 'दिव्य' सौंदर्य से कला का मानव-सौंदर्य अधिक मार्मिक होता है। दूसरे कला-सृष्ट सौंदर्य में 'अर्थ' की अभिव्यक्ति अवश्य होती है। कला के माध्यम से मनुष्य की चेतन और अचेतन वेदना मुखर होती है।"[3] इनके अनुसार मानव निर्मित कला अधिक श्रेष्ठ होती है। सृष्टि के सौन्दर्य और मानवीय सौंदर्य में रामशंकर भेद करते हैं। उनके अनुसार मानव निर्मित कला अधिक सुंदर कही जाएगी क्योंकि उसमें मानवीय तत्त्व है। इसका अर्थ यह है कि मानवीय कलाएं मानवीय आधार लेकर उत्पन्न होती हैं जिसमें मानव के कल्याण का तत्त्व विद्यमान रहता है और इसीलिए वे मानव जीवन के अधिक करीब हैं।

कला की अवधारणा से यह तो ज्ञात होता है कि कला व्यक्ति के मन के भावों को प्रकट करती है और उसके द्वारा जो कला की अभिव्यक्ति होती है वह उसके मन के गह्वर में निहित सौंदर्य का यही प्रत्यक्षीकरण

है। उसकी कला उसे सुख प्रदान करती है। कला कलाकार के काम्य की प्राप्ति है। वह उसके अभीष्ट की अभिव्यक्ति है। कलाकार के मन में यदि कुछ रचने के भाव हैं अथवा उसके हृदय में भाव उठाते हैं उसका शमन आवश्यक है। कला को स्पष्ट करने के लिए साहित्यकारों ने अपने विचार प्रकट किए हैं -

शिवकुमार मिश्र के अनुसार "कला एक साधन है जो मनुष्य को आकांक्षित की प्राप्ति करना सिखाती है, और इस प्रकार मानव हृदय के सारतत्त्व को उद्‌घाटित करती है।"[४]

शिव कुमार मिश्र जी की कला की इस अवधारणा से स्पष्ट है कि व्यक्ति की हृदयागत कामना की पूर्ति के लिए कला एक साधन है। वह साधन के रूप में व्यक्ति के सार का ही प्रकाशन करती है। इस रूप में वह व्यक्ति के अवचेतन में अवस्थित चेतना का उदघाटन है। इस प्रकार कला एक साधन के रूप में व्यक्ति की आत्मनिष्ठ सौंदर्य को प्रकाशित करती है।

कला के विषय में मार्क्सवादी चिंतन उसके दर्शन पर आधारित है। इसके अनुसार कला का संबंध व्यक्ति के आर्थिक और भौतिक जीवन से है। मार्क्सवादी कला की उत्पत्ति में श्रम को महत्वपूर्ण मानते हैं। डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी द्‌वारा मार्क्सवादी-कला विषयक अवधारणा का उल्लेख किया गया है-

"कला के उद्भव और विकास में श्रम की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है; क्योंकि उसके ही द्‌वारा उन हाथों में शक्ति और क्षमता आती है, जो कला का निर्माण करते हैं साथ ही उससे जीवन का अनुभव प्राप्त करते हैं जो साहित्य का सृजन करने में भी सहायक होता है।"[५] इस दृष्टि से कला के लिए श्रम की आवश्यकता होती है।

"मनोविश्लेषणवादी फ्रायड लिबिडो या काम वृत्ति को ही कला का मूल प्रेरक मानते हैं। उनके अनुसार "मनुष्य की कुंठित और दमित असामाजिक इच्छाएं और प्रवृत्तियां उदात्त और परिष्कृत होकर कलाओं और संस्कृतियों का निर्माण करती हैं।"[६] इस धारणा के अनुसार व्यक्ति

की दमित इच्छाएं ही चेतन मन के द्वारा उदात्त रूप में अभिव्यक्त हो जाती हैं जो कला को जन्म देती हैं।

मार्क्सवादी विचारक क्रिस्टोफर कॉडवेल ने मनोवैज्ञानिक चेतना के विरुद्ध कला के विषय में अपना विचार प्रकट किया है। उनका मत है -

"कला का जन्म संघर्ष से होता है क्योंकि समाज में फंतासी और यथार्थ के बीच में एक द्वंद चलता रहता है। यह रुग्ण तंत्री द्वंद नहीं है, क्योंकि यह एक सामाजिक समस्या है और इसका समाधान कलाकार समाज के लिए करता है।"[७] क्रिस्टोफर कॉडवेल के इस मतानुसार कला की उत्पत्ति का कारण कल्पना (फंतासी) और यथार्थ के बीच संघर्ष है। वे कला की उत्पत्ति को समाज के संदर्भ में देखते हैं।

अज्ञेय भी कला को व्यक्ति और समाज के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। उनके अनुसार समाज में जब व्यक्ति अपनी अनुपयोगिता को पाता है और समाज में रहते हुए भी अपनी असमर्थता के कारण समाज से विलगाव की स्थिति देखता है तो वह अपनी उपयोगिता सिद्ध करना चाहता है। अपनी इसी उपयोगिता की सिद्धि के लिए वह कला का सृजन करता है अज्ञेय के शब्दों में-

"कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह है।"[८]

अज्ञेय की कला के संदर्भ में की गई इस परिभाषा से तात्पर्य है कि व्यक्ति समाज में रहते हुए अपने दायित्व को निभाता है। वह सामाजिक प्राणी है और समाज में रहते हुए वह अपनी भूमिका निभाता है। अज्ञेय के शब्दों में ही- "समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति कुछ दायित्व होता है।"[९] कहने का तात्पर्य है कि व्यक्ति अपनी योग्यता सिद्ध करने के लिए कला का सहारा लेता है। अत: अज्ञेय के अनुसार कला व्यक्ति की योग्यता-सिद्धि का प्रयास है जिससे वह अपनी सामाजिक उपयोगिता को साबित करता है। अज्ञेय आगे कहते हैं-

"कला संपूर्णता की ओर जाने का प्रयास है, व्यक्ति को अपने को सिद्ध प्रमाणित करने की चेष्टा है।"[१०] व्यक्ति जब उपेक्षित अनुभव करता है तो उसमें सबसे प्रबल इच्छा समाज में अपना स्थान प्राप्त करने की

होती है। तब वह अपने आत्मनिष्ठ भावों को कला का रूप देता है। अज्ञेय का यह मत कहीं न कहीं फ्रायडीय मत से प्रभावित है। वे कहते हैं "आज का हिन्दी साहित्य अधिकांश में अतृप्ति का या कह लीजिए लालसा का, इच्छित विश्वास (विशफुल थिंकिंग) का साहित्य है।"[११] कृष्णदत्त पालीवाल का मत है कि "अज्ञेय जी के मन में कला-सृजन का यह फ्रायडीय सिद्धान्त भी कौंधता है कि कला एक प्रकार की इच्छा पूर्ति है।"[१२]

अज्ञेय मानते हैं हैं कि व्यक्ति की सामाजिक अनुपयोगिता से उसके मन में जो संघर्ष होता है वही उसे जीवन के सौन्दर्य का ज्ञान भी कराता है। अनुपयोगिता के विद्रोह से उत्पन्न यही सौंदर्य बोध उसकी कला के रूप में आकार लेता है। अज्ञेय को विश्वास है कि पहले कवि की कला ने इसी विद्रोह के भाव से जन्म लिया होगा। वे कहते हैं-

"पहला कलाकार ऐसा ही प्राणी रहा होगा, पहली कलाचेष्टा ऐसा ही विद्रोह रही होगी, फिर चाहे वह रेखाओं द्वारा प्रकट हुआ हो, चाहे वाणी द्वारा, चाहे ताल द्वारा, चाहे मिट्टी के लौंदे द्वारा।"[१३] मिट्टी के लौंदे में उसकी कला निहित है जिसमें उसके भोर का सुंदर सपना छुपा हुआ है-

"यों सब जान गए हैं

कृतिकर आज दिन क्या रचने वाला है

पर वह? बैठा है सने हाथ अनमना,

सामने ताकता मिट्टी के लौंदे को

कहीं, कभी, पहचान सके वह अपना

भोर का सुंदर सपना।"[१४]

अज्ञेय के विचार से कलाकार के भीतर एक संघर्ष रहता है जो अपने आस-पास की संवेदनाओं से प्रभावित होता है। उनका मत है कि "कोई भी कलाकार अनिवार्य रूप से अपनी परिस्थिति का परिणाम होता है। वह अपने आस पास व्याप रहे संघर्ष का फल है।"[१५] इसी संघर्ष से

कलाकार की कला मूर्त होती है। उसे जो कुछ अपनी परिस्थितियों से मिलता है उसी को वह गला-तपाकर सृजन करता है-

"पर कवि हूं स्रष्टा, द्रष्टा, दाता:

जो पता हूं अपने को भट्ठी कर उसे गलता-चमकाता हूं

अपने को मट्टी कर उस का अंकुर पनपाता हूं"[१६]

कला या साहित्य का संबंध हमारी अनुभूतियों से होता है। ये अनुभूतियां ही हमारी भावानाओं को प्रेरित करती हैं। नन्द किशोर आचार्य के अनुसार- कला या साहित्य का केंद्रीय आधार अनुभूति है और अनुभूति- चाहे वह किसी भी विषय की हो- का तात्पर्य है विषयी और विषय का भेद प्रत्येक अनुभूति अंततः आत्मानुभूति की ही प्रक्रिया है- विषय के माध्यम से विषयी की अनुभूति।"[१७] अतः कला वास्तव में कलाकार या विषयी की अनुभूति होती है।

कला के संबंध में इन विचारों के माध्यम से अज्ञेय की कला दृष्टि को समझा जा सकता है। वे कला को सत्य और ज्ञान का साधन मानते हैं। उनके अनुसार "कला का क्षेत्र विशिष्ट है: उस का सत्य विशिष्ट, अद्वितीय और मौलिक सत्य है, और उसकी दृष्टि भी वैसी है एक और अद्वितीय। यह नहीं कि कला हमें समाज से काट देती है; बल्कि इसके प्रतिकूल साधारण अनुभव के आधार पर संस्कृति तर्कना के माध्यम से ज्ञान देती है; विशिष्ट अनुभूति के आधार पर कला हमें अंतश्चेतना के माध्यम से बोध देती है। इस प्रकार कला भी ज्ञान का साधन है पर इस ज्ञान की कसौटियां विज्ञान की कसौटियां नहीं हैं"।[१८]

कला के साथ शिल्प का गहरा संबंध है। शिल्प से कला की संरचना का बोध होता है। शिल्प से कवि की अनुभूतियों को आकार मिलता है। कवि की कला उसकी अनुभूतियों का परिणाम है और कलाकार की इन अनुभूतियों का परिधान शिल्प है। काव्य के बाह्य रूप और आकार के लिए शिल्प का व्यवहार होता है। जिस प्रकार एक मकान या इमारत के बाह्य ढांचे से उसके आकार, प्रकार रूप, रंग आदि का पता चलता है उसी प्रकार शिल्प से काव्य या कला के बाह्य रूप का ज्ञान होता है। शिल्प को समझने के लिए उसकी अवधारणा को समझना समीचीन है।

शिल्प अंग्रेजी के टेकनीक शब्द का हिन्दी रूपांतर है। हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश में "शिल्प का अर्थ है- १- a craft, an art २- art skill"[१९] इसके अनुसार शिल्प को आर्ट और क्राफ्ट के संदर्भ में बताया गया है।

अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश में- technique से तात्पर्य 'तकनीक'।"[२०] तकनीक का अर्थ ही 'शिल्प विज्ञान'।"[२१] हिन्दी शब्दकोश के अनुसार शिल्प का अर्थ है- हस्तकला, दस्तकारी।"[२२] इस अर्थ में हाथ से बनी कला शिल्प हैं। इसका आशय हाथ के कौशल या हुनर से है। कवि भी अपने शिल्प कौशल से अपनी कला को मूर्त करता है।

अब तक शिल्प के जो भी अर्थ किए गए वे अपने साधारण अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। साहित्य में कला की दृष्टि से शिल्प का उचित संदर्भ वृहत हिन्दी कोश में प्राप्त होता है। उसके अनुसार- शिल्प का अर्थ है- "हुनर कारीगरी, दक्षता, टेकनीक, शैली; इसके अनुसार ही- शैली से ज्यादा व्यापक वह उपादान जिसके द्वारा रचनाकार अपनी भावनाओं को किसी विशेष ढंग से ही व्यक्त कर पाता है।"[२३] यहां शिल्प को शैली से अधिक व्यापक अर्थ में बताया गया है। एक कलाकार अपनी अनुभूति को जिस बनावट में ढालता है, अभिव्यक्त करता है, उसके लिए वह जिन उपादानों का सहयोग लेता है, वह शिल्प है। काव्य का शिल्प कवि की जागरूकता और उसके सचेतन प्रयत्नों का प्रमाण है।

टेकनीक के रूप में शिल्प का प्रयोग आधुनिक काव्य के संदर्भ में आया है। आधुनिक कविता में शिल्पगत दृष्टि में नवीनता आई। अज्ञेय के द्वारा संपादित ग्रंथ 'तारसप्तक' में आधुनिक और प्रयोगवादी कविताओं का संकलन है। उसमें अपने वक्तव्य में गिरजा कुमार माथुर ने कहा- "कविता के विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया है।"[२४] इस कथन के अनुसार टेकनीक से कविता अधिक कविता के ढंग और बनावट पर ध्यान दिया गया है। इसी नए ढंग की दृष्टि ने हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद की स्थापना की।

दूसरा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने शिल्प को प्रयोग के आधार पर लाभकारी माना है। उनका मत है कि "प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अच्छी तरह अभिव्यक्त कर

सकता है। वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है। यह इतनी सरल और सीधी बात है कि इससे इनकार करना चाहना कोरा दुराग्रह है।............. जो कहता है कि मैंने जीवन भर कोई प्रयोग नहीं किया, वह वास्तव में यही कहता है कि मैंने जीवन भर कोई रचनात्मक कार्य करना नहीं चाहा; ऐसा व्यक्ति अगर सच कहता है तो यही पाया जाएगा कि उसकी 'कविता' कविता नहीं है, उसमें रचनात्मकता नहीं है; वह कला नहीं, शिल्प है, हस्तलाघव है।"[२५] कहने का आशय यही कि शिल्प के रचनात्मकता और प्रयोग की नवीनता पर अज्ञेय बल देते हैं। इनके अभाव में कला केवल शिल्प है। उनका यह विचार कला और शिल्प के अंतर्संबन्धों को दर्शाता है। यहां अज्ञेय कविता की वस्तु और शिल्प के लिए प्रयोग को उपयोगी मानते हैं।

तीसरा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय का शिल्प संबंधी विचार व्यक्त हैं- "शिल्प तंत्र या टेकनीक के बारे में भी दो शब्द कहना आवश्यक है। इन नामों की इतनी चर्चा पहले नहीं होती थी। पर इसलिए कि इन्हें एक स्थान दे दिया गया था जिसके बारे में बहस नहीं हो सकती थी। यों साधना की चर्चा होती थी, और साधना अभ्यास और मार्जन का ही दूसरा नाम था। बड़ा कवि 'वाक् सिद्ध' होता था और भी बड़ा कवि 'रससिद्ध' होता था। आज 'वाक् शिल्पी' कहलाना अधिक गौरव की बात समझी जा सकती है।"[२६] अज्ञेय का यह मत उनकी शिल्प दृष्टि पर प्रकाश डालता है। आज के कवि वाक्य और रस सिद्ध न होकर वाक्य-कौशल के कारीगर हैं। आधुनिक कवि विचारों में प्रयोग की दृष्टि से नवीनता चाहता है इसलिए उसकी शिल्प दृष्टि बदली है। श्याम सुंदर मिश्र का मंतव्य है कि "कलाकार अथवा साहित्यकार के लिए यह आवश्यक है कि वह वस्तु के प्रति सजग और संवेदनशील हो और अभिव्यक्ति के स्तर पर शिल्प का अनुसंधान एक स्वाभाविक प्रक्रिया हो। रचनात्मक साहित्य में शिल्प और वस्तु के द्वंद का नहीं, उनके संश्लिष्ट रूप का आकलन किया जाना चाहिए।"[२७]

कवि के संवेदन-तत्त्व शिल्प से ही रूपाकार होते हुए कला में मूर्तिमान होते हैं। कवि अपने अमूर्त भावनाओं को मूर्त और अभिव्यंजित करता है और उसके सौंदर्य एवं शक्ति के वर्धन के लिए विभिन्न

उपकरण के प्रयोग करता है, वे शिल्प के अंतर्गत ही आते हैं। डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद का मत है कि- “कवि अपनी अनुभूतियों को जिन माध्यमों से प्रस्तुत करता है वे ही शिल्प के उपकरण कहे जाते हैं।”[२८] जैसे मूर्ति को बनाने में मूर्तिकार अपने मन के भाव को छेनी, हथौड़ी, कूची आदि उपकरणों के प्रयोग से उसमें उतार देता है। वैसे ही कवि काव्य-भाषा, बिम्ब, मिथक, आदि के शिल्पगत प्रयोग से मन के अंतर्भावों को कला को आकार देता है। उन्होंने पुराने शिल्प को नया संस्कार दिया, उसका परिमार्जन किया और नए शिल्प उपकरणों की खोज में लगे रहे। शिल्प के उपकरणों का चयन कलाकार के कौशल पर निर्भर करता है।

अज्ञेय ने शिल्प के स्तर पर शब्द, बिम्ब, प्रतीक, मिथक आदि के नए रूपों पर नए ढंग से विचार किया है। उनके काव्य में संवेदना के नए आयामों की अभिव्यक्ति मिलती है। अज्ञेय की आधुनिक और प्रयोगवादी चेतना उनके विचारों को नई दृष्टि देती रही है। उनके काव्य में शिल्प की नवीनता अपने हर रूप में, चाहे वह भाषा हो, बिम्ब हो, प्रतीक हो, अपने नव्य सौंदर्य की छटा से हमें आकर्षित करने से नहीं चूकती। अत्यंत अल्प शब्दों के प्रयोग से विशाल कथ्य को अभिव्यक्त करने या उसमें समाविष्ट करने की अज्ञेय में शिल्पगत कुशलता है। उनकी दृष्टि व्यंजना के नवीन अन्वेषण में विश्वास करती है। उनका कथन है कि “आज का कवि पाता है- और गर नहीं पाता है तो मैं कहूंगा कि उसे पाना चाहिए- कि व्यंजना के पुराने साधन पर्याप्त नहीं हैं। कवि नई सूझ, नयी उपमाएं, नया चमत्कार कविता में लाता है। ये धीरे परिचित होकर हमारी भाषा को संपन्न्तर बनाते हैं।”[२९]

ख- काव्य-भाषा, बिम्ब, प्रतीक एवं मिथक

अज्ञेय के काव्य में भाषा, बिम्ब, प्रतीक एवं मिथक के प्रयोग से उनकी कला की शिल्पगत विशिष्टताओं को देखा जा सकता है। उनके प्रारंभिक काव्य-शिल्प पर छायावादी प्रभाव रहा लेकिन उसमें भी नवीनता का आग्रह दिखाई देता है। उनकी कविताएं भाव के स्थान पर बौद्धिकता पर आधारित रही। नवीन संवेदनाओं और भाव प्रवणता की

दृष्टि से अज्ञेय का काव्य निराला ही कहा जा सकता हैं। उनमें अपनी बात कहने की और दूसरों तक संप्रेषित करने की जो क्षमता है, वही उन्हें एक सधा हुआ कलाकार बनाती है। उनके काव्य की भाषा में भाव वैविध्यता है। जीवन से जुडने की ललक है। समाज-संपृक्ति की भावना है, पीड़ाबोध है, प्रकृति का सौंदर्य है, लोक जीवन की सुगंध है। कहने का आशय है कि अज्ञेय काव्य में जीवन के दुख और सुख, विद्रोह, आत्मदान, व्यंग्यात्मकता आदि का सौंदर्य काव्य भाषा के माध्यम से दिखाई देता है। विद्या निवास मिश्र ने अज्ञेय की भाषा-दृष्टि के संबंध में कहा है- "अज्ञेय ने भाषा का संस्कार बचपन से पाया था। उनकी भाषा में अनगढ़पन नहीं है। पर संस्कार इतना सहज हो गया कि बोझिल भी नहीं है। उन्होंने लोकगीत, संस्कृत कविता, जापानी कविता और जाने कहां-कहां से लय का अन्वेषण किया और अपनी भाव संकुलता के अनुरूप छंद की खोज की। वे चमत्कारवादी नहीं है, पर वे रचना-कौशल, को गर्वपूर्वक कवि-कर्म मानते हैं इसलिए उनकी रचना में एक सजग कलाकार बराबर नाचता रहता है। वह कलाकार रचना को अस्वाद्य बनाने में बराबर साधक रहता है।"[३०]

अज्ञेय की आधुनिकता और जागरुकता उनके काव्य में बराबर स्पंदित होती रही है। उनकी यह सजगता रचनात्मकता और वैचारिक स्तर पर दृष्टिगत है। उनके भाषा की मौलिकता ने उसे प्रौढ़ और सौष्ठव रूप दिया। अज्ञेय कविता में प्रयोग के हिमायती थे जिसके लिए वे उसके रूप में परिवर्तन चाहते हैं। तारसप्तक में अज्ञेय ने भाषा के नए रूप की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा- "कवि आधुनिक जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रहा है -भाषा की क्रमश: संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें नया, अधिक व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है और अहंकार के कारण नहीं इसलिए कि उसके भीतर इस की गहरी मांग स्पंदित है।"[३१] अज्ञेय इस विचार में उनकी भाषिक दृष्टि पर दिखाई देती है। उन्हों ने उद्घोष किया कि 'मैं आधुनिक कवि हूं'। आधुनिक कवि नए तत्त्वों की खोज में देश और विदेश की यात्रा की। उन्होंने सभी पुराने उपमानों को मैला कहकर उसके परिमार्जन पर बल दिया।

अज्ञेय काव्य में शब्दों को बहुत महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार शब्द ही कविता का आदि और अंत है। उसी में उस की संपूर्णता मानी जा सकती है। इस प्रसंग में अज्ञेय का कथन है कि "काव्य सबसे पहले शब्द है। और सबसे अंत में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है, सारे कवि-धर्म इसी परिभाषा से निसृत होते हैं, शब्द का ज्ञान शब्द की अर्थ वत्ता की सही पकड़-ही कृतिकर की कृति बनाती है। ध्वनि, लय, छंद आदि के सभी प्रश्न इसी में से निकलते हैं और इसी में विलय होते हैं।"[३२] इस प्रकर अज्ञेय शब्दों को कविता में न केवल आवश्यक मानते हैं बल्कि उसे ईश्वर का रूप भी देते हैं। उनके अनुसार शब्द के द्वारा सत्य का शोध किया जा सकता है। वे कहते हैं -

"शब्द ईश्वर हैं, इसी से वे रहस् हैं

शब्द अपने आप में इति हैं

हमें यह मोह छलता नहीं था

शब्द रत्नों की लड़ी हम गूंथकर माला चाहते थे

नए रूपाकार को"[३३]

आधुनिक युग में मानवीय संवेदनाएं बदली हैं। अज्ञेय को इसका आभास है कि आज के आधुनिक और परिवर्तनशील समय में कवि की भाषा को भी बदलना चाहिए। इसके परिणाम स्वरूप दोनों में एक खिंचाव दिखाई देता है। अज्ञेय इनमें साम्य चाहते हैं। इन्हीं शब्दों से वे सत्य को पकड़ना चाहते हैं। वे कहते हैं कि -

"यह नहीं कि मैंने यह सत्य नहीं पाया था

यह नहीं कि मुझको शब्द अचानक कभी-कभी मिलता है:

दोनों जब तक सम्मुख आते ही रहते हैं

प्रश्न यही रहता है:

दोनों जो अपने बीच एक दीवार बनाए रहते हैं

मैं कब कैसे उनके अनदेखे

उस में सेंध लगा दूं।"[३४]

अज्ञेय शब्द के प्रति सजग और सचेत हैं। अज्ञेय की काव्य में प्रारंभ में साधारण शब्दों के साथ प्रस्तुत होती है। उसमें अपने पूर्वप्रचलित धाराओं का प्रभाव दिखाई देता। भग्नदूत, चिंता में भाषा का यही रूप परिलक्षित है। दृष्टांत के रूप में चिंता की इन पंक्तियों को देख सकते है-

"मेरे प्राण आज कहते हैं

वह प्राचीन अकथ्य कथा,

जिसमें व्यक्त हुई थी-

प्रथम पुरुष की प्रणय व्यथा!"[३५]

कविता की इन पंक्तियों में भाषा में आकर्षण की कमी है। भाषा में बहुत सरल भाषा में अभिव्यक्त हुई है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है कि "अज्ञेय की आरंभिक रचनाओं की काव्य भाषा में उक्त कई रचना पीढ़ियों का रंग प्रतिफलित होता है। द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक भाषा से लेकर छायावादोत्तर कवियों सीधी-सरल भाषा तक।"[३६] धीरे-धीरे अज्ञेय की काव्य भाषा सुगठित और प्रौढ़ होती गई। जैसे-जैसे कवि का अध्ययन गहराता गया वैसे-वैसे उसकी भाषा का रूप भी बदलता गया। रामकमल राय का मत है "अज्ञेय जिस भाषा की तलाश कर रहे थे, उसका निखरा हुआ रूप हमें 'हरी घास पर क्षण भर' की कविताओं में मिलता है। भाषा जब किसी विराट संवेदना से जुड़ती है तो उसमें अपने आप ओज, ऊर्जा एवं गहन संप्रेषणीयता के तत्व आ जाते हैं।"[३७] 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य संग्रह की भाषा में नवीनता दिखाई देती है। यहां कवि का शिल्प बोध कथ्य के आधार पर नवीनता ग्रहण करता है। 'कलगी बाजरे की' कविता की इन पंक्तियों में अज्ञेय की संवेदनाएं नई धरा से जुड़ी दिखती हैं।

"और सचमुच इन्हें जब-जब देखता हूं

यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है-

और मैं एकांत होता हूं समर्पित

शब्द जादू हैं

मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं"[३८]

अज्ञेय के इस संग्रह में शब्दों का चमत्कार दिखने लगा था। भावों की नवीनता के साथ कथ्य, शब्दों के चयन आदि भाषा के उपक्रमों में भी नयापन था। कविताओं में शब्दों के प्रति समर्पण के भाव दृष्टिगत हैं ।

अज्ञेय के काव्य में गद्य और पद्य भाषा के दोनों रूपों का प्रयोग मिलता है। भाषा के प्रयोग में अज्ञेय की शब्द-पटुता दिखाई देती है। वे शब्दों के प्रयोग में सावधानी बरतते हैं और सजगता के साथ अपने काव्य में स्थान देते हैं। उनकी भाषा अज्ञेय के काव्य में गद्य और पद्य के प्रयोग और उनकी भाषा दृष्टि के संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है- "वर्तमान युग के हिंदी साहित्य में अज्ञेय इन दोनों माध्यमों में भाषा का बड़ा सतर्क और सफल प्रयोग किया है। भाषा के संबंध में उनकी जैसी दृष्टि हिंदी में शायद ही अन्यत्र कहीं देखने को मिले।"[३९]

रामस्वरूप चतुर्वेदी के कथन से अज्ञेय की भाषिक विशिष्टताओं का पता चलता है। शब्द रचना की दृष्टि से अज्ञेय के काव्य में अनेक तत्सम और तद्भव, देशज, लोक प्रचलित एवं विदेशी शब्दों के प्रयोग बहुलता से मिलते हैं। इन शब्दों के प्रयोग से अज्ञेय की कविता में नई चेतना स्फूर्त होती है।

अज्ञेय के काव्य में तत्सम शब्दों के प्रयोग से भाषा की अर्थशक्ति का विस्तार होता है। अज्ञेय ने अपने कुशल दृष्टि से इनका प्रयोग किया है। तत्सम से आशय उन शब्दों से है जो सीधे संस्कृत से हिंदी में आए हैं। तत्सम शब्द-भंडार में अप्रतिम, अनंत, पल्लवित, पुलकित, तृण, श्रद्धा, आलोक, विश्राम, जिजीविषा उदिषा, आप्लावन, अत्यंत, स्खलित, प्रेम, खंडित-सत्य, शास्त्र, क्षुप, रक्त ,शीश, मृत्यु, असाध्य वीणा, सागर मुद्रा, आदि शब्दों के प्रयोग से भाषा में ओज आ गया है। अज्ञेय नें कहीं-कहीं संस्कृत की एक पूरी

पंक्ति में अपनी कविता की अभिव्यक्ति की है। किसी-किसी कविता में एक साथ अनेक तत्सम शब्दों का प्रयोग दिखाई देता है। उष: काल की भव्य शांति' की इन पंक्तियों को उदाहरण के लिए देखा जा सकता है जिसमें 'अकिंचन', 'निष्प्रभ', 'अनाहूत', 'अज्ञात' इत्यादि तत्सम शब्दों का एक साथ प्रयोग हुआ है-

"निविडाऽन्धकार को निवेदन मूर्त रूप दे देने वाली

एक अकिंचन, निष्प्रभ, अनाहूत, अज्ञात द्युति-किरण:

आसन्न-पतन, बिन जाने जमीन उसकी अंतिम

ईष्तकरण, स्निग्ध, कतार शीतलता,

अस्पृष्ट किन्तु अनुभूत:"[४०]

अज्ञेय ने अपने काव्य में संस्कृत की पूरी पंक्तियों का भी प्रयोग किया है, जिस से उनके भाषा-ज्ञान, भाषा पर अधिकार, शब्द-रचना कौशल की विशिष्टता खुलकर सामने आती है। 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे', 'अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम्', कालोऽयं समागत:, तं तुम देशं न पश्यामि, मृत्योर्धावति पंचम: आदि संस्कृत शब्दावलियों के प्रयोग से अज्ञेय की भाषा अत्यंत प्रौढ़, परिमार्जित और परिष्कृत हो जाती है। उनकी ऐसी सुसंस्कृत भाषा से ही अज्ञेय काव्य की महत्ता अंकित होती है।

अज्ञेय के काव्य में तत्सम शब्दों के साथ ही तद्भव शब्दों के प्रयोग भी बहुलता से किए गए हैं। इन तद्भव शब्दों का प्रयोग उनके काव्य को अधिक सुबोधता प्रदान करता है। इनके प्रयोग से भाषा की सुगमता और सुबोधता में वृद्धि होती है। उनकी रचनाओं में तद्भव शब्द विस्तार प्रारम्भ से अंत तक दिखाई देता है। 'हरी घास पर क्षण भर', 'बाबरा अहेरी', 'इंद्रधनु रौंदे हुए' 'अरी ओ करुणा प्रभामय', 'आंगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार' आदि काव्य संग्रह में अनेक तत्सम शब्दों का प्रयोग बड़ी ही सहजता के साथ किया गया है। 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य-संग्रह में जहां तद्भव शब्दों के प्रयोग हैं वहीं इसमें नवीन शब्दावलियां भी अपने

सौन्दर्य के साथ काव्य में प्रवेश करतीं हैं। ‘हरी बिछली घास, दोलती कलगी बाजरे की, मन में दुबकी है हुलास, आदि नए शब्दों के प्रयोग दिखाई देते हैं।

“सो रहा झोंप अंधियाला

नदी की जांघ पर

डाह से सिहरी हुई यह चांदनी

चोर पैरों से उझक कर झांक जाती है।”[४१]

अज्ञेय की इस कविता में जांघ, उझकना, झांकना जैसे कितने सुंदर तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों का प्रयोग ही विशेष नहीं है बल्कि उनकी सजीवता ध्यानाकर्षण का विषय है।

अज्ञेय ने काव्य शब्दों के चयन में तत्सम-तद्भव दोनों ही शब्दों का प्रयोग किया है, साथ ही उन्होंने कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया है जो उनके द्वारा गठित लगते हैं। बावरा अहेरी की कविता ‘वसंत की बदली’ में बरस, विरस, सरस, परस जैसे तुक वाले शब्द के प्रयोग से कविता अति सुंदर बन पड़ी है।

“यह वसंत की बदली

पर क्या जाने कहीं बरस ही जाए

विरस ठूंस में कहीं

प्यार की कोंपल एक सरस ही जाए

दूर-दूर भूली उषा की

खोई किरण एक अलसानी-

उसकी चितवन हल्की-सी

सिहरन मुझे परस ही जाए!”[४२]

ठूंस, प्यार, अलसानी, सिहरन जैसे देशज शब्दों का प्रयोग अज्ञेय काव्य का विशिष्ट सौंदर्य कहा जा सकता है। तद्भव और देशज

शब्दों के प्रयोग से कविता जीवन से जुड़ जाती है। अज्ञेय के काव्य में लोकजीवन से संबंधित शब्दों का सुंदर प्रयोग मिलता है। वे लोकजीवन का सूक्ष्म अवलोकन करते हैं-

"अरी धूल झगड़ैल, चढ़ी
पछवा के कंधों पर थी तू इतराती,
ले काट चिकोटी अब भी:
बस एक स्नेह की बूंद और तू हुई पस्त -
पैरों में बिछ-बिछ जाती,
सोंधी महक उड़ाती?
सह सके स्नेह, वह और रूप होते हैं, अरी आयनी!
नाच-नाच मन मुदित मस्त
आया पानी!"[४३]

इस कविता में अज्ञेय ने 'धूल को झगड़ैल' कहकर आंधी के वैशिष्ट्य को उभारा है। 'वैशाख की आंधी' कविता में कवि ने लोक जीवन से शब्द उठा कर कविता में जीवंतता का अनुभव कराया है। आंधी का मानवीकरण किया है। इस कविता में 'बिछ-बिछ', 'नाच-नाच', में शब्दों की आवृत्ति से कविता की भावाभिव्यंजक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

देशज शब्दों के प्रयोग से अज्ञेय की कविता लोक जीवन को उभारता है। उनके देशज और ग्रामीण शब्द के प्रयोग से कविता में सरलता और सुबोधता आ जाती है। इससे भाषा अधिक स्वाभाविक और सर्वजन ग्राह्य बन जाती है। ये लोक प्रचलित शब्द हैं जिनका उपयोग कवि ने बड़ी सहजता और भाव प्रवणता के साथ किया है। शब्द-चयन की कुशलता और उनके स्थानोचित प्रयोग में अज्ञेय को कुशल शिल्पी कहा जा सकता है। अज्ञेय की कुछ कविताओं में

तत्सम और तद्भव दोनों का सुंदर प्रयोग मिलता है। 'असाध्य वीणा' की इन पंक्तियों में दोनों रूपों को देखा जा सकता है-

"ओ विशाल तरु!

शत-सहस्त्र पल्लवन-पतझरों ने जिसका नित रूप संवारा

कितनी बरसातों कितने खद्‌योतों ने आरती उतारी,

दिन भर भंवरे कर गए गुंजारित"

x x x x x

कमल कुमुद पत्रों पर चोर-पैर द्रुवत धावित

जल पंछी की चाप

थाप दादुर की चकित छलांगों की।

पंथी के घोड़े की टाप अधीर

अचंचल धीर थाप भैंसों के भरी खुर की।"[४४]

अज्ञेय जड़ और जीवन के मिलाप को शब्दों की शक्ति से ही व्यक्त करने में सफल कवि कहे जा सकते हैं। उनकी इस कविता में तत्सम और तद्भव दोनों ही रूपों का प्रयोग हुआ है। जिससे अज्ञेय की रचनात्मकता स्पष्ट रूप से दिखती है। असाध्य वीणा की इन पंक्तियों के संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी यह कथन अज्ञेय की शब्द-प्रौढ़ता पर भी प्रकाश डालता है- "प्रकृति जीवन के इस व्यापक चित्रण में संस्कृत साहित्य-परंपरा और देसी-जीवन, तत्सम का अभिजात्य और तद्भव की आत्मीयता, शिष्ट और लोक एक दूसरे में घुल-मिल रहे हैं। 'पल्लवन-पतझरों', 'वर्षा-बूंदों', 'उत्सव-ढोलक' की समाज-प्रक्रिया जैसे इस तथ्य को प्रतीक रूप में प्रतिफलित करती है। इस संस्लेष में भी कवि निष्ठा का आधार लोक-जीवन को ही बनाना चाहता है। 'ठेका', 'फुरकन', 'चाप', 'छलांग', 'टाप', और 'थाप', जैसे क्रियावाची प्रयोग कवि की इस वृत्ति को रेखांकित करते हैं"।[४५]

अज्ञेय ने कविता में अपने अन्वेषित शब्दों का प्रयोग भी किया है। जिससे कविता में एक शब्दों की नवीनता का बोध होता है। उदाहणार्थ- अलसानी, हरी घास हुलसानी, दूर्वांचल, टेहुनी, जुगनू का टिमकना, दामिनी का दमकना, साबुन की चिकनाई, मतियाता सागर, लहरीला, हरियाना, आदि कुछ ऐसे शब्दों के प्रयोग अज्ञेय के प्रायोगिक विचार-दृष्टि के प्रतीक कहे जा सकते हैं। वास्तव में अज्ञेय शब्दों की तलाश के साथ उसके अन्वेषण में भी लगे रहते हैं।

अज्ञेय ने परिवेशगत संवेदनाओं को प्रकट करने के लिए भी शब्दों में प्रयोग में सतर्कता बरती है। पुराने शब्दों के स्थान पर नए शब्दों के प्रयोग पर बल दिया है। 'पार्क की बेंच' कविता में कवि ने अपने परिवेश से शब्दों को ग्रहण किया है-

"उजड़ा सुनसान पार्क, उदास गीली बेंचें-

दूर-दूर के घरों के झरोखों से

निश्चल, उदास, परदों की ओट से झरे हुए आलोक को

-वत्सल गोदियों से

मोद-भरे बालक मचल मानो गए हों-

बेंच पर टेहुनी-सा टिका मैं आंख भर देखता हूं सब"[४६]

भाषा का बदला हुआ रूप इस कविता में परिलक्षित है। पार्क, बेंच, परदा, टेहुनी-सा जैसे शब्दों के चयन में नवीनता दिखाई देती है। भाषा के मिले जुले शब्दों के प्रयोग को बड़ी सहजता और सरलता से व्यक्त कर दिया गया है। इन शब्दों में अपने पूरे परिवेश को समेट कर अभिव्यक्त करने का सामर्थ्य निहित है।

अज्ञेय की काव्य-भाषा में विदेशी और विजातीय शब्दों का भी प्रभाव रहा है। समय-समय पर अनेक विदेशी भाषाओं से हिन्दी भाषा का संपर्क होता रहा। इस से हिंदी में कई भाषाओं के शब्द घुल-मिल गए हैं। अरबी, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों से कवि भी अछूता नहीं रहा है। उपर्युक्त कविता में ही पार्क, बेंच जैसे

शब्द हिंदी के न होकर अंग्रेजी से प्रभावित हैं। अज्ञेय का संबंध तो अनेक भाषाओं के साथ रहा; कुछ उनकी परिस्थितियों ने और कुछ उनके अध्ययन के स्वभाव ने उन्हें अनेक भाषाओं से परिचित करवाया। संभवत: जब अज्ञेय इन विदेशी शब्दों का प्रयोग करते हैं तो उसमें कोई अटपटापन नहीं होता। सफेदपोश, फर्श, जाजम, इनसान, मोहल्ला, थके-हारे, तस्लीम, हकीम, कागज़, फुर्सत, दोस्ती, अखबार, काफिला, इशारे, ज़िंदगी, इमारत, नसीब, धड़कन, आदि अरबी, फारसी और उर्दू के शब्दों से प्रभावित हैं। 'आजादी के बीस बरस' कविता की निम्न पंक्तियों में विदेशी शब्दावलियों का अत्यंत स्वाभाविक रूप से हुआ है-

"ओ मेरे मसीहा!

हाय मेरे मसीहा!

आजादी के बीस बरस निकल गए

और तुम्हें कुछ नहीं मिला-

एक कमबख्त कम से कम पहचाना जा सकने वाला

जटियल सलीब भी नहीं:

जबकि इतने-इतने मंदिरों रथों से इतनी-इतनी काठ-मूर्तियां तोड़ी

उखाड़ी जा कर रोज़ बिक रही है इतने अच्छे दामों!"[४७]

अज्ञेय की भाषा में व्यंग्य का भी सरोकार है। व्यंग्य के द्वारा उनकी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का प्रत्यक्ष होता है। कविता में प्रचलित और बोलचाल की भाषा में शब्दों के प्रयोग से वे गहरी चोट करते हैं। अज्ञेय अपनी व्यंग्यात्मक दृष्टि से यथार्थ बोध कराते हैं। 'सांप' शब्द को ही लें तो वह अपने विषैलेपन के लिए जाना जाता है। अज्ञेय सांप शब्द के प्रयोग से आधुनिक जीवन पर व्यंग्य साधते हैं-

"सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं

नगर में तुम्हें बसाना आया नहीं

एक बाट पूछूं- (उत्तर दोगे?)

तब कैसे सीखा डंसना- विश कहां से पाया?”[४८]

अज्ञेय की विशेषता इस बात में है कि वे बहुत सरलता से शब्दों का प्रहार करते हैं। उनकी सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति में प्राय: भाषा के व्यंग्यात्मक शब्दों के दर्शन होते हैं-

“जो राज करे उन्हें गुमान भी न हो

कि उनके अधिकार पर किसी को शक है,

और जिन्हें मुक्त जीना चाहिए

उन्हें अपनी कारा में इस की खबर ही न हो

कि उन का यह हक है!”[४९]

इस पूरी कविता में शब्दों की सादगी देखी जा सकती है। परंतु कवि के व्यंग्य की तीखी दृष्टि भी परिलक्षित है। अज्ञेय की वैज्ञानिक दृष्टि भी बदलते परिवेश पर व्यंग्य साधती है। आज के वैज्ञानिक युग में व्यक्ति ही व्यक्ति का शत्रु है, वह अपने ही बनाए साधनों से मानवीयता का विनाश करने में लगा है-

“एक दिन सहसा

सूरज निकाला अरे क्षितिज पर नहीं

नगर के चौक

धूप बरसी

पर अंतरिश से नहीं,

फटी मिट्टी से”[५०]

अज्ञेय के विचारों को दृष्टि अपने चारों ओर से प्राप्त होती है। ‘जियो मेरे आजाद देश’ में कविता के शीर्षक से ही व्यंग्य दृश्यमान हो जाता है। इस प्रकार अज्ञेय की व्यंग्यात्मक दृष्टि उसकी जागरूकता को दर्शाती है।

अज्ञेय के विचार कहीं-कहीं संवाद के रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। वे बातचीत की लय में ही अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में सक्षम हुए हैं। 'उधार' कविता में कवि के शब्द कौशल तो स्पष्ट होती ही है साथ ही उनकी अनुभूति की मौलिकता भी वर्तमान रहती है-

"सवेरे उठा तो धूप खिलकर छा गई थी

और एक चिड़िया अभी-अभी गा गई थी

मैंने धूप से कहा: मुझे थोड़ी गरमाई दोगी उधार

चिड़िया से कहा: थोड़ी मिठास उधार दोगी

मैंने घास की पत्ती से पूछा: तनिक हरियाली दोगी-

तिनके की नोक-भर?

शंखपुष्पी से पूछा: उजास दोगी

किरण की ओक भर

मैंने हवा से मांगा: थोड़ा खुलापन-बस एक प्रश्वास"[५१]

वास्तव में कवि की अनुभूति को जानने और समझने के लिए एक मात्र आधार यह भाषा ही है। कवि के मौलिक विचारों तक पहुंचा जा सकता है। अज्ञेय की भाषा में अनेक विशेषताएं हैं। नंदकिशोर आचार्य का अज्ञेय की भाषा विशिष्टाओं के संबंध में ये कथन है "कम से कम शब्दों में गहनतम व्यापक अर्थ को संप्रेषित करना अज्ञेय की अपनी विशिष्टता है।"[५२]

अज्ञेय की काव्य भाषा में उनका मौन भी अभिव्यंजना का साधन बन गया है। मौन के शिल्प का प्रयोग विचारों को गहराई से प्रकट करने के लिए किया गया है। वे कहते हैं-

"बोलना सदा सब के लिए

और मीठा बोलना।

मेरे लिए कभी सहसा थम कर

बात अपनी तोलना और फिर

मौन धार लेना"[५३]

अज्ञेय की काव्य-भाषा में खुलापन है। उन्होंने अलग-अलग भाषा-मुद्रा को अपने काव्य में स्थान दिया है। उपर्युक्त उदाहरण में शब्दों से कवि की अनुभूति व्यंजित हो रही है। बोलचाल की साधारण भाषा में विचारों को व्यक्त करने की क्षमता अज्ञेय को एक उच्च कलाकार बनाती है। 'असाध्य वीणा' में यही मौन दार्शनिक अनुभूति के रूप में अभिव्यक्त हुई है-

"स्वयंभू

जिस में सोता है अखंड

ब्रह्मा का मौन

अशेष प्रभामय"[५४]

नामवर सिंह ने अज्ञेय के मौन के चरम दर्शन पर काव्य-भाषा-विषयक विचार व्यक्त किया है। उनके अनुसार- "असाध्य वीणा के विन्यास पर दृष्टिपात करें तो वह दो स्थिर बिंदुओं के बीच फैलाई हुई रचना प्रतीत होती है। आदि में मौन और अंत में मौन और दोनों ही स्थिर एवं पूर्ण निर्धारित। किंतु मौन उभयनिष्ठ है। इस प्रकार आदि अंत का द्वैत आभास-मात्र है। आधार बिंदु वस्तुत: एक ही है। वह अद्वैत है। जिस प्रकार कामायनी का आरंभ और अंत दोनों ही हिमालय में होता है। उसी प्रकार असाध्य वीणा का भी आदि और अंत दोनों मौन में होता है।"[५५] अज्ञेय के इस मौन में अनेक ध्वनियां अंतर्निहित है जो उसकी भाषा-शक्ति है। अपने मौन- शिल्प के प्रयोग से अज्ञेय एक नई भाषा शक्ति का विस्तार करते हैं। विशेष बात यह है कि अज्ञेय विराट का दर्शन भी बहुत सरल भाषा में सहजता से कराते हैं। यह उनकी भाषिक कुशलता है ही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है "उत्तम ग्रंथकार वह नहीं होता जो गद्य या पद्य में सुंदर भड़कीले-भड़कीले शब्दों से गुंथा हुआ कोई पद बना सके; उत्कृष्ट कवि वही है जिसे कुछ कहना होता है और जो यह जानता

है कि उसे किस प्रकार कहना चाहिए।"[५६] शुक्ल जी का यह कथन अज्ञेय की भाषा प्रतिभा पर भी उचित ही ठहरता है।

बिम्ब

अज्ञेय की कविताओं में बिंब विधान से उनकी भाषा का सशक्त रूप दिखाई देता है। जीवन और जगत की अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए बिंब का प्रयोग होता है। कविताओं में इनका प्रयोग संवेदनाओ को अधिक संप्रेष्य बनाने के लिए किया जाताहैं। बिंब व्यक्ति के कल्पना शक्ति से उत्पन्न होते हैं। इस संदर्भ में डॉ॰ कुमार विमल का मत दृष्टव्य है "बिंब विधान कला का वह क्रिया पक्ष है, जो कल्पना से उत्थित होता है।"[५७] कहने का आशय है कि जब कवि अपने मानसिक चित्र दृश्यों को स्पष्ट करना चाहता है तो उसे बिंबों का आश्रय लेना पड़ता है। बिंब की सहायता से कवि अपनी कल्पनात्मक अनुभूति को मूर्त करता है। आधुनिक कविता में बिंब का प्रयोग बिंबवादी आंदोलन से प्रभावित है। जिसके प्रमुख विचारकों में हुल्में, एजरा पाउंड, टी एस एलियट के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अज्ञेय बिंबवाद से प्रभावित थे जिसका उल्लेख द्वितीय अध्याय में किया गया है। इसका विस्तृत वर्णन यहां प्रासांगिक नहीं है। अज्ञेय की कविताओं में बिंब-प्रयोग विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

काव्य में बिंबों के महत्त्व पर डॉ॰ भगीरथ मिश्र का कथन है- "बिंबों के प्रयोग से काव्य भाषा का रूप अलंकारिक और रसात्मक हो जाता है। इनके द्वारा काव्यभाषा के चारों व्यापार (अर्थात अर्थ को स्पष्ट करने का, वस्तु या घटना को प्रत्यक्ष करने का, रूप और गुण को हृदयंगम कराने का तथा भाव को संप्रेषित और उद्दीप्त कराने का) संपन्न होते हैं।"[५८] इससे से ज्ञात होता है कि बिंब से कवि अपने विचारों को स्पष्ट करता है। प्रत्यक्ष की गई घटना या वस्तु को अभिव्यक्त करता है, घटना या वस्तु के रूप गुण और भाव को अनुभूत करता है। इस प्रकार वह बिंब से अपने मनोभावों को सहृदयी बनाता है।

अज्ञेय काव्य में साधारण विचारों को जिस सौंदर्य में घोलकर प्रस्तुत करते हैं, उसमें बिंबों का बहुत महत्त्व है। बिंबों के द्वारा उनके विचार सहज और स्वाभाविक रूप से व्यक्त होते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि बिंब के प्रयोग में अज्ञेय सायास प्रयत्न करते नहीं दिखाई देते। बिंबों के उपयोग से उनके अपने भावों की अभिव्यंजना होती है। वस्तुत: अज्ञेय के काव्य में बिंब का प्रयोग उनकी नवीन दृष्टि और उनकी भाषा-शक्ति का परिचय देता है।

अज्ञेय के विचार की गहनता और गहराई बिंबों के विधान में दिखाई देती है। वस्तुत: बिंब का विचारों के साथ घनिष्ठ संबंध है। इस संबंध में केदारनाथ सिंह का कथन है "बिंब जब भी आता है, किसी गहरे विचार या जीवन दृष्टि का संवाहक बनकर आता है। एक श्रेष्ठ बिंदु जीवन के प्रत्यक्षात्मक तथा धारणात्मा दोनों ही गुणों से संयुक्त होता है। वह मन तथा बुद्धि दोनों को एक ही साथ तृप्त तथा समृद्ध करता है। विचार शून्य बिंब केवल यथार्थ के स्थूल पक्षों का उद्घाटन करता है जिनकी व्याप्ति प्रत्यक्ष इंद्रिय-ग्राह्य वस्तुओं तक ही सीमित होती है।"[५९] अज्ञेय के बिंब भी उनके विचारों को सशक्त बनाते हैं। उन्होंने अपनी सूक्ष्म अनुभूतियों को बिंबो के रूप में प्रकट किया है। ये अनुभूतियां जीवन से ग्राह्य होती हैं और इसीलिए यथार्थ को अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं।

अज्ञेय की अंतर्दृष्टि अनेक सूक्ष्म अनुभूतियों से विचारों को ग्रहण करती है। उनकी ये अनुभूतियां अनेक बिंबों का निर्माण करती हुई उनके विचारों को अभिव्यक्त करती हैं। अज्ञेय के विचारों की नवीनता से नए बिंबों की भी रचना हो जाती है।

'मचिया' शब्द के बिंब विधान से वे अपने भाव-यंत्र की अभिव्यक्ति करते हैं और कहते हैं-

"मेरा भाव यंत्र?

एक मचिया है सूखी घास-फूस की

उसमें छिपेगा नहीं औघड़ तुम्हारा दान-

साध्य नहीं मुझसे, किसी से चाहे सधा हो"[६०]

कविता में अज्ञेय ने परंपरागत शब्द से नवीन भाव की पुष्टि की है। इसमें उनकी सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। समाज के प्रति कृतज्ञता का भाव दिखाने के लिए इस बिंब की निर्मिति हुई है। इसकी विशेष बात यह है अज्ञेय से पहले इस 'मचिया' शब्द का प्रयोग शायद ही किसी ने किया है।

अज्ञेय सूर्य के नवीन बिंब विधान करते हैं। कहीं वे उसे 'बावरा अहेरी' कहते हैं तो कहीं 'कुरर'।

"भोर का बावरा अहेरी

पहले बिछाता है आलोक की

लाल-लाल कनियां

पर जब खींचता है जाल को बांध

बांध लेता है सभी को साथ:

छोटी-छोटी चिड़िया

मंझोले परेवे

बड़े-बड़े पंखी डैनों वाले डील वाले

डौल के बेडौल

उड़ने जहाज"[६१]

बावरा अहेरी की इन पंक्तियों में अज्ञेय ने सूर्य की प्रकृति से आधुनिक परिवेश को जोड़ा है। पंछियों के साथ से वे आधुनिक पक्षी जहाज को भी इस प्रकृतिक बिंब से साथ समाविष्ट कर लेते हैं।

दृश्य बिंब का विधान 'संध्या-संकल्प' कविता की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है। इसमें संध्या के दृश्य को उभारा गया है-

"यह सूरज का जपा-फूल

नैवेद्य चढ़ चला

सागर हाथों अंबा तिमिरमयी को:

रुको सांस-भर,

फिर मैं यहां पूजा-क्षण'

तुम को दे दूंगा"[६२]

सूरज के जपे फूल को सागर अपने हाथों से नैवेद्य के रूप में अम्बा तिमिरमयी को अर्पण कर रहा है। दृश्य बिंब का सुंदर विधान अज्ञेय ने किया है। इसके साथ ही वे जपा, नैवेद्य, पूजा इत्यादि परम्परात्मक शब्दों के जीवन के क्षण बोध का दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

अज्ञेय के दृश्य बिंब प्रकृति में रेखांकित होते हैं प्रकृति के क्रिया व्यापार को अपनी सूक्ष्म अनुभूति से परखते हैं। अज्ञेय के सम्पूर्ण काव्य में प्रकृति बिंब उपस्थित है। घन अकाल, दूर्वाचल, नन्दा देवी, चक्रांत शिला, सागर मुद्रा में अनेक दृश्य बिंब प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं।

किसी भाव या विचार को प्रकट करने के लिए प्रकृति के विभिन्न बिंबों के प्रयोग अज्ञेय ने किए हैं। अज्ञेय ने रेत और काल के संबंध बिबों द्वारा अभिव्यक्त किया है। यहां काल का मानस बिंब खींचा है। स्थितियों के या घटनाओं के प्रत्यक्षीकरण के लिए मानस बिंब का प्रयोग किया है। इस परिप्रेक्ष्य में 'मरुथल' काव्य संग्रह की इस कविता को देखा जा सकता है-

"काल की रेती पर

हमारे पैरों के छापे हैं?

हमीं तो है बिखरे बालू के कण

जिन पर लिखता बढ़ जाता है काल

अपने पैरों के छापे-

सरल, गूढ़-

अर्थ-भरे, नियति-गर्भ"[६३]

इस कविता में काल के बिंब का अंकन हुआ है। पूरा जीवन काल की छाप है। इस प्रकार के मानस बिंब का प्रयोग बावरा अहेरी, आंगन के पार द्वारा, कितनी नावों में कितनी बार के काव्य संग्रहों में मिलता है।

'क्योंकि मैं उसे जानता हूं' काव्य संग्रहों की कविता 'अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम्' में कवि ने देश के हालत का बिंब रचा है-

"देस रे देस

तेरे सिर पर कोल्हू

इस का भार तू कैसे ढोएगा

जिसे पेरेंगे जाट, बाम्हन, बनिया, तेली, खत्री,

मौलवी, कायथ, मसीही, जाटव, सरदार, भूमिहार, अहीर"[६४]

अज्ञेय अपने चारों ओर से विचारों को ग्रहण करते हैं। इसलिए उनकी कविता में दर्शन के विराट का मौन है तो देश की यथार्थ स्थिति पर व्यंग्य भी है। प्रकृति के व्यापारों की परख है तो अपने परिवेश को जांचने की वैज्ञानिक दृष्टि भी है। अज्ञेय के वैज्ञानिक बिंब उनकी वैज्ञानिक मानसिकता से प्रभावित है। जैसे- चिमनियां, सिनेमाघर, रेल, गरुण यंत्र, इंजन, नगर, इत्यादि। हवाई जहाज को गरुण यंत्र कहकर अज्ञेय अपनी वैज्ञानिक दृष्टि का परिचय देते हैं-

"उड़ गया गरजता यंत्र-गरुण

बन बिंदु, शून्य में पिघल गया।

पर सांप? लौटता डंसता छोड़ गया वह उसे यहीं पर।"[६५]

गरुण-यंत्र में पारंपरिक और आधुनिक शब्दों के योग से जिस बिंब का विधान अज्ञेय करते हैं वह उनकी नव दृष्टि का प्रतीक है।

ध्वनि बिंब का उपयोग अज्ञेय के काव्य में भाषा की दृष्टि से नए प्रयोगों से प्रभावित है। उनके काव्य में मशीनों की गड़गड़ाहट, पानी का टपकना, कौवे का कांय पैरों की आहट, पत्तियों पर वर्षा की बूंदों के पट-पट, घनी रात में महुए का टपकना, चौंके खग शावक की चिहुंकना आदि ध्वनि बिंब की सुंदर अभिव्यंजना की गई है।

अज्ञेय के काव्य में उनके विचारों की धारा निरंतर प्रवाहमान है। बिंब के माध्यम से अज्ञेय ने परंपरागत मूल्यों को आधुनिकता का रंग दिया है। उनके विचारों की अभिव्यक्ति में बिंब का उपयोग बहुत महत्तवपूर्ण है। बिंब अपने आप में कवि के लिए साध्य नहीं हैं बल्कि कवि अपनी कला से उसे साधता है। इस संबंध में नंदकिशोर आचार्य का मत लक्षणार्थ है- “बिंब समर्थ कलाकार के हाथों महान कविता की गरिमा प्राप्त कर सकता है।”[६६] अज्ञेय के संबंध मे यह उचित ही प्रतीत होता है क्योंकि उन्होंने बिंब के प्रयोग से कविता में नए विचारों को विस्तार दिया।

प्रतीक एवं मिथक

अज्ञेय के काव्य मे बिंब और प्रतीक, मिथक विधान अनुपम है। उनकी कविता की भाषा-संरचना में इन दोनों का ही एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। कविता की बनावट या संरचना में इनका प्रयोग उपादान के रूप में होता है। कवि अपनी अनुभूतियों के सम्प्रेषण के लिए प्रतीक का सहारा लेता है। अज्ञेय प्रतीक को ज्ञान का साधन मानते हैं। इस संबंध में उनका कथन है- “प्रतीक वास्तव में ज्ञान का एक उपकरण है। जो सीधे-सीधे अभिधा में नहीं बंधता, उसे आत्मसात करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं।”[६७]

कवि अपनी अनुभूतियों को अभिव्यंजित करने के लिए प्रतीक का प्रयोग करता है। कविता के भावों को कलात्मक रूप देने के लिए प्रतीक का प्रयोग कवि करते आए हैं।प्रतीक के संबंध में डॉक्टर भगीरथ मिश्र का मत है- “अपने रूप गुण कार्य विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि

का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।"[६८] दो वस्तुओं या कार्यों के मध्य सादृश्यता प्रतीक के सामान्य अर्थ व्यक्त को करता है। यह प्रतीक को चिन्ह के रुप में व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए सफ़ेद रंग शांति का प्रतीक है किन्तु साहित्य में इसका प्रयोग संश्लिष्ट अर्थ को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

अपनी अमूर्त भावनाओं के मूर्तिकरण के लिए अथवा प्रत्यक्षीकरण के लिए कवि प्रतीक का सहयोग लेता है। इसके प्रयोग से भाषा की अभिधात्मक शक्ति बढ़ जाती है। प्रतीकों का प्रयोग हर काल के कवियों ने किया है। अज्ञेय अपने काव्य में प्रतीकों का उपयोग गंभीरता से करते हैं। उन्होंने प्रतीकों की नवीनता और नए उपमान से हिन्दी साहित्य को नई दृष्टि दी। उनकी दृष्टि में अब तक प्रयोग में लाए जाने वाले उपमान पुराने और मैले पड़ चुके हैं। वे अनुभव करते हैं कि अब इन को बदलना चाहिए। यह हिन्दी साहित्य के लिए एक नया कदम था।

अज्ञेय ने कविता में बदलते हुए परिवेश के साथ तदात्मय करने के लिए नए प्रतीकों के प्रयोगों पर बल दिया। दूसरे तारसप्तक की भूमिका में उनका कथन था - "राग वहीं रहने पर भी रागात्मक संबंधों की प्रणालियां बदल गईं हैं; और कवि का क्षेत्र रागात्मक संबंधों का क्षेत्र होने के कारण इस परिवर्तन का कवि-कर्म पर बहुत गहरा असर पड़ा है।"[६९] अत: अज्ञेय नए प्रयोगों को कविता के लिए आवश्यक मानते हैं। इस दृष्टि से अज्ञेय के काव्य में विभिन्न प्रकार के प्रतीकों का संयोजन दिखाई देता है। इनसे ही उनके विचारों में नवीनता और दृष्टि का पैनापन दिखाई देता है।

अज्ञेय कविताओं में प्रकृति से ग्राहय अनेक प्रतीकों को लेते हैं। चिड़िया, हारिल, नदी, आंगन, आकाश, इंद्रधनुष, मछली, सागर, घास, तिनका, कली, किरणें आदि अनेक प्रतीक-योजना से अज्ञेय अपने मनोभावों और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। मछली, सागर, हारिल, बूंद- अज्ञेय के प्रिय प्रतीक हैं जिनका प्रयोग बहुलता से उनके काव्य में हुआ है।

अज्ञेय अनेक पक्षियों को अपने काव्य में स्थान देते हैं। कीर, परेवे, फुटकी, फुलसुंघनी, केकी, चातक आदि पक्षियों को वे विविध संदर्भ में प्रयोग करते हैं। उनके लिए हारिल आस्था और उनकी कर्मठता का प्रतीक हैं। लेकिन वे हारिल को विशेष रूप से प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हैं-

"तिनका पथ की धूल, स्वयं तू है अनंत की पावन धूली-

किंतु आज तूने नभ-पथ में क्षण में बद्ध अमरता छू ली!

उषा जाग उठी प्राची में- आवाहन यह नूतन दिन का:

उड़ चल हारिल, लिए हाथ में एक अकेला पावन तिनका!"[७०]

अज्ञेय पुरातन प्रतीकों को नए परिवेश के अनुकूल बनाते हैं। उनके विचार अपनी परंपरा का त्याग नहीं करते बल्कि उसमें नूतनता का आवरण चढ़ाकर एक नए वेश में प्रस्तुत करते हैं। दृष्टांत के लिए क्रौंच पक्षी को हिन्दी के कवियों ने वियोग का प्रतीक माना है लेकिन अज्ञेय ऐसा नहीं कहते। मेरी दृष्टि में वे उसे वियोगी की अपेक्षा धूर्त की उपमा दे रहे हैं। क्रौंच की एकाग्रता को देख कर लगता है कि वह प्रेम में पीड़ित है परंतु वह तो अपने चारे अर्थात भोजन की टोह या तलाश में है-

"क्रौंच बैठा हो कभी वल्मीक पर तो मत समझ

वह अनुष्टुप बांचता है संगिनी से स्मरण के-

जान ले वह दीमकों की टोह में है।"[७१]

अज्ञेय नदी के प्रतीक को भी इसी रूप में लक्षित करते हैं। नदी को समाज के प्रतीक के रूप में देखते हैं। नदी स्रोत वाहिनी है जिसके दाय के अज्ञेय ऋणी है। 'नदी के द्वीप' कविता में समाज और व्यक्ति के प्रतीक को नया स्वरूप देते हैं साथ ही व्यक्ति और समाज के मध्य अनिवार्य संबंध के विचार को भी व्यक्त कर देते हैं। उनकी कविता में 'द्वीप अकेला' भी इसी भाव संवेदना का प्रतीक है।

अज्ञेय 'कलगी बाजरे की' कहकर नायिका के सौंदर्य को नए प्रतीक में व्यक्त करते हैं। उन्होंने 'हरी घास' को कोमलता, स्निग्धता, उन्मुक्तता का प्रतीक माना है। घास के सौंदर्य का कदाचित किसी कवि ने अज्ञेय के पूर्व निरीक्षण किया हो। यही तो उनकी विशेष दृष्टि का प्रतीक है। अपनी प्रेमिका को वह 'हरी बिछली घास', 'दोलती कलगी बाजरे की' इसलिए ही कहता है कि सौंदर्य के प्रतीक बदल गए हैं।

मछली अज्ञेय के काव्य का सबसे प्रमुख प्रतीक है। मछली जिजीविषा का प्रतीक है। मछली का प्रतीक अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है। साथ ही जीवन का मोहाकर्षण भी है। 'सोन मछली' कविता में उनकी यही दृष्टि दिखाई देती है-

"हम निहारते रूप:

कांच के पीछे हांप रही है मछली।

रूप तृषा भी

(और कांच के पीछे) है जिजिविषा।"[७२]

अज्ञेय मछली के प्रतीक से छिपे रहस्य का उदघाटन करते हैं। इस संबंध में उन का मत है- "यदि हम सागर को हमारे हुए सब कुछ का प्रतीक मान लें, तो मछली उस प्रतीक का प्रतीक हो जाती है जिसके द्वारा कवि अज्ञात सत्य का अन्वेषण करता है। यहां से अन्वेषण की पद्धति का अन्वेषण करें तो और भी कई प्रतीक मिलते हैं- सागर और मछली, नदी, सेतु जल पर पड़ता हुआ प्रकाश, परछाहीं, परछाहीं को भेदने वाली किरण और अंत में वह प्रकाशमान मछली जो परछाहीं को भेद जाती है- वह प्रतीक, जिसके द्वारा अन्वेषी स्वयं अपने अहंकार से उत्पन्न पूर्वाग्रहों की छाया के पार देख लेता है।"[७३] अज्ञेय का यह मत उनके प्रतीक संबंधी मत को अभिव्यक्त करता है साथ ही प्रतीकों की एक सूची भी प्राप्त होती है। 'जीवन छाया' कविता में पुल, परछाहीं, मछली एक साथ प्रतीक के रूप में आए हैं। और अज्ञेय के उपर्युक्त कथन को पुष्ट भी करता है-

"पुल पर झुका खड़ा मैं देख रहा हूं

अपनी परछाहीं

सोते के निर्मल जल पर-

तल पर, भीतर,

नीचे पथरीले-रेतीले थल पर:

अरे, उसे यह पल-पल

भेद-भेद जाती है

कितनी उज्जवल

रंगारंग मछलियां।"[७४]

अज्ञेय इन प्रतीकों से जीवन-सत्य, आत्मान्वेषण, और रहस्यों की ओर बढ़ते हैं और मन की गहराइयों में झांकते है। सागर, मछली और बूंद के प्रतीकों से उनकी दार्शनिक प्रवृत्ति का पता चलता है। सागर में तो अज्ञेय अगाध श्रद्धा दिखाई देती है। सागर के अन्वेषण से स्वयं को शोधते हैं-

"नहीं जानता

क्यों सागर था मौन।

क्यों धरा मुखर थी

संधि-रेख पर बैठा मैं अनमना

देखता था सागर को

किंतु धरा को सुनता था।

सागर की लहरों में जो कुछ पढ़ता था

रेती की लहरों पर लिखता जाता था

नहीं जानता

क्यों

मैं बैठा था।"[७५]

सागर को अंतर्मन के प्रतीक के रूप में अज्ञेय अभिव्यक्त करते हैं। वे सागर के प्रतीक से अपने भीतर को खंगालते हैं। जैसे सागर में लहरें उठती हैं वैसे ही व्यक्ति का मन भी अनेक विचारों से उद्वेलित होता रहता है।

व्यक्ति का मन विराट चेतना की ओर उन्मुख रहता है। कविता की इन पंक्तियों में अनदेखा गरजता सागर परम तत्व है, विराट का स्वरुप है। इसी विराट चेतना और अपरमित सत्ता को अज्ञेय सागर के प्रतीक से पुष्ट करते हैं-

"कुहरा उमड़ आया

हम उस में खो गए

सागर अनदेखा

गरजता रहा।"[७६]

अज्ञेय ने सागर की विराटता को मानव के जीवन से जोड़कर देखा है। जीवन की विभिन्न संवेदनाओं को प्रकट करने के लिए अज्ञेय अनेक पुरातन प्रतीकों को नए ढंग से प्रस्तुत करते है। फूलों को प्रेम का सौंदर्य का प्रतीक मानते हैं लेकिन अज्ञेय उसे जीवन की नश्वरता सिद्ध करते हैं -

"फूल से

पंखुड़ी तो झरेगी ही

पर यह क्यों कहो कि याद तो मरेगी ही

फूल का बने रहना भी याद है

जिसमें एक नई दुनिया आबाद है:"[७७]

जीवन की गति जन्म और मृत्यु है। इसी संवेदना को अज्ञेय फूल की कोमलता का प्रतीक मानते हैं। जीवन फूल की पंखुड़ी की तरह झड़

अर्थात समाप्त हो जाएगा। यही नियति है। अज्ञेय इस सत्य का अन्वेषण करते हैं। उनकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म घटना को कैद करने में सक्षम है। तभी वे वे फूल की पंखुड़ियों के झड़ने में जीवन का क्षय देखते हैं-

"फूल को प्यार करो

पर झड़े तो झड़ जाने दो

जीवन का रस लो: देह-मन-आत्मा की रसना से

पर जो मरे उसे मर जाने दो।"[७८]

अज्ञेय के काव्य में कुछ नए प्रतीकों का गठन दिखाई देता है। इनका संयोजन अज्ञेय की वैज्ञानिक दृष्टि के संश्लेषण से हुआ है। हिरोशिमा के परमाणु बम-त्रासदी को व्यक्त करने के लिए वे प्रकृति के उपादान पर अपनी वैज्ञानिक दृष्टि का आरोप करते हैं। वे परमाणु बम के लिए मानव का रचा सूरज के प्रतीक का सृजन करते हैं। 'घोड़ा', गरुण-यंत्र, रासायनिक सांपिन आदि आधुनिक प्रतीकों में नई व्यंजना दिखाई देती है। 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं' काव्य संग्रह की कविता 'उनके घुड़सवार' में उनकी नव्य अभिव्यक्ति दृष्टिगत है-

"उनके घुड़सवार

हमने घोड़े से उतार लिए

हमारे युग में

घुड़सवारी का चलन नहीं रहा।

x x x x

जिनके पास सब घोड़े नहीं है:

वे अनुकूलित वायु में

या विमानों में सफ़र करते हैं।"[७९]

अज्ञेय ने इस कविता की पंक्ति में शोषक-शोषित वर्ग को आधुनिक दृष्टि से देखा है। पहले जो घोड़े पर सवार होकर शोषण करते थे, वही अब आधुनिक विमान में सवार हैं। मार्क्सवादी मान्यताएं इस कविता में उभरकर सामने आतीं हैं। समय के साथ अज्ञेय के विचारों में जो परिवर्तन आया है वह कविता की इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जातीं हैं।

अत: अज्ञेय के काव्य में प्रतीकों का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। प्रतीकों से भाषा का गुणात्मक सौन्दर्य बढ़ जाता है, साथ ही कवि अपनी अनुभूति को यथावत अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है। प्रतीकों में भाषा के अलंकरण की शक्ति होती है। इस संदर्भ में अज्ञेय का यह मत लक्षणार्थ है- "प्रतीक में दो पक्षों में होना जरूरी है, और उनको जोड़ने वाला कोई ना कोई सादृश्य सूत्र होता है जिसे पकड़ कर हम बढ़ते हैं। उपमा भी यही काम करती है, रूपक भी यही काम करता है प्रतीक भी यही काम करता है। सब के आधार में एक समान गुण की पहचान होती है।"[८०] अत: प्रतीक भाषा की व्यंजना शक्ति को बढ़ा देते हैं। इसमें तर्क की भी प्रधानता होती है। इसका उपयोग अज्ञेय के काव्य में निहित विचारों को सौष्ठव प्रदान करता है।

अज्ञेय के काव्य में **मिथकीय** प्रयोग का भी पक्ष महत्त्वपूर्ण है। अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द का हिन्दी पर्याय 'मिथक' है। 'मिथ' का शब्दकोश गत अर्थ है- " ancient traditional story, 'मिथक', पौराणिक कथा।"[८१] कहने का तात्पर्य है कि प्राचीन और पुराणों से संबन्धित होने के कारण ये मिथक कहलाते हैं। उदाहरण के लिए राम की कथा पौराणिक कथा है जो प्राचीन काल से आज भी वर्तमान है। डॉ॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव के अनुसार "हिन्दी में मिथक के लिए पुरावृत्त, पुराकथा, कल्पकथा, देव कथा, धर्म गाथा, पुराण कथा, पुरा व्याख्यान, आदि अनेक शब्द प्रयुक्त होते हैं।"[८२] इसमें किसी प्रकार की तार्किक संगति नहीं पाई जाती। इसके मूल में आदिम चिंतन है। पुरानी कथाओं, कहनियों आदि मिथ के आधार हैं। मिथक की कुछ अवधारणाओं से उसके स्वरूप को समझा जा सकता है-

डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी के अनुसार "मिथक आदि मानव कल्पना सृष्टि है। वह उसके जीवन का यथार्थ है। आज भी किसी न किसी रूप

में वह आदि मानव भीतर विद्यमान है।"[८३] इस कथन के अनुसार मिथक आदि मानव से संबंधित है जो हमारे जीवन में घुलमिल गया है और जिसे हम नकार नहीं सकते।

अज्ञेय के अनुसार "दिक्काल का प्रस्तार जब मुट्ठी से फिसलने लगता है, तब उसको पकड़ने में आने लायक बनाने के लिए (या हमें उसे पकड़ने लायक बनाने के लिए) हमें ख़ास मगर अत्यंत लचकीली दूरी की आवश्यकता होती है। वह दूरी की नमनीयता, हमें मिथक देता है। मिथक से ही वस्तु को वह लचकीलापन, ईशरुपित्व, वह सिद्धि (अणिमा-गरिमा-लघिमा-महिमा आदि जिस के अंग हैं) मिलती है जो उसे कलाकार-कृतिकार को और उपयोज्य बनाती है।"[८४] मिथक काल को पकड़ने का प्रयत्न है अर्थात वर्तमान से भूत के अंतराल को नापते हैं। अर्थ यह है कि जब हम अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने में कठिनाई पाते हैं तो हमें अपने आद्य बिंबों तक यात्रा करनी पड़ती है। वहीं से हमें अपने अस्तित्व का प्रमाण प्राप्त होता है। अज्ञेय का मत है कि "मिथक शक्ति का आदि स्रोत है। जिसके मूल में यह प्रक्रिया रही। हमारा होना, हमारा सचमुच होना, हमारा समर्थ होना मिथक के साथ जुड़ा हुआ था। इन तीनों की पहचान भी मिथक के साथ जुड़ी हुई थी। और मिथक के द्वारा ही हम उनकी रक्षा करते थे- अर्थात नई सृष्टि करते थे या फिर से उत्सृष्ट होते थे।"[८५] मिथक हमारी आद्य पहचान है। अपनी पहचान के लिए हमें मिथक का सहारा लेना पड़ता है। आज भी हमारे संस्कार, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार इसी से जुड़े हैं।

साहित्य में मिथ का प्रयोग काव्यानुभूति को संप्रेष्य बनाने के लिए किया जाता है। भगवान राम को आधार मानकर हिन्दी कविता में अनेक रचनाएं मिलती हैं। पर रचित निराला द्वारा रचित 'राम की शक्ति पूजा' का आधार मिथकीय ही है। प्रसाद के 'कमायनी' में भी मिथक का प्रयोग मिलता है। इसमें महाप्रलय का आख्यान का प्रयोग किया गया है।

"हिमगिर के उतुंग शिखर पर, बैठ शीला की शीतल छांह,

एक पुरुष, भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह"[८६]

अज्ञेय की कविता में विचारों को संप्रेष्य बनाने की दृष्टि से मिथकों का प्रयोग मिलता है। इसके उपयोग से उनके विचारों को नया संदर्भ और नई दृष्टि मिली। इतिहास से संबंधित कविता में वे इन मिथकों का प्रयोग करते है। अज्ञेय ने 'इतिहास की हवा' कविता में एकलव्य और द्रोणाचार्य के मिथक प्रयोग से आधुनिक परिस्थिति की पड़ताल करते हैं-

"द्रोणाचार्य ने एकलव्य का अंगूठा मांग लिया था,

अभिनव द्रोण किंतु कहता है

'वत्स वीर,

धरो चाप, साधो तीर, धरती को विद्ध करो-

अमृत-सा कूप-जल यहीं फूट निकले!'

और फिर चुपके से एकलव्य के नए कुएं में भांग डाल देता है।

(एकलव्य एक है

और आज आस्था भी उसमें क्या जाने कहीं कम हो-

क्या जाने वह अंगूठा भी दे ना दे-

पर कुएं का पानी तो समाज पिएगा)"[८७]

अज्ञेय 'अभिनव द्रोण' कहकर द्रोणाचार्य के मिथक को एक नया संदर्भ देते हैं। द्रोणाचार्य एकलव्य से अंगूठा नहीं मांगते बल्कि पूरे कूएं में भांग डाल देते हैं, जिससे सारा समाज ही उनके वश में हो जाए। इससे अज्ञेय वर्तमान के गुरु की बदली हुई प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हैं जो छल और कपट से पूर्ण है। अज्ञेय इसमें मूल्यों का विघटन देखते हैं। अज्ञेय इस मिथक प्रयोग से परिवेशगत स्थिति पर व्यंग्य करते हैं। अज्ञेय के काव्य में मिथकीय दृष्टि से वैविध्यता है। उनके काव्य संग्रहों में मिथक भिन्न-भिन्न संदर्भों में दिखाई देते हैं।

मिथक प्रयोग की दृष्टि से अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' एक महत्त्वपूर्ण कविता है। इस कविता में मिथक से जड़ को चेतन द्वारा साधा गया है। इसका आधार अलौकिक और रहस्यात्मक मिथक है। अज्ञेय ने

केशकंबली की अर्थ व्यंजना को नया संदर्भ दिया है। जीवित किरीटी तरु, किरीटी के जड़ों का वासुकि के फन पर टिकना, उसके कंधे पर सोने वाले बादल, सभी को वीणा के अलग-अलग स्वरों की अनुभूति होना, अभिमंत्रित वीणा इत्यादि मिथक से कवि ने प्राचीन संदर्भों को समसायिक बनाते हुए नए अर्थ से व्यंजित किया है।

अज्ञेय ने मिथक-चरित्र 'औदिपौस' से व्यक्ति की परिस्थितियों की विद्रूपताओं को अभिव्यक्त किया है। औदिपौस या ईदिपस ग्रीक मिथकीय चरित्र है। डॉ॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव के अनुसार "अज्ञेय ने 'फोकस में औदिपौस' कविता में इस प्रसंग की ओर संकेत करते हुए ईदिपस को आज के विडंबनाग्रस्त व्यक्ति का प्रतीक माना है, जो अनिच्छित रूप से, अनजाने ही उन्हीं पाप कर्मों में बंध जाया करता है, जिनसे वह आजीवन दूर भागता रहा था।"[८८] अज्ञेय ने आदिम सत्ताएं, पाप-कर्म से व्यक्ति की विडंबना का यथार्थ-बोध कराया है-

"काली आदिम सत्ताएं नागिन-सी

कुचले सीस उठाती हैं-

राही शापों की गुंजलक में बंध जाता है:

फिर

जिस पाप कर्म से वह भागा था,

वह एकाएक अनिच्छुक हाथों से सध जाता है।"[८९]

अज्ञेय मिथकीय धारणाओं से अपनी गहन अनुभूतियों और संवेदनाओं को व्यंजित करते हैं। मन के अंतर्द्वंद को सागर-मंथन के मिथक से दर्शाते हैं-

"यह अंतर मन

यह बाहर मन

यह बीच

कलह की

-नहीं जड़ नहीं!- मंथानी

"मथो, मथो,

ओ मनो मथो

इस होने के सागर को

जो बंट चला आज

देवों-असुरों के बीच"[९०]

इस मंथन प्रक्रिया से अज्ञेय अपनी सर्जन कला के द्‌वंद को भी प्रकट करते हैं। अच्छे-बुरे विचारों के मंथन से ही कुछ प्राप्त होने की संभावना हो सकती है। उनकी में कविता ये अंतर्द्‌वंद हर कहीं दिखाई देता है।

'वासुदेव प्याला' कविता में अज्ञेय कृष्ण के मिथक को छद्म रूप में अभिव्यंजित करते हैं-

"ओ रह: कृष्ण! तुम क्या

नाग के नथैया

और कालिंदी के कन्हैया हो

या कि नाग के ही बचैया-

कि यह बाढ़ भी क्या इसी में धन्य है

कि नाग ही तुम्हारा शरण्य है?"[९१]

अज्ञेय ने यहां कृष्ण के दोहरे चरित्र से वर्तमान के दोगले व्यक्तित्व के लोगों पर व्यंग्य किया हैं। 'जरा व्याध' कविता में भी वे 'कृष्ण' और 'जरा व्याध' के मिथक से नर और नारायण के संबंध की मनोवैज्ञानिक परख करते हैं-

"नहीं, नहीं, नहीं,

मेरा एक ही शरण्य है

वही जिसे मैंने शरविद्ध किया है।

कृष्ण, मैंने मारा नहीं तुम्हें, मैंने

अपने को बांधा तुम्हारे साथ-

और तुम मेरे साथ बंधे हो-

मेरे साथ! व्याध के!

यही क्या

नियति है?"[९२]

'नर से नारायण के शरविद्ध' के मिथकीय घटना से नर की मनोवैज्ञानिक स्थिति का अज्ञेय आकलन करते हैं। व्याध को प्रतीत होता है कि उसे अपने अपराध से मुक्ति उसी नारायण से मिलेगी जिसे उसने विद्ध किया है। यहां दार्शनिकता का भी प्रभाव है क्योंकि नारायण की मुक्ति नर के द्वारा होने से उसकी भी मुक्ति का द्वार खुलता है। अंततोगत्त्वा नर और नारायण एक ही हैं।

अज्ञेय अपने परिवेश के प्रति सतर्क हैं। स्त्री की स्वरूप की वे नई दृष्टि से व्यख्या करते हैं। 'गांधारी' के मिथक से अज्ञेय स्त्री-सत्य का अन्वेषण करते हैं।

"आह! देख पाते थे वे-

मगर यही तो था उनका असली अंधापन!-

गांधारी ने लगातार उसके अन्याय सहे जाने से

अत्याचारों के प्रति उनके

उदासीन स्वीकार भाव के

लगातार साक्षी होने से

अच्छा समझा था अंधे हो जाना"[९३]

युग से ये धारणा चली आ रही है कि गांधारी ने पति के दृष्टिहीन होने से स्वयं भी अपने नेत्रों पर पट्टी बांध ली। अज्ञेय की चेतना उसे एक भिन्न दृष्टि से देखती है। वे मानते हैं कि गांधारी ने धृतराष्ट्र के अन्यायी प्रवृत्ति की सहभागिता की अपेक्षा नेत्रहीन बने रहना अधिक उचित समझा।

अज्ञेय की काव्य-संवेदनाओं को यथार्थ रूप देने में मिथकीय प्रयोग अत्यंत सहायक हुए हैं। उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य मिथकों के प्रयोग से कविता में अपने विचारों को पुष्ट किया। इनके प्रयोग से अज्ञेय की अभिव्यक्ति में विविधता और अर्थ महत्ता का विस्तार हुआ है। भाषा की दृष्टि से मिथक उपकरण के सशक्त साधन है जिसके प्रयोग से अज्ञेय अपनी अनुभूतियों के संप्रेषय में समर्थ हुए हैं।

ग- लोकोक्ति एवं मुहावरे

अज्ञेय के काव्य में लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग उनकी कला दृष्टि का परिचायक है। उन्होंने भाषा की दृष्टि से विभिन्न लोकोक्ति एवं मुहावरों का अपने काव्य में स्तहन दिया है। इनके प्रयोग से कविता की भाषिक-संरचना में एक प्रवाह उत्पन्न होता है। लोकोक्ति एवं मुहावरों के प्रयोग से भाषा सारगर्भित, प्रभावशाली, और रोचक बन जाती है। ये अपने विलक्षण अर्थ से भाषा के सौंदर्य को बढ़ा देते हैं। अज्ञेय के काव्य में दोनों का प्रयोग दिखाई देता है पर मुहावरों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हैं। लोकोक्ति एवं मुहावरे प्राय: एक ही जैसे प्रतीत होते है परंतु दोनों में उसके रूप और अर्थ के आधार पर पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है।

लोक की उक्ति को लोकोक्ति कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि लोक जीवन के अनुभवों पर आधारित बात रूढ़ होकर लोकोक्ति में बदल जाती है। सुंदर ढंग या रीति से कहे जाने पर सामान्य उक्तियां लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो जाती हैं। सामान्यत: इनके पीछे कोई कहानी अथवा घटना प्रचलित होती है। यह अनुभव सिद्ध ज्ञान पर आधारित होती हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि ये अपने आप में एक पूर्ण वाक्य होती हैं। ये स्थान और काल से परे होतीं हैं। कहने का

आशय यह है कि इनके उद्भव को काल और स्थान विशेष से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। इनके प्रयोग से जीवन की मार्मिक अनुभूतियों को प्रकट करने में सुविधा होती है। अपनी बात के समर्थन में या दृष्टांत के रूप में इसका प्रयोग होता है। उदाहरणत: - ना रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी- न कारण होगा न कार्य, जाको रखे सइयां मार सको न कोय- जिसकी रक्षा ईश्वर करता है, उसे कोई हानि नहीं पहुंचा सकता है इत्यादि लोकोक्तियां अपने में पूर्ण तो हैं ही साथ गंभीर बातों को सहजता से प्रकट करतो हैं

मुहावरा अपने अभिधेय अर्थ का बोध न कराकर विलक्षण अर्थ की प्रतीति करवाता है। कहने का अर्थ है कि उसमें शब्द के निहित अर्थ का बोध न होकर उससे भिन्न अर्थ का बोध होता है। मुहावरा साधारण बातचीत में प्रयोग किया जाता है। मुहावरे के प्रयोग से भाषा की सरलता और सहजता बढ़ जाती है। हम इनके प्रयोग से अपनी बातों को भलीभांति समझ और समझा पाते हैं। इनका प्रयोग वाक्य से स्वतंत्र न होकर उसमें निहित होता है। जैसे कहा जाए कि 'अंगूठा दिखाना' तो इससे कोई अर्थ प्राप्त नहीं होता। यदि यह कहें कि 'मैंने हमेशा उसकी सहायता की पर जब मुझे उसकी सहायता की आवश्यकता हुई तो उसने मुझे अंगूठा दिखा दिया' तो यहां वाक्य सार्थक है। मुहावरों के प्रयोग से भाषा में लालित्य का वर्धन तो होता ही है साथ में उसकी अभिव्यंजना की शक्ति भी बढ़ती है।

साहित्य में लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग भाषा की दृष्टि से बहुत महत्तव रखता है। यह भाषा को समृद्ध करते हैं। इस दृष्टि से अज्ञेय के काव्य पर विचार करें तो उनकी भाषा संरचना में इसका गहन प्रभाव है। इसके प्रयोग से उनके विचारों को बल मिला है। अज्ञेय मानते हैं भाषा अनुभूतियां के सम्प्रेषण का सशक्त उपकरण है। उसमें सम्प्रेषण की शक्ति है। उनकी इस संवेदना को उनकी कविता' भाषा: पहचान' में देख सकते हैं-

"बड़े काम चीज है भाषा:

उस के सहारे एक से दूसरे तक

जानकारी पहुंचाई जा सकती है

वह सामाजिक उपकरण है

x x x x

भाषा की शक्ति

यह नहीं कि उसके सहारे

संप्रेषण होता है:

शक्ति इसमें है कि उस के सहारे

पहचान का यह संबंध बनता है जिस में

संप्रेषण सार्थक होता है।"

लोकोक्तियां और मुहावरे इसी भाषा के उपकरण हैं। अज्ञेय अपनी भाषा को शक्ति प्रतीक, बिंब, मिथक, लोकोक्तियां और मुहावरे आदि के प्रयोग से देते हैं। वे तत्सम तद्भव, देशज आदि शब्दों के प्रयोग से भाषा का कलात्मक संवर्धन करते हैं। लोकोक्तियां और मुहावरे के परंपरागत और नवीन रूप उनके काव्य में दिखाई देते हैं। अज्ञेय के सभी काव्य संग्रहों में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है। 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये' में 'इतिहास के न्याय' कविता में एक साथ अनेक मुहावरों का प्रयोग हुआ है -

"जो जिये वे ध्वजा फहराते घर लौटे

जो मरे वे खेत रहे

जो झूमते नगर लौटे, डूबे जय-रस में।

(खंडहरों के प्रेत और कौन हैं-

जिन के मुड़े हों पैर पीछे को?)

जो खेत रहे थे, वे अंकुरित हुए

इतिहास की उर्वर मिट्टी में"[९५]

कविता में ध्वजा फहराते, खेत रहे, घर लौटना, झूमते हुए नगर लौटना जैसे मुहावरों से कविता के अर्थवत्ता का विस्तार हुआ है। इतने मुहावरों का एक साथ प्रयोग अज्ञेय के कुशल भाषा-शिल्प का प्रतीक है। इसी प्रकार की शरणार्थी-२ कविता में पक गई खेती में भी कई मुहवरों का प्रयोग मिलता है-

"उस में आज बह रहीं ख़ूं की नदियां हैं।

कल ही जिसमें ख़ाक मिट्टी कह के हम ने थूका था

घृणा की आज उसमें पक गई खेती"[९६]

कविता की इन पंक्तियों में ख़ूं की नदियां, ख़ाक मिट्टी, हम ने थूका, पक गई खेती आदि उर्दू मुहावरों के प्रयोग से घृणा का दृश्य उभर कर सामने आ रहा है।

'इत्यलम', 'हरी घास पर क्षण भर', 'इंद्रधनुष रौंदे हुए ये', 'बावरा अहेरी' 'अरी ओ करुणा प्रभामय' काव्य संग्रहों में अनेक मुहावरों का प्रयोग मिलता है। ये सभी काव्य संग्रह मुहावरों के नवीन प्रयोग की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दृष्टांत के रूप में इत्यलम कविता में अनेक मुहावरों के प्रभाव से अज्ञेय की दार्शनिकता के भाव प्रकट होते हैं। भाषा की दृष्टि से यह कविता गंभीर भावों को बड़ी सहजता के साथ प्रकट कर रही है-

"खेलती विधि मानवों से? काश हम भी खेल सकते!

भाग्य के हमले अनोखे हम हंसी में झेल सकते

वह हमें शतरंज के प्यादों सरीखा है हटाता-

काश हम में शक्ति होती भाग्य को हम ठेल सकते।"[९७]

'हरी घास पर क्षण भर' काव्य संग्रह में मुहावरों के प्रयोग से प्रकृति के सौंदर्य को नया रूप दिया है।

"उजली लालिम मालती गंध के डोरे डालती,

मन में दुबकी हुलास ज्यों परछाईं हो चोर की-

तेरी बाट अगोरते ये आंखें हुई चकोर की”[९८]

इस कविता की इन पंक्तियों में मुहावरों के नवीन प्रयोग स्पष्ट दिखाई देते हैं। ‘गंध के डोरे डालती’, ‘बाट अगोरते आंखें हुई चकोर की’ जैसे मुहावरों के सुंदर प्रयोग से प्रकृति को नया आयाम दिया। इसी संग्रह में अज्ञेय ने ‘बासन अधिक मांजने से मुलम्मा छूट जाता है’ की उद्घोषणा की।

बावरा अहेरी में मुहावरों के प्रयोग से अज्ञेय ने आधुनिक यंत्रों के प्रभाव से व्यक्ति के जीवन का संत्रास दर्शाया है-

“यंत्र हमें दलते हैं

और हम अपने को छलते हैं,

थोड़ा और खट लो, थोड़ा और पिस लो”[९९]

‘अरी ओ करुणा प्रभामय’ काव्य संग्रह में ‘मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग दृष्टिगत है। इस संदर्भ में ‘घाट-घाट का पानी’ कविता को देखा जा सकता है -

“अर्थ एक है: मिलता है तो एक बार: (गुड़-सा गूंगे को।)

उसे और दोहराना

दोहरे भ्रम में बह जाना है।”[१००]

इसी संग्रह की कविताओं में ‘लौटे यात्री का वक्तव्य’ मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है। ‘बागडोर थामे है’, ‘आंखों पर चढ़ा हुआ मोटा चश्मा’, ‘जिसकी मुट्ठी में ताकत है’, ‘घात लगाते गाहक की’, ‘दिल मुर्गी का रखते हैं’, चौंधाता आंखों को’, दिल डंसा जाए आदि के लाक्षणिक प्रयोग से कविता में वर्ग-भेद के यथार्थ का अनुभव कराया है। ‘बांगर और खादर’ कविता में लोकजन-भाषा के प्रयोग के साथ लोक जन जीवन का रेखांकन किया है -

“खादर की नदी नहीं

किसी की बपौती की

पुरवे के हर घरवे को

गंगा है अपनी कठौती की"[१०१]

मुहावरों और लोकोक्ति के प्रयोग का सुदृढ़ रूप अज्ञेय के 'आंगन के पार द्वार' की कविताओं में भी मिलता है। घिग्घी बंधना, हड्डी-पसली तोड़ना, ठिठक जाना, ढलती उमर के दाग धोना आदि प्रयोंग से अज्ञेय के अनुभूतियां व्यंजित हुई हैं।

अज्ञेय की उत्तर रचनाओं में भी अनेक मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग सशक्त ढंग से हुआ है। 'कितनी नावों में कितनी बार', 'क्योंकि तुम हो', 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं', 'महावृक्ष के नीचे', 'नदी की बांक पर छाया' की कविताएं मुहावरे और लोकोक्तियों का आधार पाकर रोचक, सारगर्भित और अर्थपूर्ण बन पड़ी हैं। पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं; काव्य संग्रह की कविता 'अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम' में 'अंटी में खोंसते नावां', 'लाठी में चुपड़ते तेल', 'मस्का लगाना', 'तेरे सिर पर कोल्हू' इत्यादि और लोकोक्तियों के प्रयोग से कवि के विविध विचार साकार हुए हैं। 'मस्का लगाना' जैसे नवीन मुहावरे का प्रयोग उनकी प्रायोगिक दृष्टि का प्रमाण है।

नदी की बांक पर छाया' रचना संग्रह की कविता अनेक मुहावरों और लोकोक्ति के प्रयोग दिखाई देते है। 'कीचड़ में भैंस खड़ी पगुराय' 'धरती को सींचा लहू से', 'पैरों की बिवाइयां', 'खून चूसना' आदि के प्रयोग से कविता को विविध अर्थ-संदर्भ से मंडित किया गया हैं।

'ऐसा कोई घर आपने देखा है' काव्य संग्रह की कविताओं में भी अनेक मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से अज्ञेय की भावाभिव्यक्तियों को नया संदर्भ मिला है। उदाहरणत: 'चटक कर टूट जाना', 'मेरे नयन क्यों तरसे' 'छाती के घाव', 'ख़ून के दाग' सन्नाटे का छंद में कुछ नए शब्दों के संश्लेषण से अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से अज्ञेय के काव्य में अर्थ की गंभीरता दिखाई देती है, उक्ति वैचित्र्य का चमत्कार भी उत्पन्न होता है और भाषा में कलात्मकता की सृष्टि होती है। अज्ञेय के विचारों में बिम्ब, प्रतीक,

मिथक लोकोक्तियों और मुहावरों के सयुंक्त संयोग से भाषा के नव्य रूप का विस्तार हुआ। यह कहने में अतिशयोक्ति न होगी कि अज्ञेय की भाषा में नए प्रयोगों से हिन्दी साहित्य में एक नए युग की शुरुवात हुई।

निष्कर्षत: अज्ञेय के कला संबंधी विचारों एवं भाषिक दृष्टि से उनके काव्य में निहित कलात्मक सौंदर्य पर प्रकाश पड़ता है। उनकी कला और भाषा दृष्टि में नई संवेदनाएं परिलक्षित हैं। अज्ञेय के विचार अपनी परंपरा से ग्रहण करते हुए आधुनिकता में प्रवेश करते हैं और दृष्टि नए और पुरातन विचारों के योग से अनुभवसिद्ध साहित्य का सृजन करती हैं। यह उनकी कला दृष्टि का अनुपम सौंदर्य है।

--****--

संदर्भ सूची

लेखक/संपादक　　　　पुस्तक　　　　पृष्ठ संख्या

१- विद्यानिवास मिश्र,　अज्ञेय: वन का छंद,　४३

२- शिव कुमार मिश्र, मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन : इतिहास तथा सिद्धान्त, ४०८, ४०९

३- डॉ॰ रामशंकर त्रिपाठी, अज्ञेय की सौंदर्य-संसृति, ८८, ८९

४- शिव कुमार मिश्र, मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन : इतिहास तथा सिद्धान्त, ३७५

५- डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी, भारतीय व पाश्चात्य काव्य शास्त्र तथा हिन्दी आलोचना,१४७

६- डॉ॰ भगीरथ मिश्र, पाश्चात्य काव्यशास्त्र : इतिहास, सिद्धान्त, और वाद, १००

७- क्रिस्टोफर कॉडवेल, विभ्रम और यथार्थ, २६५

८- अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, १

९- अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, २

११- अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, २०

१२- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय: का काव्य, २५९

१३- अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, ४

१४- अज्ञेय, सदानीरा २ ३६

१५- अज्ञेय, सर्जना और संदर्भ, ४७

१६- अज्ञेय, सदानीरा-१, २९०

१७- नन्द किशोर आचार्य, साहित्य का अध्यात्म, १७

१८- अज्ञेय, आत्मपरक, १७२

१९- आर. एस. मैकग्रेगोर, ऑक्सफोर्ड हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश, ९५१

२०- डॉ॰ हरदेव बाहरी, अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश, ७८४

२१- डॉ॰ हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्दकोश, ३४७

२२- डॉ॰ हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्दकोश, ७७६

२३-कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुंदीलाल श्रीवास्तव, वृहत हिन्दीकोश, ११३०

२४- अज्ञेय, तारसप्तक, १६८

२५- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली- ७, १०९

२६- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली- ७, १२०-१२१

२७- अस्तित्ववाद और साहित्य, श्याम सुंदर मिश्र, १३

२८- डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद, अज्ञेय: कवि और काव्य, १७५

२९- अज्ञेय, आत्मनेपद, २५

३०- विद्यानिवास मिश्र, अज्ञेय: वन का छंद, १०४

३१- अज्ञेय, तारसप्तक, २७१

३२- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली- ७, १०२,१०३

३३- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, ३२

३४- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, १९

३५- अज्ञेय, चिंता, ८३

३६- रामस्वरूप चतुर्वेदी, अज्ञेय: और आधुनिक रचना की समस्या, ५८

३७- रामकमल राय, शिखर से सागर तक, ८४

३८- अज्ञेय सदानीरा-१, २५१

३९- रामस्वरूप चतुर्वेदी, काव्य भाषा पर तीन निबंध, (सं॰) डॉ॰ सत्यप्रकाश मिश्र, ६६

४०- अज्ञेय, सदानीरा-१, १८४

४१- अज्ञेय, सदानीरा-१, २४०

४२- अज्ञेय, बावरा अहेरी, २०

४३- अज्ञेय, सदानीरा-१, ३१९

४४- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ७६, ७८

४५- रामस्वरूप चतुर्वेदी, नई कविताएं: एकसाक्ष्य, ७२

४६- अज्ञेय, सदानीरा-१, १७९

४७- अज्ञेय, सदानीरा-२, १९९

४८- अज्ञेय, सदानीरा-१, २८२

४९- अज्ञेय, सदानीरा-१, २९२

५०- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, १५५

५१- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी बार, १३

५२- नंदकिशोर आचार्य, अज्ञेय काव्य की तितीर्षा, ७१

५३- अज्ञेय, सदानीरा-२, १११

५४- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ८०

५५- नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, ११२

५६- आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि-३, १३

५७- डॉ॰ कुमार विमल, सौंदर्य शास्त्र के तत्त्व

५८- डॉ॰ भगीरथ मिश्र, नया काव्यशास्त्र, १०६

५९- केदारनाथ सिंह, आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान, केदारनाथ सिंह

६०- अज्ञेय, बावरा अहेरी, १२

६१- अज्ञेय, बावरा अहेरी, १६

६२- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी बार, १६

६३- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली- २, ४७८

६४- अज्ञेय, सदानीरा-२, २१८

६५- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, १४१

६६- नंदकिशोर आचार्य, अज्ञेय काव्य की तितीर्षा, ७१

६७- अज्ञेय, आत्मनेपद, ३५

६८- काव्यशास्त्र, डॉ॰ भगीरथ मिश्र, २७१

६९- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली-७, ११०

७०- अज्ञेय, सदानीरा-१, १८२

७१- अज्ञेय, सदानीरा-१, २३८

७२- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, ८२

७३- अज्ञेय, आत्मनेपद, ३५

७४- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, ९१

७५- अज्ञेय, आंगन के पार द्वार, ६४

७६- अज्ञेय, सागर मुद्रा, ७१

७७- अज्ञेय, सदानीरा- २, २१५

७८- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ६०

७९- अज्ञेय, सदानीरा- २, ३२६

८०- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय- प्रतिनिधि निबंध संकलन, १६६

८१- डॉ॰ हरदेव बाहरी, अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश, ४४०

८२- डॉ॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, ६

८३- डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य की रूप रेखा, २०७

८४- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय रचनावली-९, १२९

८५- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय- प्रतिनिधि निबंध संकलन, १७२

८६- श्री रत्नशंकर प्रसाद, प्रसाद वाङ्मय रचनावली- प्रथम खंड, ५१५

८७- अज्ञेय, सदानीरा-१, २८६

८८- डॉ॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, १९४

८९- अज्ञेय, कितनी नावों में कितनी बार, ७६

९०- अज्ञेय, सदानीरा-२, ३५०

९१- अज्ञेय, सदानीरा-२, ४१५, ४१६

९२- अज्ञेय, सदानीरा-२, ४३२

९३- अज्ञेय, ऐसा कोई घर आपने देखा है, ३१

९४- अज्ञेय, सदानीरा-२, ४०१ ४०२

९५- अज्ञेय, सदानीरा-१, २८०

९६- अज्ञेय, सदानीरा-१, २२३

९७- अज्ञेय, सदानीरा-१, १६६

९८- अज्ञेय, सदानीरा-१, २३५

९९- अज्ञेय, बावरा अहेरी, ४७

१००- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, १५२

१०१- अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, ४४

उपसंहार

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' हिंदी साहित्य के मूर्धन्य कवियों में से एक हैं। उन्होंने हिंदी साहित्य को अपने नूतन विचार-दृष्टि के साथ नई दिशा दी। एक कवि, लेखक, उपन्यासकार, निबंधकार, संपादक के रूप में अपनी सर्जनात्मक क्षमता से हिंदी साहित्य को विकसित किया।

अज्ञेय का रचना-संसार अथाह है और इसकी गहराई में उतरकर ही उनके विचारों को समझा जा सकता है। उनके द्वारा प्रतिपादित ग्रंथ 'तारसप्तक' से उनके विचारों की नवीनता दिखाई देती है। इसमें उन्होंने प्रयोग पर बल दिया जो उनके विचारों में नई दृष्टि का परिचायक है। उन्होंने कविता में छायावादी भावप्रवणता के स्थान पर नए विचारों की प्रतिष्ठा की। अज्ञेय के विचार एवं दृष्टि को परखने के लिए सबसे पहले मैंने उनके पारिवारिक परिवेश का अध्ययन किया।

परिवार में ही सर्वप्रथम एक शिशु के संस्कार के बीज पड़ते हैं। अज्ञेय माता-पिता, और भाई-बहनों के स्नेहिल तो थे ही परंतु पिता के सानिध्य में अधिक रहे। परिवार एक शिशु की पहली पाठशाला है जहां उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस दृष्टि से देखें तो अज्ञेय की प्रथम पाठशाला प्रकृति रही। पिता के पुरातत्व विभाग में होने और लगातार उनका स्थानांतरण से उनका सानिध्य अलग-अलग प्रदेश और उसकी प्रकृति से होता रहा। इस यायावरी जीवन ने उनके विचारों को न केवल निखारा बल्कि उनकी दृष्टि को भी मांजा। वे प्रकृति का अंक पाकर उसी की भांति फले-फूले। कहने का आशय है कि प्रकृति की नैसर्गिकता और स्वतंत्रता उनके विचारों में बस गयी जो उनके काव्य में परिलक्षित है।

अज्ञेय के व्यक्तित्व निर्माण में उनकी परिस्थितियों की भूमिका अहम रही। उनकी परिस्थितियों ने उन्हें एकांत और मौन का वातावरण दिया। उनकी कविताओं में मौन की गूंज हर कहीं सुनाई देती है। वस्तुत: वे इस मौन की अभिव्यक्ति अपनी कविताओं के माध्यम से करते हैं। 'मौन भी अभिव्यंजना है', 'मैं सन्नाटे का छंद हूं', 'पहले मैं

सन्नाटा बुनता हूं' आदि शीर्षक की कविता और कविता की पंक्तियां उनके काव्य में इसी का बोध कराती हैं।

अज्ञेय प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी थे। अंग्रेजी, संस्कृत उर्दू आदि भाषाओं और साहित्य के गहन अध्ययन ने उनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान की। उनके गरिमामयी व्यक्तित्व की झलक उनकी कविताओं में दिखाई देती है। एक उत्कृष्ट लेखक बनने में उनकी जीवन-परिस्थितियों का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा। मानस मुकुल दास का यह कथन अज्ञेय के विषय में सत्य ही है- "एक लेखक के रूप में अज्ञेय की केंद्रीय विशेषता को ठीक ढंग से संस्कृत के एक शब्द से पकड़ा जा सकता है: जीवन शिल्पी: एक कलाकार जिसका माध्यम स्वयं उसका जीवन है। जीवन शिल्पी अपने क्षणों को संपूर्णता, चिंतनशीलता और सजगता के साथ जीता है। उसका अनुभूतिक्षम मानस प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक विचार के प्रति चौकस रहते हुए उन्हें ऐसी दिशा देता चलता है कि उसका जीवन, जैसा वह जिया गया है, एक कलाकृति में रूपायित हो जाता है।"(सं॰- अशोक वाजपेयी, अज्ञेय का संसार: शब्द और सत्य, ११) इस कथन के आधार पर हम कह सकते हैं कि अज्ञेय ने अपने जीवन से जो कुछ अनुभव किया, उसी को कविता में पिरोया। यही कारण है कि उनकी कविता जीवन के बहुत करीब दिखाई देती है।

वास्तव में किसी कवि के व्यक्तित्व को समझे बिना उसके विचारों को समझना कठिन है। इसलिए मैंने उनकी कविताओं को क्रम से प्रस्तुत किया है। उनके गद्य-साहित्य के संक्षिप्त परिचय से भी उनके विचार एवं दृष्टि को समझने में सहायता मिली। अज्ञेय की प्रारंभिक काव्य-रचना में उनके विचार उतने प्रौढ़ नहीं दिखाई देते हैं जितना कि बाद की काव्य रचनाओं में। सर्जनात्मक विकास क्रम में धीरे-धीरे उनकी दृष्टि प्रौढ़ होती गई।

अज्ञेय का जीवन यायावरी रहा। वे देश-विदेश की यात्रा आजीवन करते रहे। उनकी इन यात्राओं ने उनके विचार और दृष्टि को प्रौढ़, परिमार्जित और सुदृढ़ बनाया। उन्हें विचारों को ग्रहण करने में कोई संकोच नहीं था चाहे वह देशी रहे हों अथवा विदेशी। इस कारण उन्हें आलोचना का शिकार भी बनना पड़ा। विचारों की ग्रहणशीलता से ही उनके काव्य में

वैविध्यता परिलक्षित होती है। द्‌वितीय अध्याय में उनकी वैचारिक दृष्टि के अंतर्गत उनकी कविताओं में भारतीय, पाश्चात्य और वैज्ञानिक विचार और दृष्टि के संबंध में चर्चा हुई है। वे ब्राउनिंग, डी॰ एच॰ लारेंस, टी॰ एस॰ एलियट, दांते, एजरा पाउंड जैसे विचारकों के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। अज्ञेय की रचना पर प्रतीकवाद, अतियथार्थवाद, बिंबवाद जैसे कलावादी आंदोलनों का प्रभाव भी रहा। वस्तुत: अज्ञेय की अध्ययन में रुचि और घुमक्कड़ी प्रवृत्ति ने उनकी अनेक साहित्य और साहित्यकारों के विचारों से पहचान कराई। इसके प्रभाव से अज्ञेय के काव्य में निहित विचारों में सौष्ठवपन दिखाई देता है।

अस्तितत्ववाद और मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव भी अज्ञेय की कविताओं में दृष्टिगत है। उनकी कविता में व्यक्ति स्वातंत्र्य और उसकी यौन कुंठा की भावना इन्हीं पाश्चात्य विचारों का प्रभाव कहा जा सकता है। उदाहरण के रूप में अज्ञेय कहते हैं- “इंसान है कि जनमता है/ और विरोध के वातावरण में आ गिरता है:/ उसकी पहली सांस संघर्ष का पैंतरा है/ उसकी पहली चीख एक युद्ध का नारा है/ जिसे वह जीवन भर लड़ेगा।”-(‘कितनी नावों में कितनी बार, ४१) यह कविता अस्तित्ववादी मान्यताओं से प्रभावित है। अस्तित्ववादी विचारक सार्त्र के मतानुसार “व्यक्ति जीने के लिए अभिशप्त है और उसे कुछ बनने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।”- (पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियां- जगदीश सहाय श्रीवास्तव, ४६१) यह कहने का यही अर्थ है कि जिस समय वह जन्म लेता है तभी से उसे अपने कार्यों के प्रति उत्तरदायी बन जाता है और आजीवन वह संघर्ष करता रहता है। अज्ञेय ने व्यक्ति के इस संघर्ष का अवलोकन किया और इस विद्रोह की सामाजिक अभिव्यक्ति की। मनोविश्लेषणवादी प्रभाव के फलस्वरूप व्यक्ति की दमित इच्छाओं को भी अज्ञेय ने समझा। उन्होंने सामाजिक यौन-भावनाओं के आक्रामक स्वर को व्यक्त किया। इन पाश्चात्य विचारों का प्रभाव अज्ञेय की कविता पर पड़ा अवश्य परंतु उसे नकल नहीं समझा जाना चाहिए। अज्ञेय सबसे ग्रहण करते रहे लेकिन उसे अपनी बौद्धिक सर्जनात्मक क्षमता के आधार पर नवीनता का रंग देकर प्रस्तुत किया।

कहा जा सकता है कि अज्ञेय की दृष्टि पाश्चात्य विचारों से प्रभावित और वैज्ञानिकता लिए हुए भारतीयता के रंग में रंगी हुई है। विज्ञान के विद्यार्थी के रूप में उनके विचार तर्क सम्मत हैं। बौद्धिकता का आधार देकर अज्ञेय ने कविता को नवीन काया दी। उनके विचार चाहे व्यष्टि, समष्टि प्रकृति, नारी, लोकजीवन, दर्शन संबंधी हो, अज्ञेय की तार्किकता पर आधारित है। मेरे विचार से अज्ञेय को विशिष्ट मानने का यही अर्थ है कि उनकी कविता में उनके विचार दिखाई देते हैं। दृष्टांत के रूप में जब वे कहते हैं- "जितना तुम्हारा सच है", "मैंने भी सपने देखे हैं", "आज तुम शब्द न दो" आदि कविता के शीर्षक ही अपने आप में एक विचार हैं। इसी प्रकार की अन्य कविता या उनकी पंक्तियां उनके विचारों को व्यक्त करती हैं। यह अज्ञेय की नवीन विचार और दृष्टि का परिचय देता है।

अज्ञेय की कविता में हमें उनकी व्यष्टि और समष्टि संबंधी विचारों की नवीनता दिखाई देती है। उन्होंने समष्टि के स्थान पर व्यष्टि को अपनी कविता में प्रतिष्ठित किया। अज्ञेय के आलोचक यह कहकर उनकी आलोचना करते रहे हैं कि अज्ञेय ने समाज की सत्ता को अस्वीकार किया है। यह ठीक है कि अज्ञेय की दृष्टि व्यक्तिवादी रही। उन्होंने अपनी कविता में व्यष्टि को ही अधिक महत्तव दिया किन्तु समाज के महत्त्व को भी वे अस्वीकारते नहीं। इस दृष्टि से उनकी कविता 'नदी के द्वीप' इस आलोचना का अपवाद कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त भी 'दिवाकर के प्रति दीप', 'यह दीप अकेला', 'आज तुम शब्द न दो' आदि विशेष कविताओं में उनके समाज के प्रति कृतज्ञता का भाव दिखाई देता है।

अज्ञेय ने व्यक्ति के स्वातंत्र्य मूल्य की स्थापना पर बल दिया है। यही वह कारण है जहां व्यष्टि और समष्टि के बीच अंतर्द्वंद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अज्ञेय मानते हैं कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता सर्वोपरि है। जहां समाज उसकी स्वतन्त्रता में बाधक हैं वहीं उनका विरोध है। वे समाज के दाय के प्रति कृतघ्न नहीं है बल्कि व्यष्टि के निर्माण में उसकी भूमिका को विशेष रूप से स्वीकार करते हैं। अज्ञेय के इन्हीं मतों और संवेदनाओं को मैंने अपने तीसरे अध्याय में खंगाला है। उनकी

कविता में निहित व्यष्टि और समष्टि संबंधी संवेदनाओं के आधार पर दोनों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को देखा जा सकता है। अंततोगत्त्वा अज्ञेय समाज का हित ही चाहते हैं और इस दृष्टि से उन्हें समाज विरोधी नहीं कहा जा सकता।

अज्ञेय के विचारों में सौंदर्यबोध की एक विशिष्ट दृष्टि दिखाई देती है। प्रकृति, नारी, लोकजीवन और दर्शन में उनकी सौंदर्यबोधीय दृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है। प्रकृति उनके जीवन का अभिन्न अंग रही। प्रकृति की सौंदर्य चेतना के प्रति अज्ञेय काफी सजग दिखाई देते हैं। अज्ञेय ने प्रकृति के विभिन्न रंग और रूप को तो उकेरा ही है, उसके संदर्भ में विशेष बात यह है कि वे प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण के प्रति आकर्षित रहे। उसकी उन्मुक्तता का संबंध वे वैयक्तिक जीवन से जोड़ते हैं। प्रकृति के उपमानों से नए प्रतीकों का सृजन करते हैं। वे प्रकृति और व्यक्ति के स्वतंत्र रूप के हिमायती रहे हैं। वे व्यक्ति के सम्बन्धों में भी प्रकृति की ही भांति खुलेपन के समर्थक हैं। उनके विचारों की स्वतन्त्रता इसी प्रकृति से प्रेरित दिखाई देती है।

नारी संबंधी सौंदर्य की दृष्टि भी अज्ञेय के विचारों में नएपन का बोध होता है। कवि स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों में भी हरी घास के तरह खुलेपन की मांग करता है। वे स्त्री सम्बन्धों में यथार्थ की अभिव्यक्ति चाहते हैं। यौन-प्रतीकार्थ रखने वाले उपमानों से अज्ञेय यौन-कुंठा-भावना को बेबाकी से प्रकट करते हैं क्योंकि वे इसे नैसर्गिक मानते हैं। नारी के शोषण को कविता में अभिव्यक्त करना उनकी आधुनिक दृष्टि और जागरूकता का परिचय देता है।

अज्ञेय ने लोकजीवन के सौंदर्य को आधुनिक दृष्टि से देखा है। वे परंपरा से ग्रहण कर आधुनिकता की ओर उन्मुख होते हैं। उनकी आधुनिक दृष्टि उन्हें अपने परंपरात्मक परिवेश से अलग नहीं करती। ऐसी विशिष्टता विरलों में ही दिखाई देती है।

अज्ञेय के दर्शन संबंधी दृष्टि का सौंदर्य बोध भारतीय और पाश्चात्य दर्शन के विचारों से प्रभावित है। उनके विचारों में सत्यान्वेषण और आत्मान्वेषण के प्रति आग्रह दिखाई देता है। अत: कह सकते हैं कि

चतुर्थ अध्याय में प्रकृति, नारी, लोकजीवन और दर्शन के संबंध में अज्ञेय के नवीन विचारों के दर्शन होते हैं।

अज्ञेय ने भाषा की दृष्टि से अनेक प्रयोग किए। भाषा और शिल्प के स्तर पर उनके विचारों में नव्यता दिखाई देती है। यथार्थ का बोध करने में अज्ञेय इसी भाषिक प्रयोग से सफल हुए हैं। उनकी कला दृष्टि भी नवीन है। उन्होंने व्यक्ति के अंत: करण की संवेदनाओं को अपने कथ्य का आधार बनाया है। व्यक्ति के अंतर्संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए वे नूतन शिल्प का विधान करते हैं। पुराने उपमानों को हटाकर नए उपमानों का संयोजन करते हैं। वे शब्दों में चमत्कार और सारगर्भित अर्थ को महत्तव देकर हिन्दी साहित्य को नया कलेवर देने में सक्षम रहे हैं।

अत: हम कह सकते हैं कि अज्ञेय ने अपनी बौद्धिक और प्रायोगिक क्षमता से हिन्दी साहित्य को नया आयाम दिया। उनके विचारों में तार्किकता और दृष्टि में एक धार दिखाई देती है। अज्ञेय के काव्य में विचार में जो नवीनता है और दृष्टि का पैनापन है वह विशिष्ट है। वैचारिक स्तर पर उनकी जो दृष्टि दिखाई देती है वह हिन्दी साहित्य में आकर्षण का विषय है।

उपलब्धियां-

प्रस्तुत शोध के प्रबंध के समय अज्ञेय के काव्य संग्रहों के गहन अध्ययन से तत्कालीन साहित्यिक परिवेश के समझने का अवसर मिला। व्यक्ति, समाज, प्रेम, और प्रकृति, काव्य सौंदर्य और भाषिक दृष्टि की मेरी समझ भी विकसित हुई।

अज्ञेय के काव्य में विचारों की विविधता दिखाई देती है। समाज में घटित घटनाओं के प्रति वे जागरूक हैं। उनकी सजगता उनके काव्य में उभरकर दिखाई देती है। अज्ञेय के विचारों का तार्किक सौष्ठव अत्यंत पुष्ट है। उनकी तार्किक क्षमता ने उन्हें प्रायोगिक दृष्टि दी। उन्होंने पूर्व प्रचलित मान्यताओं को बदला जो अपने आप में दुस्साहसिक कार्य था।

अज्ञेय ने भारतीय और पश्चिमी विचारों से रंजित नए विचारों को हिंदी साहित्य में स्थापित किया। उनकी ग्रहण करने की योग्यता अद्भुत थी। उनके विचारों की मौलिकता उन्हें एक श्रेष्ठ कलाकार के रूप में स्थापित करती है। वे साहित्य के महान साधक थे। उन्होंने न केवल काव्य को बल्कि हिंदी की सम्पूर्ण विधा को अपनी कला क्षमता से समृद्ध किया। कविता में प्रयोगवाद और नई कविता जैसी धारा को स्थापित करना आसान कार्य नहीं कहा जा सकता। कविता में प्रयोग को स्थान देना दुष्कर है। इसके लिए अज्ञेय की आलोचना भी बहुत हुई लेकिन अज्ञेय अपने इरादों पर अडिग रहने वाले कवि थे। वे कविता को कथ्य और शिल्प के आधार पर नए प्रयोग से गढ़ते रहे। कालांतर में हिंदी साहित्य में उनका स्थान श्रेष्ठ कवियों में प्रतिष्ठित हुआ।

अज्ञेय के काव्य में विद्रोहात्मक प्रवृत्ति दिखाई है। एक प्रकार से उनमें पुरातन विचारों के स्थान पर नए विचारों की स्थापना का आग्रह है। पुराने उपमानों को मैला कहना उनकी इसी दृष्टि का प्रतीक है। अज्ञेय स्वयं अपने बनाए घेरे को तोड़ते रहने में विश्वास रखते रहे हैं। तभी तो वे 'सागर मुद्रा' काव्य संग्रह में कहते हैं- "यों मत छोड़ दो मुझे, सागर/ कहीं मुझे तोड़ दो, सागर/ कहीं मुझे तोड़ दो।"- ('सागर मुद्रा'-८)

अज्ञेय के काव्य में उनके आदर्शवादी विचारों को देखा जा सकता हैं। उनका कवि मन अपने लिए कठिनाई के रास्ते की परवाह न करके औरों के लिए एक सुखमय राह बनाने में विश्वास रखते हैं। इन विचारों से उनके गरिमामयी और वैचारिक व्यक्तित्व की पहचान होती है।

संभावनाएं-

अज्ञेय का साहित्य भंडार बहुत विस्तृत है और इस दृष्टि से उनकी कविता में शोध के नए आयाम की गुंजाइश भी विस्तृत है। उनके काव्य में शोध के लिए मेरी दृष्टि से निम्न विषयों में संभावनाएं हो सकती हैं-

१- अज्ञेय का काव्य: दार्शनिक विचार

२- अज्ञेय का काव्य: भाषा के नूतन प्रयोग

३- अज्ञेय का काव्य: पाश्चात्य कवियों का प्रभाव

४- अज्ञेय का काव्य: युग चेतना

५- हिंदी कविता में अज्ञेय की भूमिका

प्रत्येक व्यक्ति के विचार अथवा सोचने का ढंग अलग-अलग होता है क्योंकि व्यक्ति की अपनी बौद्धिक क्षमता होती है। इससे संभावनाएं सदैव बनी रहती हैं। अत: अज्ञेय के काव्य में शोध कार्य की संभावनाओं का क्षेत्र खुला है। एक शोध प्रबंध में किसी कवि के सभी विचारों अथवा विशेषताओं को एक साथ प्रस्तुत कर पाना संभव नहीं हो पाता इसलिए शोध में नई संभावनाओं का द्वार हमेशा खुला रहता है।

--****--

परिशिष्ट - I

आधार ग्रंथ सूची

१- सदानीरा भाग-(१,२), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, दूसरा संशोधित संस्करण २००३

२- चिंता (काव्य-संग्रह), अज्ञेय, प्रतीक प्रकाशन, पहला संस्करण १९४१, दूसरा संस्करण १९७०

३- बावरा अहेरी (काव्य-संग्रह), भारतीय ज्ञानपीठ, सातवां संस्करण २०११

४- अरी ओ करुणा प्रभामय (काव्य-संग्रह), काशी भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण १९५९

५- ऐसा कोई घर अपने देखा है (काव्य-संग्रह), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९८६

६- कितनी नावों में कितनी बार (काव्य-संग्रह), भारतीय ज्ञान पीठ नई दिल्ली, सातवां संस्करण १९९२

७- आंगन के पार-द्वार (काव्य-संग्रह), ज्ञान पीठ प्रकाशन, द्वितीय संस्करण १९६६

८- सागर मुद्रा (काव्य-संग्रह), राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण १९७०

९- आत्मनेपद, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण २०१०

१०- तारसप्तक, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, तीसरा संस्करण १९७०

११- संवत्सर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण १९७८

१२- आत्मपरक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, द्वितीय संस्करण २००४

१३- केंद्र और परिधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण २००५

१४- आधुनिक हिन्दी साहित्य, सस्ता साहित्य मंडल, संस्करण २०११

१५- सर्जना और संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण २००४

१६- साहित्य, संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया (सं०कृष्णदत्त पालीवाल) सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, २०११

१७- साहित्य का परिवेश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम, १९८५

परिशिष्ट-II

संदर्भ ग्रंथ सूची

पुस्तक लेखक/संपादक प्रकाशन संस्करण

१- अज्ञेय, कृष्णदत्त पालीवाल, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, २०१२ (शक १९३३)

२- अज्ञेय: स्मृतियों के झरोखे से, डॉ नीलम ऋषिकल्प, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम, २०१२

३- शिखर से सागर तक (अज्ञेय की जीवन यात्रा), रामकमल राय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम १९८६

४- वन का छंद, विद्यानिवास मिश्र, ('गिरिवर मिश्र, गणेश शुक्ल'- संचयन तथा संपादन) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, २००८

५- अज्ञेय और इलियट, अरूण भारद्वाज, साहित्य सहकार, दिल्ली, द्वितीय, २००१

६- अज्ञेय: एक अध्ययन, भोला भाई पटेल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२

७- अज्ञेय: कवि और काव्य, डॉ राजेन्द्र प्रसाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय, २००२

८- शेष-नि:षेश, रामधारी सिंह दिनकर, पूर्वोदय प्रकाशन, प्रथम, १९८५

९- अज्ञेय के सृजन में जापान, रीतारानी पाल, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम -२००२

१०- अपने-अपने अज्ञेय-२, ओम थानवी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, २०११

११- अज्ञेय से साक्षात्कार, कृष्णदत्त पालीवाल, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, २०१२

१२- अज्ञेय: कवि कर्म का संकट, कृष्णदत्त पालीवाल, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१०

१३- आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ देवराज, कल्पकार प्रकाशन लखनऊ, प्रथम, १९८९
१४- शब्द-पुरुष अज्ञेय, नरेश मेहता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २०१२
१५- नई कविता, नंद दुलारे वाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, २०१०
१६- अज्ञेय: प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन परिचय, विद्यानिवास मिश्र, राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्रथम, २००३
१७- अज्ञेय: विचार और कविता, डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, प्रथम, २००२
१८- अज्ञेय कवि कर्म, रमेश चंद्र शाह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम, २०१२
१९- सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय, डॉ कृपा शंकर पांडेय, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम, २००९
२०- अज्ञेय का काव्य, सुश्री सुमन झा, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, १९६४
२१- अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, राम स्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा, २०११
२२- असाध्य वीणा की साधना (मूल्यांकन और पाठ), प्रो. वशिष्ठ अनूप विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय, २०१४
२३- अज्ञेय रचनावली- (१,२,४,७,९), कृष्णदत्त पालीवाल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम, २०११
२४- साहित्य का आत्म-सत्य, निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, २००६
२५- अज्ञेय की चिंतन दृष्टि, डॉ॰ नंद कुमार राय, बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, प्रथम, २०११
२६- समकालीन दर्शन, बसंत कुमार लाल, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, प्रथम,१९९१
२७- भगवद्गीता, डॉ॰ राधाकृष्णन्, सरस्वती विहार, दिल्ली, सातवां, १९८०

२८- भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, चंद्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम, १९९०

२९- कबीर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, ११वां, २००४

३०- सबद (कबीर वाङ्मय: खंड-२), डॉ.जयदेव सिंह, डॉ.वासुदेव सिंह, विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ, २००७

३१- पाश्चात्य दर्शन की दार्शनिक प्रवृत्तियां, जगदीश सहाय श्रीवास्तव, ज्ञान भारतीय, द्वितीय, १९९८

३२- अज्ञेय से साक्षात्कार, कृष्णदत्त पालीवाल, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली, २०१२

३३- आस्था और सौंदर्य, डॉ रामविलास शर्मा, राज कमल प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति, २००९

३४- साहित्य का उद्देश्य, मुंशी प्रेमचंद, साहित्यागार, जयपुर, १९९२

३५- चिंतामणि- भाग-३, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अनु प्रकाशन, जयपुर, २००४

३६- अज्ञेय का संसार: शब्द और सत्य- अशोक वाजपेयी, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, २००५

३७- अज्ञेय से अरुण कमल, डॉ॰ संतोष कुमार तिवारी, भारतीय ग्रंथ निकेतन प्रकाशन, २००५

३८- रामचरित मानस : विविध संदर्भ, मुकुंदलाल मुंशी, नवोदय सेल्स, दिल्ली, १९९३

३९- कृष्णदत्त पालीवाल, अज्ञेय से बातचीत, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम, २०११

४०- अज्ञेय की कविता: परंपरा और प्रयोग, रमेश ऋषिकल्प, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम, २००८

४१- रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, प्रथम सोपान, टीकाकार- हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर

४२- कर्मयोग, स्वामी विवेकानंद (सं.-रामविलास शर्मा), अरुणोदय प्रकाशन, दिल्ली, १९९५

४३- श्रीमदभगवद्गीता, जयदयाल गोयंदका (टीकाकार), गीता प्रेस गोरखपुर, सं. २०७२, तिरानबेवां पुनर्मुद्रण

४४- भारतीय संस्कृति के मूल तत्व, डॉ शिवदास, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, १९९८

४५- The Sacred Wood: essays on poetry and criticism, T。S。 Elliot, Methuen & CO LTD, London

४६- पाश्चात्य काव्यशास्त्र, डॉ तारक नाथ बाली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। प्रवर्द्धित संस्करण, २०१०

४७- मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन : इतिहास तथा सिद्धान्त, शिव कुमार मिश्र, वाणी प्रकाशन, २०१०

४८- निराला रचनावली-भाग-२, नन्द किशोर नवल, राजकमल प्रकशन, नई दिल्ली, पांचवां, २००९

४९- चिंतामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम लोकभारती, २००२

५०- पाश्चात्य काव्यशास्त्र: इतिहास, सिद्धान्त, और वाद, डॉ。 भागीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सप्तम, २०१४

५१- भारतीय व पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिंदी आलोचना, डॉ。 रामचंद्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, (पूर्णतया परिवर्धित) तृतीय, २०१४

५२- अज्ञेय: चेतना के सीमांत, ज्वाला प्रसाद खेतान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम, १९९३

५३- अज्ञेय: शिखर अनुभूतियां, ज्वाला प्रसाद खेतान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम, १९९९

५४- आधुनिकतावाद, दुर्गा प्रसाद गुप्ता, आकाश दीप प्रकाशन, नई दिल्ली, २००४

५५- नया काव्य नए मूल्य, ललित शुक्ल, स्टैंडर्ड पब्लिशर्स (इंडिया), प्रथम १९९९

५६- अस्तित्ववाद और साहित्य, श्याम सुंदर मिश्र, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम, १९८३

५७- अस्तित्ववाद और मानववाद, ज्यां पॉल सार्त्र (अनुवादक- ज्वरीमल्ल पारख), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम, हिन्दी संस्करण-१९९७

५८- बिंबवाद, बिम्ब और आधुनिक कविता, डॉ॰ भगवान तिवारी, अरविंद परकशन मुंबई, प्रथम, १९९२

५९- हाइकू काव्य विश्वकोश, विद्यावाचस्पति डॉ॰ भवगतशरण अग्रवाल, हाइकू भारती प्रकाशन, गुजरात, प्रथम,२००९

६०- गांधी: समय, समाज और संस्कृति, विष्णु प्रभाकर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम, २०००

६१- हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ॰ विजय पाल सिंह, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, २०११

६२- अज्ञेय काव्य-स्तबक, विद्यानिवास मिश्र, रमेशचंद्र शाह (संम्पादक), साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम, १९९५

६३- वागर्थ का वैभव, रमेशचंद्र शाह, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम, १९९५

६४- अज्ञेय: जीवन दर्शन और साहित्य, डॉ॰ रेनू श्रीवास्तव, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम, २०१०

६५- विभ्रम और यथार्थ, क्रिस्टोफर कॉडवेल, अनुवादक- भगवान सिंह, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, १९९०

६६- अस्तित्ववाद से गांधीवाद तक, मस्तराम कपूर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम, १९९५

६७- समाजशास्त्र के सिद्धान्त, डॉ॰ गणेश शंकर पांडेय, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम, २००३

६८- कवि की नई दुनिया, शंभुनाथ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, २०१२

६९- अज्ञेय की कविता: एक मूल्यांकन, चन्द्रकान्त महादेव बांदिवड़ेकर, सरस्वती प्रेस इलाहाबाद, प्रथम, १९७१

७०- कविता: नए संदर्भ का विकास, डॉ॰ राजेंद्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, २०००

७१- नया काव्यशास्त्र, डॉ॰ भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम, १९९३

७२- अज्ञेय काव्य की तितीर्षा, नंदकिशोर आचार्य, वाग्देवी प्रकाशन बीकनेर, परिवर्धित संस्करण, २००१

७३- साहित्य और सौंदर्य बोध, डॉ॰ मुकेश गर्ग, कनिष्क पब्लिशर्स, नई दिल्ली, प्रथम, २००२

७४- मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र और उपन्यास, कुंवरपाल सिंह, नवचेतन प्रकाशन दिल्ली, २००५

७५- अज्ञेय: जितना तुम्हारा सच है, यतीन्द्र मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, २०११

७६- आधुनिक कवि-२, सुमित्रानंदन पंत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, चौदहवीं आवृत्ति, २०००

७७- संपादक- रूपा गुप्ता, अज्ञेय और प्रकृति, नई किताब, नई दिल्ली प्रथम २०१२

७८- सूर संचयिता, मैनेजर पाण्डेय- (चयन एवं सम्पादन), राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद, पहला, २०१२

७९- प्रसाद वाङ्मय (रचनावली), प्रथम खंड, श्री रत्नशंकर प्रसाद (समायोजन एवं सम्पादन), प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम, १९९०-९१

८०- कवि अज्ञेय: विश्लेषण और मूल्यांकन, डॉ॰ ब्रजमोहन शर्मा, इतिहास शोध संस्थान, नई दिल्ली, १९९७

८१- आधुनिक हिन्दी कविता में लोक तत्त्व, डॉ॰ वीरेंद्रनाथ द्विवेदी, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम १९९१

८२- निराला के काव्य में लोक तत्त्व, डॉ॰ उर्मिला बी॰ शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम, २०१३

८३- लोक साहित्य का लोक तत्त्व, डॉ॰ रामनिवास शर्मा, निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २००३

८४- अपरोक्ष: अज्ञेय से सात संवाद, इन्दु जैन, रघुवीर सहाय, सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, १९७९

८५- भारतीय दर्शन, वाचस्पति गैरोला ,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पांचवां, २००९

८६- आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां, नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नवीन, २००१

८६- आधुनिक कवि- १: महादेवी वर्मा, विभूति मिश्र (प्रकाशक), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सोलहवां, २००४

शिव कुमार मिश्र, मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन : इतिहास तथा सिद्धान्त, ४०८,४०९

८९- अज्ञेय की सौंदर्य-संसृति, डॉ॰ रामशंकर त्रिपाठी, मंथन पब्लिकेशन, रोहतक, प्रथम १९९३

९०- साहित्य का अध्यात्म, नन्द किशोर आचार्य, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकनेर प्रथम, २००६

९१- काव्य भाषा पर तीन निबंध, रामस्वरूप चतुर्वेदी, संपादक- डॉ॰ सत्यप्रकाश मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संवर्धित, २००४

९२- कविता के नए प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, बारहवीं आवृत्ति, २०१४

९३- नई कविताएं: एक साक्ष्य, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९०

९४- आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान, केदारनाथ सिंह, राधा कृष्ण प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति, २०११

९५- सौंदर्य शास्त्र के तत्त्व, डॉ॰ कुमार विमल, राजकमल प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, द्‌वितीय, १९८१

९६- काव्यशास्त्र, डॉ॰ भगीरथ मिश्र, विश्वविद्‌यालय प्रकाशन, वाराणसी, २६वां, २०१५

९७- अज्ञेय- प्रतिनिधि निबंध संकलन, कृष्णदत्त पालीवाल, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, प्रथम २०११

९८- मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, डॉ॰ जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, विश्वविद्‌यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम, १९८५

९९- भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य की रूपरेखा, डॉ॰ रामचन्द्र तिवारी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्‌वितीय, २००७

कोश

१- संस्कृत- हिन्दी शब्दकोश- वामन शिवराम आप्टे, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, २०००

२- वृहत हिंदी कोश, कालिका प्रसाद, राज वल्लभ सहाय, मुकुंदी लाल श्रीवास्तव, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, चतुर्थ परिवर्धित, संवत २०३०

३- राजपाल हिंदी शब्दकोश, डॉ॰ हरदेव बाहरी, राजपाल एंड संस, दिल्ली, २०११,

४- ऑक्सफोर्ड हिंदी-अंग्रेजी शब्दकोश, आर. एस. मैकग्रेगोर (R.S.McGregor), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, दिल्ली, २०१६

५- Compact Oxford Dictionary, Thesaurus, and Wordpower Guide,Catherine Soanes, Alan Spoonar, Sara Hawker, eighteenth Edition (2005), , Indian edition

६- उर्दू-हिंदी शब्दकोश, मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह'

७- अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश, डॉ हरदेव बाहरी, राजपाल, राजपाल एंड संस, दिल्ली, २०१२

८- उद्धरण कोश, भोला नाथ तिवारी (संपादक), बुक्स एन बुक्स, दिल्ली, प्रथम, १९८६

संस्कृत ग्रंथावली

१- मुंडकोपनिषत्: श्रीशंकरभाष्यसयुंता, श्री सच्चिदानंदेंद्रसरस्वती, प्रथम-१९६०, अध्यात्म प्रकाशन कार्यालय, होलेनरसीपुर, मैसूर

परिशिष्ट-III

पत्रिकाएं

१- पूर्वग्रह, संयुक्तांक : अंक १३१-१३२, अक्टूबर'१०-मार्च'११

२- समीक्षा, मई-जून- १९७८

३- वर्तमान साहित्य, अंक-८-९, अगस्त -सितंबर-२०१४

४- आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक-५१, अक्टूबर-दिसम्बर २०१३

५- आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक- ५२ जनवरी-मार्च-२०१४

६- गगनांचल, अंक- ६, नवंबर- दिसंबर- २०१४

परिशिष्ट-IV

रामदेव शुक्ल से एक साक्षात्कार
स्थान- गोवा विश्वविद्यालय, तिथि- १० फरवरी २०१२

डॉ॰ रामदेव शुक्ल जी हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक, उपन्यासकर, समीक्षक, कहानीकर के रूप में विख्यात हैं। मुझे मेरे शोध निर्देशक डॉ॰ रवीन्द्रनाथ मिश्र के द्वारा ज्ञात हुआ कि वे गोवा विश्वविद्यालय में अतिथि आचार्य के रूप में पधारे हैं। रामदेव शुक्ल अज्ञेय से व्यक्तिगत रूप जुड़े रहें हैं इसलिए मैंने उनसे अज्ञेय के विषय में साक्षात्कार लेने का निश्चय किया। मैंने रामदेव शुक्ल जी से साक्षात्कार के लिए आग्रह किया जिसके लिए वे सहर्ष तैयार हो गए। उन्होंने मुझे अपने साक्षात्कार से अज्ञेय से जुड़ी अनेक घटनाओं से परिचित कराया। उनके द्वारा दिया गया साक्षात्कार मेरे लिए अज्ञेय की विचार-दृष्टि को समझने में अत्यंत लाभप्रद रहा। रामदेव शुक्ल जी के इस उपकार के लिए मैं उनकी कृतज्ञ हूं।

किरन तिवारी:- आपके अभिमत से क्या अज्ञेय किसी विचारधारा के अनुगामी थे? उनकी विचार-दृष्टि को आप किस रूप में देखते हैं?

रामदेव शुक्ल:- विचारधारा इस समय हिंदी में सबसे खतरनाक शब्द बना हुआ है क्योंकि हिंदी के आलोचक जो शिखर पर हैं वह सब मार्क्सवादी हैं। मार्क्सवादी लोग यह मानते हैं कि विचारधारा के बिना साहित्य लिखना संभव नहीं है या अच्छा साहित्य लिखना संभव नहीं है और मार्क्सवाद ही एक विचारधारा है। अज्ञेय का यही स्टैंड था कि केवल एक विचारधारा के शासन में क्रिएटिव राइटिंग, सृजनात्मक लेखन नहीं हो सकता। और अगर होगा तो मुक्त ढंग से नहीं होगा, स्वाधीन नहीं होगा। इसलिए संसार की सारी विचारधाराओं को, जीवन-दृष्टियों को समझना चाहिए और फिर सृजनात्मक लेखक को जो दृष्टि अपने अनुकूल लगे उसके अनुसार उसे रचना करनी चाहिए। अज्ञेय का यही दृष्टिकोण था। जैसे उनकी वह कविता जिसमें उन्होंने कहा- “अच्छी अपनी ठाठ फकीरी, मंगनी के सुख-साज से”, तो उसी कविता में पंक्ति

आती है- “सांचे ढले समाज से” यानि जब एक विचारधारा के अंतर्गत जब किसी समाज की निर्मिति होती है तो जैसे मशीन से एक पुर्ज़ा बनता है, सब एक ही जैसा बनता है। परंतु मनुष्य का विकास ऐसा नहीं होता। तो मनुष्य जो सबसे जटिल संरचना का प्राणी है। वह सब के सब एक जैसे कैसे हो जाएंगे। अज्ञेय की इस मामले में मान्यता यह थी या कह लीजिए कि दृष्टि यह थी कि व्यक्ति समाज से बाहर नहीं है। लेकिन व्यक्ति और समाज का एक निश्चित सम्बन्ध है। यह बात उनकी कविता ‘नदी के द्वीप’ में समझी जा सकती है। इसी तरह उनकी एक और कविता है- ‘यह दीप अकेला’। अज्ञेय समाज का बहिष्कार नहीं करते, समाज को अस्वीकार भी नहीं करते। लेकिन समाज और व्यक्ति के रिश्ते को स्वाभाविक रूप में लेना चाहते हैं। और विचारधारा के शासन में जिसमें आप कवि हैं, लेखक हैं, तो आप लिखिए लेकिन विचारधारा के अनुसार जो एजेंडा निश्चित किया गया है उसी पर लिखिए। अगर कम्युनिस्ट पार्टी यह तय करती है कि समाज को बदलने के लिए हिंसा जरूरी है तो अपने साहित्य में आप हिंसा पर लिख सकते हैं। अब पार्टी यह तय करती है कि अब हिंसा जरूरी नहीं है और उस समय आप हिंसा की बात करते हैं तो आपका साहित्य खारिज कर दिया जाएगा। विचारधारा को प्रभावित करने वाले जो लोग हैं उनसे लिस्ट मिली हुई कि इनके साहित्य का नाम लेना है और इनका नहीं तो वह नहीं लेंगे। यह जो अंकुश है अज्ञेय उसको व्यक्ति की स्वाधीनता पर आक्रमण मानते थे। इसलिए उनकी विचार-दृष्टि है, जीवन-दृष्टि है, जीवन के बारे में, समाज के बारे में, साहित्य के बारे में उनके अपने विचार हैं, बड़े सुनिश्चित विचार हैं लेकिन वो किसे के अधीन रह कर के रचना को स्वीकार नहीं करते। विचारधारा तो आजकल एक रूढ़ शब्द है। जैसे प्रगतिवादी और प्रगतिशील शब्द को लेकर लोग उलझ जाते हैं। प्रगतिशील हर कवि और लेखक होता है। प्रगतिशील कोई नहीं होगा तो रचना करेगा ही नहीं क्योंकि रचना करने में एक निहित उद्देश्य छिपा होता है। अनिवार्यत: रचनाकर इस लिए रचना करता है कि वह एक बेहतर समाज चाहता है। लेकिन हिन्दी में प्रगतिवाद शब्द एक रूढ़ शब्द है। प्रगतिवादी उसको कहते हैं जो मार्क्सवादी विचारधारा के अधीन ही रचना को स्वीकृति देता है। अगर आप इसके अधीन नहीं है तो आप

कितने भी बड़े लेखक हों, आपको स्वीकार नहीं करेंगे। तो अज्ञेय इस तरह के बंधन को विचारों में स्वीकार नहीं करते।

किरन तिवारी:- कुछ आलोचकों द्वारा उन्हें व्यक्तिवादी माना जाता है। क्या आप इसे सही मानते हैं?

रामदेव शुक्ल:- देखिए, व्यक्ति की सबसे बड़ी ताकत है उसकी भाषा। इस भाषा के प्रयोग से आज व्यक्ति पशुओं से भिन्न है। पशु आज भी अपने मूल रूप में ही है क्योंकि उसके पास भाषा की शक्ति नहीं है। लेकिन भाषा का मतलब क्या हुआ? भाषा की जरूरत होती है जब एक से अधिक व्यक्ति हों। यानी हम अपने मन की बात दूसरों तक पहुंचाना चाहते हैं। भाषा एक रचनाकार की सबसे बड़ी ताकत है और उससे वह दूसरों तक अपनी बात पहुंचता है तो उसे व्यक्तिवादी कहना उचित नहीं है। व्यक्ति होने का भी यह जो सहज रूप है वह है सामाजिक व्यक्ति। नहीं तो वह पशु है। साधारण परिभाषाओं में बताया जाता है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अगर वह सामाजिक प्राणी है तो कोई व्यक्तिवादी कैसे हो सकता है। अज्ञेय पर जो यह चार्ज लगाया जाता है कि वह व्यक्तिवादी हैं वह सही नहीं है। वह आप अज्ञेय के लेख और रचनाओं को पढ़िए तो उसमें बार-बार वे कहते हैं कि मेरे व्यक्तिवादी होने का ये मतलब है। व्यक्तिवादी होने का अर्थ है सामाजिक न होना। रचनाकार तो इस अर्थ में कभी व्यक्तिवादी हो ही नहीं सकता कि वह सिर्फ अपने बारे में सोचे। और तब किसी रचनाकार के बारे में कह देना कि वह तो व्यक्तिवादी हैं घोर अज्ञानता का प्रमाण है।

किरन तिवारी:- मैंने पुस्तकों में पढ़ा है कि अज्ञेय पर पाश्चात्य विचारकों का बड़ा प्रभाव था। क्या आप के मत से यह सही है?

रामदेव शुक्ल:- अज्ञेय के विचारों में पाश्चात्य प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता है अज्ञेय के साहित्य को, चाहे उनका काव्य साहित्य हो, गद्य साहित्य हो, उनका चिंतन साहित्य- एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि अज्ञेय आधुनिकता और समकालीनता पर सबसे ज्यादा सोचने, समझने, लिखने वाले लेखक हैं। लेकिन परम्परा से अलग होने की बात वह नहीं सोचते हैं उनकी सबसे बड़ी खूबी है कि अज्ञेय परम्परा

और रूढ़ि को अलग-अलग समझते हैं। हिंदी में एक यह भी संकट है कि अधिकांश लोग परम्परा और रूढ़ि को एक ही समझ लेते है। परंपरा और रूढ़ि का फर्क बहुत साफ है। परंपरा उसको कहते हैं जिसमें विचारों की तार्किक परिणति होती है। परंपरा से जो हम सीखते हैं वह अतार्किक नहीं होता है, अकारण नहीं होता है। लेकिन रूढ़ि के वश में हो कर हम जो कुछ करते हैं वह अतार्किक होता है, अकारण होता है, केवल अंधानुकरण होता है। जैसे समझ लीजिए परंपरा को गंगा की तरह है। उसमें अनेक गंदगी भी मिलती है लेकिन उसकी धारा उसे अलग करती चलती है, समाप्त करती चलती है। ठीक वैसे ही परंपरा में रूढियां आती रहती हैं क्योंकि रूढियां मूर्खताओं से आती हैं, व्यक्तिगत कमजोरियों से आती हैं। और परंपरा की समझ जिसको है वह परंपरा में से इन रूढ़ियों को खारिज करता चलता है। क्योंकि रूढियां अनुकरण, अज्ञान, मोह से पैदा होती हैं। आपका जो प्रश्न है कि अज्ञेय पर पाश्चात्य विचारों का प्रभाव है- बहुत गहरा असर है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वो अपनी परंपरा को नकारने लग जाएं। अज्ञेय तो बार-बार यह कहते है कि जब हम विदेश में जाकर अपने देश के बारे में सोचते हैं तो अपना देश बहुत प्यारा लगने लगता है। तो पश्चिमी ज्ञान के आलोक में वे भारतीय परंपरा को देखते हैं तो इसके महत्त्व को और उजागर करते हैं। इस रूप में टी॰ एस॰ एलिएट का बहुत प्रभाव है अज्ञेय की दृष्टि पर लेकिन उससे वे भारतीय परंपरा को बहुत पुष्ट पाते हैं।

अज्ञेय हिंदी के सबसे समर्थ लेखक इस रूप में हैं कि परंपरा की जितनी गहरी समझ उनको है उतनी ही गहरी समझ आधुनिकता की भी है, पाश्चात्य साहित्य की भी है, पाश्चात्य सोच और संस्कृति की भी है। इसीलिए वह ना परंपरा का तिरस्कार करते हैं, ना आधुनिकता का, ना नवीनता का, ना पुरानी चीजों का, ना नई चीज़ो का। सिर्फ जो स्वस्थ है, उसको वह स्वीकार करते हैं और जो लोग इतनी स्वस्थ दृष्टि को स्वीकार करने लायक नहीं हैं वह अज्ञेय का तिरस्कार करते हैं।

किरन तिवारी:- धन्यवाद सर।

--****--

परिशिष्ट-V

अशोक वाजपेयी से एक साक्षात्कार
स्थान- गोवा, तिथि- ०१-०९-२०१३

आधुनिक हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर अशोक वाजपेयी के आगमन की सूचना मेरे शोध निर्देशक डॉ॰ रवीन्द्रनाथ मिश्र द्वारा मुझे प्राप्त हुई।उनसे ज्ञात हुआ कि गोवा विश्वविद्यालय में स्थापित 'कविवर बाकीबाब बोरकर पीठ' द्वारा आयोजित कार्यक्रम में व्याख्यान माला के अंतर्गत वाजपेयी जी का पदार्पण हो रहा है। मेरे शोध का विषय अज्ञेय की कविता पर था इसलिए मैंने उनसे साक्षात्कार लेने का मन बनाया। सौभाग्य से उन्होंने अपने कार्यक्रम की व्यस्तता में भी मुझे साक्षात्कार देने के लिए समय दिया। मैं नियत समय पर जहां पर वे वाजपेयी जी के इस साक्षात्कार से मुझे अज्ञेय की विचार-दृष्टि को समझने में बहुत सहायता मिली।

किरन तिवारी- अज्ञेय की कविता को आप उनके विचारों के धरातल पर किस रूप में देखते हैं?

अशोक वाजपेयी:- मैं समझता हूं कि छायावाद के बाद जो छायावादोत्तर कविता आयी थी उसे एक तरह की विचारहीनता तो नहीं कहेंगे पर एक तरह की विचार-शिथिलता को प्रोत्साहित किया और कुछ इस तरह की धारणा फैला दी कि अपने लोकप्रिय होने के कारण कविता में विचार और बुद्धि की कोई जगह नहीं है। यह तो भावनात्मक उद्वेलन है। और क्योंकि ज्यादातर हिंदी साहित्य का उच्चस्तरीय अध्यापक उन्हीं दिनों शुरू हुआ था, तो यह एक धारणा व्यापक हो गई कि कविता का बुद्धि और विचार से कोई विशेष संबंध नहीं है। जबकि छायावादी कवि- प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी सभी बौद्धिक रुप से बहुत संपन्न, बहुत सजग, और बहुत सक्रिय कवि हैं। छायावाद को भावोच्छ्वास का काव्य मानना बहुत ही अधूरा देखना है उसको बल्कि वह शक्ति का काव्य है जैसा बाद में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा। तो खैर, अज्ञेय और उनके

कुछ समवर्तियों ने विचार का पुनर्वास कविता में किया, वे फिर से कविता में विचार को लाए।

अज्ञेय की कविता में विचार की दृष्टि से देखें तो दो-तीन पहलू होंगे। एक तो जहां वह सीधे विचार को अभिव्यक्त करते हैं। जैसे 'हम नदी के द्वीप है' वह एक खास तरह के विचार को व्यक्त करती है या 'है अभी और जो कहा नहीं गया' यह पंक्तियां ही अपने आप में वैचारिक उक्तियां हैं, यह तो एक तरह के विचार हैं- 'भूल है मानना उसको धारा, क्रांति है आवर्त' इस तरह की वैचारिक उक्तियां हैं जो कि उनकी कविताओं में काफी मिलती हैं। लेकिन एक दूसरे स्तर पर उनकी कविता में वैचारिकता और भाव प्रवणता, इन दोनों का एक तरह का आव्यविक संबंध है। उनकी कविता एक वैचारिक अभिव्यक्ति भी है, भावनात्मक अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ। भले ही वह उस विचार को, अन्य कविताओं की तरह, सीधे-सीधे व्यक्त न करें। जैसे उनकी प्रसिद्ध कविता 'असाध्य वीणा' में विचार का तत्व है कि 'कैसे वृहत्तर को अपने अंदर स्पंदित होने दे' जो कि केशकंबली करता है। तो फिर वह वृहत आप में से दूसरों तक पहुंचेगा और बोलेगा और उस बोली का हर एक लिए अलग-अलग अर्थ होगा। यह अपने आप में एक विचार है। यह कोई भावोच्छवास से नहीं है। इसलिए विचार का एक पक्ष है और बहुत सारी कविताओं में हैं। उनकी एक कविता है 'हवाई यात्रा' जिसमें अंत में आएगा कि 'उतारो थोड़ा और: सांस ले गहरी गहरी/ अपने उड़नखटोले की खिड़की को खोलो और पैर रखो मिट्टी पर:/ खड़ा मिलेगा वहां सामने तुम को/ अनपेक्षित प्रतिरूप तुम्हारा/ नर, जिसकी अनझिप आंखों में नारायण की व्यथा भरी है!'। मतलब दो तरह से विचार को अज्ञेय जी डील करते हैं- कई बार सीधे-सीधे और कई बार सलिल ढंग से।

अज्ञेय पर एक जमाने में शुरू-शुरू में बहुत आरोप लगाया जाता था कि वे पश्चिम से बहुत आक्रांत हैं, पश्चिम का उन पर बहुत प्रभाव है इत्यादि। फिर उनके उत्तर काल में उन पर यह आरोप लगाया जाने लगा कि वह परंपराजीवी हैं और उनकी जो आधुनिकता है वह एक तरह से परंपरा पर आधारित है। तो एक ध्रुव से लेकर दूसरे ध्रुव तक उनकी विवेचना पहुंची। अब सही बात यह है कि अज्ञेय के यहां परंपरा के प्रति

एक आलोचनात्मक और सर्जनात्मक रुख है। वह परंपरा को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं करते, कुछ अपने हिसाब से जांचते-परखते हैं लेकिन परंपरा को अस्वीकार भी नहीं करते। और उनकी कविता में यह शुरू से है, अब उसको क्यों ऐसा समझा गया कि पश्चिम से आक्रान्त है। यह कहना मुश्किल है। दूसरी बात यह है कि अज्ञेय के यहां वैचारिक दृष्टि से व्यक्तित्व की प्रधानता है। वो सामाजिकता को नजरअंदाज नहीं करते, उसको अवमूल्यित नहीं करते लेकिन वह समाज को अनिवार्य रूप से व्यक्ति के साथ सम्बन्ध, संवाद, सहकार, द्वन्द के रूप में देखते हैं। उनके लिए व्यक्ति का कोई आत्यंतिक महत्त्व नहीं है जैसे की समाज का भी आत्यंतिक महत्त्व नही है। दोनों जब एक-दूसरे से जब सम्बन्ध स्थापित करते हैं, संवाद स्थापित करते हैं, उनके बीच दोनों का अर्थ, दोनों की संभावना अधिक खुलते हैं। दूसरे, उनके यहां स्वाधीनता पर बहुत आग्रह है, खैर, उसका एक मोटा-मोटा कारण रहा होगा कि वह खुद स्वाधीनता संग्राम में शामिल रहे थे लेकिन इससे अलग मनुष्य की स्वाधीनता उनके लिए एक परम-मूल्य है और उस मूल्य का प्रतिपादन, अन्वेषण और विस्तार आदि वह साहित्यक जीवन भर करते रहे। अगर उनके उपन्यासों, कविताओं आदि को मिला के देखा जाये, तो एक मूल्य जो केंद्र में है वह है स्वाधीनता। उनके यहां दोनों चीजों पर बल है-आत्मदान पर भी और आत्मान्वेषण पर भी। आत्मान्वेषण यानी अपने आत्म का अन्वेषण करना, उसको खंगालना, खोजना, उसकी पड़ताल करना। तो इसलिए वह कोई स्थिर, जड़ या जड़ीभूत आत्म नहीं है। यह आत्म है जो निरंतर परिवर्तन और रचना की प्रक्रिया में है। तो एक तरफ तो यह आत्मान्वेषण है। दूसरी तरफ अज्ञेय के यहां आत्मदान पर बड़ा बल है। अज्ञेय की कविता का एक पक्ष है जहां प्रकृति के प्रति, दूसरों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त होती है। और दूसरी तरफ आत्मदान पर बल है। जैसे मुझे प्रकृति से मिलता है, धूप से, हवा से, वैसे मुझे अपने ओर से दूसरों को कुछ देना चाहिए। इस तरह उनके यहां आत्मदान और आत्मान्वेषण का एक तरह का युग्म बनता है। फिर अज्ञेय सभ्यता-समीक्षक कवि भी हैं। दो तरह के कवि होते हैं, काफी बड़े और अच्छे कवि होते हैं पर यह जरूरी नहीं कि वह सभ्यता को अपने विधान का, अपनी दृष्टि का एक बिंदु बनाएं। अज्ञेय ने लेकिन अपनी रचनाओं में

भारतीय सभ्यता और पश्चिमी सभ्यता, इनके बीच में जो अंतर है उस पर टिप्पणी की है। फिर उनकी एक कविता संग्रह है- अरी ओ करुणा प्रभामय। वह पूरा संग्रह ही जापान यात्रा के दौरान लिखा गया था। तो वह दूसरी सभ्यता जो भारतीय सभ्यता से मिलती-जुलती है- बौद्ध सभ्यता, और किसी ने बौद्ध अभिप्रायों की या बौद्ध कथानकों का सहारा ले कर इतनी सारी कविताएं नहीं लिखी जितनी अज्ञेय ने लिखी है। इसीलिए मैंने कहा कि अज्ञेय जी सबसे बड़े "बौद्ध" कवि थे। तो बौद्ध परंपरा, भारतीय व्यापक परंपरा, और इसके परक पश्चिमी परम्परा- तीनों ही उनके सभ्यता-विमर्श का हिस्सा रहे हैं। और इन तीनो का उनके विचार में ही नहीं उनकी कविता में भी योगदान है। और उनकी बहुत सारी कवितायें जो विदेश में लिखी गयी हैं, उनमें देखा जा सकता है, जैसे चक्रान्त शिला। 'चक्रान्त शिला' लिखी तो एक फ्रेंच मठ में लिखी गयी हैं जहां परम शान्ति थी, कोई बोलने का विवाद ही नहीं था। वहां रह कर भी वह कविता लिख रहे हैं जिसका भारतीय सभ्यता से बहुत गहरा सम्बन्ध है। ऐसे ही ग्रीक सभ्यता संबंधी- जैसे 'दाड़िम के ओट हो जा लड़की', 'सन्नाटा बुनता हूं- कविताएं भी लिखी हैं। तो वह एक ऐसे भारतीय हिंदी कवि हैं जिन्होंने सभ्यता के इतने अलग-अलग मुकामों पर जा कर कविता लिखी- जापान, ग्रीस, फ्रांस, अमरीका इत्यादि। उनका जो एक और वैचारिक पूर्वग्रह है वह है मम और ममेतर के बीच सम्बन्ध। अपने और अपने से जो अलग है, उसके बीच का सम्बन्ध। जैसे उन्होंने कहा है 'जो मेरा है वही तो ममेतर' है बल्कि उनके सिवा ममेतर शब्द का प्रयोग किसी और ने नहीं किया है। ऐसे कुछ बीज शब्द हैं जिससे उनकी दृष्टि को समझा सकता है।

अज्ञेय ने बहुत गहरा काल-चिंतन किया। किसी और हिंदी कवि या बुद्धिजीवी ने इस तरह का काल-चिंतन किया ही नहीं है। इसमें अज्ञेय अद्वितीय हैं और उस काल-चिंतन के जो अनेक पक्ष हैं उसके शीर्षक से प्रकट होते हैं जैसे- दिग्विहीन, वृत्तवर्ग, संवत्सर, और काल-मृगया। हमारे यहां जो काल-चक्र की कल्पना है यानी वह चक्राकार काल है। जो ऐतिहासिक पक्ष है, पश्चिमी वह एक रैखिक काल है यानी एक लंबी रेखा में चलता है। हमारे यहां वह आवर्त-कालीय है। इसकी भी जो परिणितियां हैं वह उनकी कविता में देखी जा सकती हैं। 'चक्रान्त

शिला' जो एक पूरी श्रंखला है वह इसी काल-चिंतन का एक रूप है जिसमे जो शिला है वही घूम रही है, हालाकि घूम नहीं रही है। तो उसको उससे मिला के देखा जा सकता है.

किरन तिवारी- कतिपय आलोचकों द्वारा अज्ञेय पर पाश्चात्य कवियों के प्रभाव का आरोप लगाया जाता- क्या आप ऐसे सहमत हैं?

अशोक वाजपेयी- देखिए, उन पर पाश्चात्य कवियों के प्रभाव के आरोप तो लगाए जाते रहे हैं। बाद में यह आरोप भी लगना शुरू हुआ कि वह अतीतजीवी है, परंपरावादी हैं, आधुनिक नहीं हैं। यह आरोप भी उन पर अंतिम दिनों में लगा। तो दोनों आरोप- ना तो वह आरोप, ना तो यह आरोप सही था। जो असल बात थी, उनकी वह थी वे एक स्वाधीन चेता, आधुनिक कवि हैं जो एक तरफ प्रश्न पूछने से नहीं चूकते और दूसरी तरफ जो औरों का अवदान है उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने से नहीं चूकते। एक तरफ आत्मान्वेषण में संलग्न हैं, दूसरी तरफ आत्मदान के लिए उत्सुक हैं। एक तरफ वह व्यक्ति की गरिमा के कवि हैं तो दूसरी तरफ वह समाज के प्रति व्यक्ति की ज़िम्मेदारी को भी स्वीकार करते हैं। तो यह कहना कि वह इस पक्ष के हैं या उस पक्ष के हैं, इसमें कुछ नहीं रखा है।

किरन तिवारी:- समीक्षकों द्वारा माना जाता है कि अज्ञेय एलियट से काफी प्रभावित थे। क्या आप इससे सहमत हैं?

अशोक वाजपेयी:- बिलकुल शुरू में, त्रिशंकु में, उन्होंने 'रूढ़ि और मौलिकता' नाम से एक या दो निबंध लिखे हैं जिनमें खुद ही स्वीकार किया है कि टी. एस. इलियट का "ट्रेडिशन एंड इंडिविजुअल टैलेंट' जो निबंध है, उसका छायानुवाद जैसा कर रहे हैं उससे प्रभावित हैं। टी. एस. इलियट आधुनिक विखंडन के कवि थे जो बिखरती हुई पश्चिमी सभ्यता पर वे विलाप करते हैं। बाद में उन्होंने ईसायित में और राजशाही में शरण ली। लेकिन अज्ञेय ने ऐसा कुछ नहीं किया। बल्कि आपात काल का विरोध करने वालों में अज्ञेय थे। और अज्ञेय ने ना तो कभी राजशाही का कोई समर्थन किया और ना ही उन्होंने किसी धर्म-विशेष या परंपरा-विशेष का अनुसरण किया और एक तरह से अपनी परंपरा

बनाई। और कई तत्व भारतीय हैं और जाहिर है कि हमारा समय ही अकेला तो भारतीय समय नहीं है और इसमें पश्चिम की भी भूमिका है लेकिन अज्ञेय से उनका कोई साम्य नहीं है।

किरन तिवारी:- 'अज्ञेय हिंदी के निर्वासित कवि है'- इसे स्पष्ट करिए।

अशोक वाजपेयी:- अज्ञेय को जितना गलत समझा गया है, या गलत पढ़ाया गया है, अज्ञेय जी की जितनी दुर्वाख्या हुई है उतनी किसी कि नहीं हुई। इसी तरह एक समय में निराला इसी तरह के निर्वासित कवि थे। उस समय पंत वगैरह तो विशेष थे पर निराला को वह जगह नहीं मिली, जो बाद में उनको मिली थी, जिसके वह अधिकारी थे। तो निराला में भी बरसों तक निर्वासन की भावना है जैसे- 'मैं अकेला आदमी', 'मेरे दिवस की सांध्य बेला' वगैरह-वगैरह। अज्ञेय इस अर्थ में निर्वासित थे कि उन्हें न तो अकादमिक दुनिया स्वीकार करती थी बहुत वर्षों तक और अगर स्वीकार करना शुरू भी किया मन मार कर तो उसकी दुर्वाख्या कर दी गई। और दूसरी तरफ अज्ञेय के ऊपर मार्क्सविरोधी होने का आरोप लगाया गया और जो मार्क्सवादी लोग थे वह अज्ञेय से छड़कते रहे। मार्क्सवादियों लेखकों की संख्या भी बहुत है। करीब 70% हिंदी के लेखक मार्क्सवादी हैं। साहित्य में उन्हें जैसे एक तरह का देश निकाला दिया हुआ है। मतलब यह कि वे हमारे काम के नहीं हैं। एक समय में प्रगतिशाली संगठन के लेखक यह कहते थे कि अज्ञेय को नहीं पढ़ना चाहिए। पढ़कर खारिज करें तो ठीक है पर इस तरह के फतवे जारी होते थे। फिर उनके व्यक्तितत्व को लेकर अफवाहें उड़ाई जाती थी जैसे बोलते नहीं हैं, बहुत अहंकारी हैं- वह सब गलत है। फिर उन पर आरोप लगाया जाता था कि वह काफी अभिजात्य हैं। अरे, वह मध्यमवर्गीय परिवार से थे, जीवन भर उनके मध्यमवर्गीयता वैसी ही रही, कोई उन्नयन नहीं हुआ, भारत सरकार की किसी संस्था में कभी कोई बड़ा पद नहीं ग्रहण किया तो कैसी अभिजात्यता!!

किरन तिवारी:- अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति और समाज के संबंध में आपका क्या विचार है?

अशोक वाजपेयी:- अज्ञेय ने समाज के प्रति उत्सुकता, अपने उदगार बहुत व्यापक ढंग से व्यक्त किए हैं और यह जो है उनके बारे में कि वह समाज के प्रति उदासीन है, समाज निरपेक्ष साहित्य की कल्पना इत्यादि करते थे बिल्कुल सही नहीं है। उनके विचारों का बहुत अच्छा संचय उनकी यह डायरीज हैं- अंतरा, शाश्वती, भवन्ति इत्यादि- इनमें छोटी-छोटी टिप्पणियां हैं जिनमें प्रकट होता है कि उनके लिए समाज का क्या अर्थ है। अज्ञेय का बहुत बड़ा आग्रह साहित्य की संप्रेषणीयता पर था। इस प्रथा में साहित्य को दूसरों तक पहुंचाना चाहिए। अब उन पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे दुर्बोध कवि हैं, ऐसा कुछ नहीं हैं। अज्ञेय विनयशील व्यक्ति हैं।

अज्ञेय से संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारी और अपना अमूल्य समय देने के लिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया।

--****--

परिशिष्ट-VI

शोधार्थिनी द्‌वारा प्रकाशित आलेख

पत्रिका	अंक / वर्ष / पृष्ठ	शीर्षक
भारतवाणी	१ / अप्रैल-२०१२ / २५-२८	अज्ञेय काव्य की प्रयोगधर्मिता
गगनांचल	जुलाई-अगस्त / २०१४ / ५६-५८	अज्ञेय: जीवन परिवेश एवं प्रारंभिक काव्य यात्रा
शब्द ब्रह्म	४ / अप्रैल-२०१६ / २-५	अज्ञेय: व्यष्टि और समष्टि संबंधी मान्यताएं